प्रथम संस्करण

संवत् २०३४ वि०

मूल्य——३०–००

मुद्रक

शंभुनाथ वाजपेयी

नागरी मुद्रण, वाराणसी

प्रकाशकीय

नागरीप्रचारिणी सभा ने अपनी जिन ग्रंथमालाओं द्वारा हिंदी को श्रीसंपन्न बनाने का प्रयत्न किया है उनमें नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला का विशिष्ट योगदान है। प्राचीन ग्रंथों के खोजकार्य का आरंभ होने पर खोज-विवरण के प्रकाशन के साथ ही हिंदी के विशेष लाभ की दृष्टि से सभा ने यह भी अनुभव किया कि खोज में प्राप्त चुने हुए ग्रंथों का प्रकाशन भी हो। उसने संवत् १९५७ वि० (सन् १९०० ई०) से इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'नागरीप्रचारिणी ग्रंथमाला' का प्रकाशन आरंभ किया। उस समय इसकी पृष्ठसंख्या ६४ और मूल्य आठ आने स्थिर किए गए। वर्ष में इसके चार अंकों के प्रकाशन का भी निश्चय किया गया था। संवत् १९७६ तक इस ग्रंथमाला के ६४ अंक प्रकाशित हुए। इस समय तक इस ग्रंथमाला के संपादक क्रमशः श्री राधाकृष्णदास (संवत् १९६१ तक), महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी (संवत् १९६५ तक), श्री माधवप्रसाद पाठक (संवत् १९६७ तक) और श्री श्यामसुंदरदास (संवत् १९७६ तक) थे। प्रांतीय सरकार ने इस ग्रंथमाला की उपयोगिता के कारण ३०० रु० वार्षिक की सहायता पांच वर्षों के लिये संवत् १९६१ में देना स्वीकार किया। फलस्वरूप इसकी पृष्ठसंख्या ८० कर दी गई पर मूल्य आठ आने ही रहने दिया गया। इस ग्रंथमाला में पूरे ग्रंथों का प्रकाशन आरंभ हुआ। अलवर नरेश श्रीमंत महाराज सवाई जयसिंह ने इस ग्रंथमाला के लिये ६००० रु० सभा को प्रदान किया, तब से यह ग्रंथमाला निरंतर प्रकाशित हो रही है और हिंदी के भंडार को श्रीसंपन्न कर रही है।

इस ग्रंथमाला में अब तक ८४ ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। पृथ्वीराजरासो जैसा वृहद् ग्रंथ सभा ने इसी माला में प्रकाशित किया। इसमें छपे अब निम्नांकित ग्रंथ ही प्राप्य हैं—

१. भक्तनामावली, २. हम्मीररासो, ३. भूषण ग्रंथावली, ४. जायसी ग्रंथावली, ५. तुलसी ग्रंथावली, ६. कबीर ग्रंथावली, ७. सूरसागर, ८. खुसरो की हिंदी कविता, ९. प्रेमसागर, १०. रानी केतकी की कहानी, ११. नासिकेतोपाख्यान, १२. कीर्तिलता, १३. हमीरहठ, १४. नंददास ग्रंथावली, १५. रत्नाकर, १६. रीतिकालीन

कवियों की प्रेमव्यंजना, १७. हिंदी टाइपराइटिंग, १८. हिंदी साहित्य का इतिहास, १९. घनानंद, स्वच्छंद काव्यधारा, २०. प्रतापनारायण ग्रंथावली, २१. तुलसीदास, २२. हिंदी के मुक्तक काव्य का विकास, २३. रसरतन, २४. नाटक के तत्व : मनोवैज्ञानिक अध्ययन, २५. खालिकबारी, २६. हस्तलिखित हिंदी पुस्तको का सक्षिप्त खोज विवरण (१९००–१९५५ ई०), २७. तोप और सुधानिधि, २८. द्विजदेव और उनका काव्य, २९. नाटक और यथार्थवाद, ३०. उग्र और उनका साहित्य, ३१. भोसला राजदरबार के हिंदी कवि, ३२. आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धांत, ३३. कृपाराम और उनका साहित्य, ६४. बिलग्राम के मुसलमान हिंदी कवि, ३५. चितामणि, ३६ लक्षदास कृत कृष्ण रससागर, ३७. विडंबना, ३८. वेदांत दर्शन, ३९. हिंदी और मराठी के ऐतिहासिक नाटक, ४०. हिंदी और फारसी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, ४१. फ्रेडरिक पिंकाट, ४२. हितचौरासी और उसकी प्रेमदास कृत ब्रजभाषा टीका, ४३. मधुस्रोत, ४४. भारतेंदु की खड़ी बोली का भाषाविश्लेषण, ४५. क्रोचे का कलादर्शन, ४६. आधुनिक हिंदी काव्य मे अरविद दर्शन का प्रभाव और ४७. भ्रमरगीतसार।

तुलसी ग्रंथावली इस ग्रंथमाला का ३२ वाँ ग्रंथ है। इसका प्रथम संस्करण सं० १९८० में जब सभा ने प्रकाशित किया था तब उसमे मात्र तीन खंड थे—प्रथम खंड में रामचरितमानस, द्वितीय खंड से मानसेतर एकादश ग्रंथ और तृतीय खंड में गोस्वामी तुलसीदास जी का जीवनवृत्त और कतिपय आलोचनाएँ थी। संवत् २०३१ में श्री रामचरितमानस की चतुश्शती के उपलक्ष्य में सभा ने तुलसी ग्रंथावली के उपर्युक्त तीनों खंडों के अद्यतन दृष्टि से पुन: संपादित संस्करण प्रकाशित करने का निश्चय किया था और तदर्थ केंद्रीय सरकार ने कृपापूर्वक १,२७,१५०) का अनुदान दो किस्तों मे प्रदान किया था। इन तीन खंडों के प्रकाशन के बाद भी एक ऐसे खंड की आवश्यकता सभा अनुभव कर रही थी जिसमे समग्र तुलसी साहित्य मे प्रयुक्त अन्योक्तियों, नीतियों, मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों, अवांतर कथाओ, विभिन्न छंदप्रयोगों, भाववर्णनों और रसनिरूपणो तथा अलंकारो और ध्वनि के प्रयोगो का ससंदर्भ अकारादिक्रम से विस्तृत विवरण दे दिया जाय जिससे तुलसी साहित्य के अध्येता को ये प्रसंग सुविधापूर्वक सुलभ हो जायँ। सयोग से केंद्रीय सरकार के अनुदान का कुछ अंश

शेष रह गया था और सरकार ने भी हमारी इस योजना की संपुष्टि कर दी, फलतः तुलसी ग्रंथावली का 'सुभाषित और काव्यांग' नामक यह चतुर्थ खंड हिंदी जगत् को भेंट किया जा रहा है। आशा है, सुधीजन इस खंड का भी तुलसी ग्रंथावली के अन्य खंडों की भाँति समादर करेंगे।

श्रावण शु० १, सोमवार
सं० २०३४ वि०

करुणापति त्रिपाठी
प्रकाशन मंत्री
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

संपादकीय वक्तव्य

भारतीय वाङ्मय की ज्योतिष्मती भूमिका में महात्मा तुलसीदासजी 'एकमेवाद्वितीयम्' कालजयी एवं युगद्रष्टा महाकवि के रूप में भारतीय जन-मानस द्वारा प्रथित एवं सर्वसंमानित है। उनका साहित्य समाज के प्रत्येक वर्ग और स्तर के लोगों में समानरूपेण प्रिय है। रससिद्ध कवीश्वर की वाणी ने सर्वसाधारण से लेकर सर्वोच्च बुद्धिजीवी वर्ग के मानस को जिस प्रकार प्रभावित और आलोडित किया है, वैसा अन्य कोई भी नहीं कर पाया है। समग्र विश्व को सीयराममय की भावना से भावित अंतर्मन से देखनेवाले तुलसी का साहित्य न केवल हमारी महान् राष्ट्रीय संपत्ति है अपितु विश्वजनीन भावात्मक एकता का प्रतिपादन करते हुए विश्व के इने गिने श्रेष्ठतम साहित्य में उसने प्रमुख स्थान प्राप्त किया है। आज ४०० वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी वे जनता के हृदयसिंहासन पर विराजमान है; वे अमर है और युगों तक अपने संदेश द्वारा रहेंगे—

जयंति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वरः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्॥

अपनी स्थापना के साथ ही नागरीप्रचारिणी सभा ने हिंदी के विशिष्ट कवियों की ग्रंथावलियों के प्रकाशन का कार्यभार अपने ऊपर लिया। सभा के शैशव में उसकी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी जिससे वह उन समस्त ग्रंथों का प्रकाशन कर करा सके जिनकी रचना एवं संपादन सभा के विद्वान् करते थे। इस कारण सभा के पाँच सभासदों द्वारा संवत् १९६० (सन् १९०३ ई० में, प्रकाशनकाल १९०३–१५) रामचरित मानस का एक विशिष्ट संस्करण जिसमें ८० (अस्सी) चित्र थे छपवाया गया। इसके संपादकमंडल में म० म० सुधाकर द्विवेदी, बाबू राधाकृष्णदास, श्री अमीर सिंह, बाबू कार्तिक प्रसाद और बाबू श्यामसुंदर दास सरीखे प्राचीन हिंदी कविता के मर्मज्ञ और मानस के ज्ञाता थे। सभा के सदस्यों का यह प्रयत्न था कि मानस का शुद्ध पाठ प्रस्तुत किया जाय। उस स्थिति में जो कुछ भी किया गया वह केवल नयनाभिराम ही नहीं था अपितु एक सीमा तक शुद्ध पाठ देने का प्रयत्न भी था। संवत्

१९८० (सन् १९२३) में नागरीप्रचारिणी सभा ने तुलसीदास जी की त्रिशत जयंती के अवसर पर तुलसी ग्रंथावली का संपादन प्रकाशन कराया। इसके संपादक मंडल के सदस्य थे--आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन और ब्रजरत्नदास। इस संबंध में जिन पुरानी प्रतियों से प्रधान रूप से सहायता ली गई, वे ये हैं—

१—राजापुर का हस्तलिखित अयोध्याकांड जो गोस्वामी जी के हाथ का लिखा माना जाता है।

२--अयोध्या की प्रति (बालकांड) जो गोस्वामी जी के परलोकवास के ११ वर्ष पीछे की लिखी हुई है।

३—काशिराज की प्रति।

४--ला० छक्कनलाल का छपाया लीथोवाला संस्करण जो मिरजापुर के प्रसिद्ध रामायणी पं० रामगुलाम द्विवेदी की प्रति के आधार पर छपा था।

५—सदल मिश्र का संस्करण जो वि० सं० १८६७ में कलकत्ते में छपा था।

६--डेढ़ सौ वर्ष की लिखी एक हस्तलिखित प्रति।

ऊपर जिन छह प्रतियों का उल्लेख हुआ है, उनमें प्रथम चार बहुत प्रामाणिक मानी जाती हैं। छक्कनलाल जी की प्रति में शुद्ध पाठ के अतिरिक्त एक और विशेषता यह है कि उसमें बहुत से प्रसंग (विशेषतः 'अरण्य' और किष्किंधा के) जो शेष तीन प्रतियों में हैं, नहीं हैं, अर्थात् क्षेपक माने गए हैं, ऐसे स्थलों पर इस ग्रंथावली में यह किया गया है कि काशिराज और सदल मिश्र दोनों में जो प्रसंग हैं, वे छक्कनलाल में न रहने पर भी रख लिए गए हैं। इंडियन प्रेस से सभा द्वारा संपादित जो संस्करण प्रकाशित हुआ था उसमें ऐसे प्रसंग पादटिप्पणी में डाले गए थे। सदल मिश्र के संबंध में इतना जान लेना जरूरी है कि यद्यपि उन्होंने आज से सौ वर्ष पहले रामायण छपाने का प्रशंसनीय कार्य किया तथापि पंडितों के ढंग पर शब्दों को शुद्ध संस्कृत रूप देकर पाठ बिगाड़ने का रास्ता दिखानेवाले भी वे ही हैं।

यह कार्य हिंदी जगत् के आदर का पात्र बना किंतु सभा और उसके विद्वानों को इससे पूर्ण संतोष न हो सका। अततोगत्वा संवत् २००५ (सन् १९६४) में सभा के पुस्तकालयाध्यक्ष स्व० शंभुनारायण चौबे द्वारा वैज्ञानिक पद्धति से संपादित कराकर रामचरितमानस का प्रकाशन कराया गया जिसके संबंध में प्रकाशकीय वक्तव्य में निम्नांकित निवेदन किए गए थे--

मानस के इस संस्करण में पाठनिर्धारण में उन्होंने निम्नांकित पाँच प्रतियों का उपयोग किया । पाठभेद में इन प्रतियों का इन्हीं संख्याओं से निर्देश हुआ है ।

१—श्रावणकुंज, अयोध्यावाली १६६१ की प्रति ।

२—राजापुरवाली अयोध्याकांड की प्रति ।

३—१७१० वाली संपूर्ण प्रति जो इस समय काशीनरेश के सरस्वती भंडार मे है ।

४—१७२१ की प्रति जो अद्युना भारत-कला-भवन, काशी मे है । इसे तथा १७६२ वाली प्रति को स्व० चौबेजी ने खोज निकाला था और उन्हीं की कृपा से अब यह भारत-कला-भवन मे सुरक्षित है ।

५—१७६२ की संपूर्ण प्रति ।

६—मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामायणी श्री रामगुलामजी के शिष्य छक्कन-लालजी की प्रति की प्रतिलिपि, जिसे म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी के पिता ने प्रस्तुत किया था ।

अब तक मानस के जो भी प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित हुए है उन सब में प्राय: इन्ही प्रतियो वा इनपर आधारित प्रतियों का उपयोग किया गया है. किंतु प्रस्तुत संग्रह की विशेषता यह है कि इसके सपादक स्व० चौबेजी ने वहुत प्रतिकूल परिस्थितियो मे विशेष परिश्रमपूर्वक उक्त सभी प्रतियों से स्वयं अक्षर अक्षर मिलाकर अपने पाठ निर्धारित किए । अन्य संपादको ने या तो भ्रामक प्रतिलिपियो का उपयोग किया था या उनके पूर्व-वर्ती संपादकों ने जो पाठ दिए थे उन्हीं को लेकर पाठ निर्धारित किए । इस कारण अधिकाश सस्करण वैज्ञानिक दृष्टि से अशुद्ध रह गए है ।

हिंदी जगत् के सामने यह पाठ प्रामाणिक रूप से तब से उपस्थित है और चौबेजी ने किस प्रकार यह कार्य किया था उस पद्धति को तथा उनकी देन को मानस अनुशीलन द्वारा सभा ने सवत् २०२४ वि० (सन् १९६७ ई०) में हिंदी जगत् के सामने उपस्थित किया ।

मानस चतुश्शती वर्ष के अवसर पर तुलसी ग्रथावली सबंधी इस संकल्प को और अधिक प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करने का व्रत सभा ने लिया । सभा द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस के सशोधित मूलपाठ के प्रकाशन के

उपरांत अन्यान्य प्रयत्न भी रामचरितमानस के शुद्ध पाठ के लिये किए गए। उन सबको ध्यान में रखकर और गंभीर अध्ययन मनन करने पर सभा इस निष्कर्ष पर पहुँची कि ग्रंथावली का अद्यतन पाठ जो सभा का है, उसे प्रामाणिक मानकर उपस्थित किया जाय और जो असंगतियाँ रह गई हैं उनका निराकरण यथाशक्ति पूर्ण रूप से कर दिया जाय। फलतः रामचरितमानस नवीन संस्करण के रूप में प्रस्तुत किया गया। चौबेजी ने जहाँ पाठभेद के लिये छह प्रतियों को, जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है, आधार बनाया, वहीं इसमें लगभग १६ (सोलह) और प्रतियों से पाठभेद दिया गया है ताकि विद्वानों को सारी सामग्री उपलब्ध हो जाय और पाठभेद में किसी प्रकार की दुविधा होने पर वे अपने अनुरूप पाठ ग्रहण कर लें।

तुलसी ग्रंथावली के दूसरे भाग में गोस्वामी तुलसीदास की त्रिशत-जयंती के समय जो ११ ग्रंथ और दिए गए थे उन्हें ही हिंदी जगत् आज भी प्रामाणिक मान रहा है। सभा के उस कार्य के बाद इस क्षेत्र में आज भी यह कार्य होना चाहिए था किंतु तुलसी ग्रंथावली के दूसरे भाग में आज से लगभग ५० वर्ष पहले जो कार्य हुआ वही प्रामाणिक रूप से चल रहा है। इस संबंध में हमारा अनुभव यह है कि जो अतुल साहित्य उपलब्ध हुआ है उसके प्रकाश में उनके अन्य ग्रंथों पर भी कार्य होना आवश्यक है। अतः ग्रंथावली के द्वितीय भाग का संपादन-प्रकाशन किया गया जिसमें मानसेतर एकादश ग्रंथ हैं। तुलसी ग्रंथावली के द्वितीय खंड में गोस्वामीजी के जिन ग्यारह ग्रंथों का संग्रह है, उनका सन्निवेश छक्कनलालजी के प्रमाण पर किया गया है। मिर्जापुर के प्रसिद्ध रामायणी तथा भक्त रामगुलामजी द्विवेदी ने गोस्वामीजी के ग्रंथों की खोज बड़े प्रयत्न के साथ की थी और अपने संग्रह में इन्हीं ग्रंथों को तुलसीकृत माना था। इन्हीं की परंपरा में छक्कनलालजी भी थे जो स्वयं भी भक्त तथा रामायणी थे। ग्रंथों का वर्णन इस प्रकार है—

१. रामलला नहछू—सोहर छंदों में बीस तुकों की यह एक छोटी सी रचना है। यह छंद पुत्रजन्म, विवाह आदि सभी शुभोत्सवों पर गाया जाता है, इसे सोहला या सोहलो भी कहते हैं। नहछू की प्रथा भारत के उत्तरी प्रांतों में दिल्ली से बिहार तक प्रचलित है जो कर्णवेध, बारात आदि के पहले चौक

बैठने के समय नाइनें करती हैं जिसमें उन्हें नेग मिलता है। इसकी भाषा पूर्वी अवधी है।

रामचंद्रजी तथा लक्ष्मणजी मिथिला में थे और वहीं एकाएक विवाह निश्चित हो जाने पर अयोध्या से बारात वहां आ गई थी। अतः यह नहछू विवाह के समय का नहीं हो सकता। यह कर्णवेध या यज्ञोपवीत के समय का हो सकता है। कर्णवेध, यज्ञोपवीत या बारात के पहले चौक बैठने पर नाइन बालक या वर के पैरों में महावर लगाती है और नहरनी को पैरों के नखों से इस प्रकार छुलाती है मानों नख काट रही है—इस प्रथा को नहछू कहते है।

२. वैराग्यसंदीपनी—यह दोहे-चौपाइयों में छोटी सी रचना है। तीन प्रकाशों मे संत स्वभाव, संत महिमा तथा शांति का वर्णन किया गया है इसमें कुल ६२ छंद है।

३. बरवै रामायण—उनहत्तर बरवै का यह एक छोटा सा ग्रंथ है, जो सात अध्यायों मे बँटा है। गोस्वामीजी ने इसे ग्रंथ के रूप मे निर्मित नहीं किया था ऐसा स्पष्ट ही ज्ञात होता है। ये यथारुचि बने हुए स्फुट बरवै थे, जिन्हें बाद मे स्वयं गोस्वामीजी ने या उनके किसी भक्त ने मानस के कांडक्रम में संगृहीत कर दिया है।

४. पार्वती मंगल—इस रचना मे शिव-पार्वती का विवाह वर्णित है। इसमे सोहर के १४८ तुक और १६ छंद दिए गए है। इसका निर्माण—

जय संवत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिन।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल सुनि सुख छिनु छिनु।

यह जय संवत् महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी के अनुसार सं० १६४३ वि० मे पड़ता है। इसकी भाषा शुद्ध पूर्वी अवधी है।

५. जानकी मंगल—इसमें सोहर के १९२ तुक तथा २४ छंद है और प्रति आठ सोहर पर एक छंद है। इसमे सीता राम के विवाह का वर्णन है। यह पार्वती मंगल के समय ही का बना ग्रंथ है और भाषा, छंद सभी मे उससे मिलता जुलता है। मानस की कथा से इसमे कुछ भेद किया गया है। जैसे—

(क) पुष्पवाटिका में रामचंद्र तथा सीता के एक दूसरे के देखने का वर्णन नहीं है। धनुषयज्ञ ही से कथा का आरंभ है।

(ख) इसमे लक्ष्मण के क्रोध करने के बाद विश्वामित्र की आज्ञा पर रामचंद्र का धनुष तोडना नहीं दिया गया है। प्रत्युत जनक के संदेह प्रकट करने तथा विश्वामित्र के राम की महिमा कहने पर रामचंद्र ने धनुष तोड़ा है।

(ग) इसमे विदाई के पीछे परशुरामजी आए हैं, धनुषभंग के बाद ही नहीं।

ये दोनो मगल अपनी सुगठित वाक्ययोजना तथा शब्दविन्यास के कारण विशेष गौरवपूर्ण हैं। शैथिल्य नाम को भी नहीं है और ये कवि की प्रौढ़ रचनाएँ हैं।

६ रामाज्ञा प्रश्न—गोस्वामीजी ने इसे शकुन विचारने के लिये बनाया और इसी बहाने रामचरित्र का वर्णन किया है। इसमे सात सर्ग हैं और प्रत्येक सर्ग मे सात सात दोहों के सात सात सप्तक हैं। इसके बहुत से दोहे गोस्वामीजी के अन्य ग्रंथो से लिए गए हैं। सातवे सर्ग के अंतिम सप्तक में शकुन विचारने की विधि भी दी गई है।

७, दोहावली—इसमे ५७३ दोहे हैं जिनमे ८३ सोरठे हैं। ये भगवन्नाम-माहात्म्य, धर्मोपदेश, नीति आदि पर हैं। इनमे से प्राय. आधे रामायण, रामाज्ञा प्रश्न तथा वैराग्य सदीपनी मे भी मिलते हैं। यह सग्रह, संभव है, तुलसीदासजी ने स्वय किया हो या उनके पीछे किसी अन्य ने। पर इन दोहों मे संसार की अनेक अनुभूत बातो तथा गूढ तत्वो का वर्णन और प्रेम भक्ति का अच्छा निरूपण हुआ है।

८. कवितावली या कवित्त रामायण—इसमे कवित्त, घनाक्षरी, सवैये तथा छप्पय छंद है और भाषा शुद्ध व्रज है। इसमे रामचरित्र कांडक्रम से वर्णित है। यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि ये एक साथ इसी क्रम से नही बने हैं प्रत्युत बाद को इसी क्रम से संगृहीत किए गए हैं। इनमे दरबारी तथा भाटो की शैली के कवित्त भी हैं और शृंगारिक भी। स्वजीवन सबंधी भी कई पद इसमे हैं और महामारी से पीड़ित होने पर हनुमान बाहुक भी परिशिष्ट रूप मे रचकर इसमे जोड़ा गया है।

९. गीतावली--यह रचना राग, रागिनियों मे है और इसमे कांड-क्रम से रामचरित्र वर्णित है। यह शुद्ध व्रजभाषा में है। यह कृष्णभक्त कवियों की शैली पर वैसा ही सरस तथा मनोरम है। बाललीला तथा रामराज्य के सुख, ऐश्वर्य का विस्तार से वर्णन है और अन्य का संक्षिप्त। कुछ पद ऐसे भी है, जो सूरदास की प्रतिलिपि मात्र है और केवल राम श्याम, तुलसी सूर आदि का हेरफेर है। हो सकता है, तुलसीभक्तो ने ऐसा किया हो।

१०. श्रीकृष्ण गीतावली--इसमें ६१ पदो में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन है। इससे कई पद सूरदासजी के भी छाप बदल कर मिल गए है। यह किसी क्रम से नही बना है प्रत्युत समय समय पर बने पदों का संग्रह है। श्रीकृष्ण की कुछ लीलाओ का वर्णन करने पर विरह, गोपी-उद्धव-संवाद, भ्रमर गीत तथा द्रौपदी के वस्त्र बढाने की कथा है।

११. विनय पत्रिका--इसमें विनय के २७९ पद है। यह गोस्वामीजी की अंतिम रचना ज्ञात होती है और इसमें इनकी कवित्व शक्तिपूर्ण रूप से प्रकट हुई है। इसमे इनके अगाध पांडित्य, शब्दकोप, काव्यकौशल आदि का पूरा परिचय मिलता है। यह पत्रिका प्रार्थना के रूप मे सजाई गई है और इतनी हार्दिक आस्था से लिखी गई है कि अवश्व ही भगवान् श्रीरामचद्र ने इसे स्वीकार कर लिया होगा।

मानस चतुश्शती वर्ष के अवसर पर इस तुलसी ग्रथावली सबधी सकल्प को और अधिक प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करने का व्रत सभा ने लिया। सभा द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस एवं मानसेतर एकादश ग्रथो के संशोधित मूल पाठ के प्रकाशन के उपरांत अन्यान्य प्रयत्न भी इन ग्रंथो के शुद्ध पाठ के लिये किए गए। उन सबको ध्यान मे रखकर और गंभीर अध्ययन मनन करने पर सभा इस निष्कर्ष पर पहुँची कि ग्रंथावली का अद्यतन पाठ जो सभा का है, उसे प्रामाणिक मानकर उपस्थित किया जाय जो असंगतियाँ रह गई हैं उनका निराकरण यथाशक्ति पूर्ण रूप से कर दिया जाय।

तुलसी ग्रंथावली का द्वितीय खंड इसी दृष्टि से विद्वज्जनो के समक्ष उपस्थित किया गया जिसमें परिशिष्ट के रूप में पाठभेद और प्रतीकानुक्रमणी भी दे दी गई है।

त्रिशती के अवसर पर संवत् १९८० वि० में तुलसी ग्रंथावली का तृतीय खंड निबंधावली के रूप में प्रकाशित हुआ जिसमें गोस्वामीजी के संबंध में कुल १६ निबंध संगृहीत किए गए थे। उसकी प्रस्तावना संपादकमंडल के अन्यतम सदस्य आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखी थी। २४१ पृष्ठों की इस प्रस्तावना के दो खंड थे—जीवनी खंड और आलोचना खंड। आगे चलकर प्रस्तावना का आलोचना खंड 'गोस्वामी तुलसीदास' शीर्षक से परिवर्धित रूप में प्रकाशित हुआ। यह ग्रंथ गोस्वामीजी की गरिमा को अनेक रूपों में अभिव्यक्ति देता है और अपने क्षेत्र में अद्वितीय है। शेष १६ लेख अनेक विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोण से लिखे हैं।

चतुःशती के अवसर पर तृतीय खंड निबंधावली के रूप में प्रकाशित करने का निश्चय सभा ने किया। लगभग ५० वर्षों की इस अवधि में गोस्वामी तुलसीदास और उनके काव्य पर इतना अधिक विचारमंथन हुआ है और इतना अधिक लिखा गया है कि शायद ही कुछ नया कहा या लिखा जाय। साहित्यिक, सामाजिक, दार्शनिक, लोकतांत्रिक आदि अनेक दृष्टि से विचार व्यक्त किए गए हैं। अनेक शोध ग्रंथ भी लिखे गए हैं और लिखे जा रहे हैं। पक्ष और विपक्ष में समालोचनाएँ भी हुई हैं। समीक्षा विज्ञान के मूल्य बदल जाने के फलस्वरूप ऐसा होना स्वाभाविक है। पर गोस्वामी जी का स्थान उस श्रेणी के साहित्य निर्माताओं में है जो कालजयी और वास्तविक द्रष्टा हैं। उनकी रचनाएँ सनातन हैं एवं उनपर काल का प्रभाव नहीं पड़ सकता। अतः ग्रंथावली के तृतीय खंड के प्रकाशन में यह निर्णय लिया गया कि उसमें कुछ लेख पुरानी ग्रंथावली से लिए जायँ और कुछ लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका के प्राचीन अंकों से भी। इस संबंध में विद्वानों को पत्र भी लिखे गए तथा उनसे भी कुछ लेख संगृहीत किए गए। इस प्रकार तुलसी ग्रंथावली के तृतीय खंड को मूर्त रूप दिया गया।

ग्रंथावली के संगृहीत लेखों में आठ लेख पुरानी ग्रंथावली के हैं, पाँच लेख नागरी प्रचारिणी पत्रिका के पुराने अंकों से गृहीत हैं तथा अन्य लेख विशिष्ट विद्वानों के हैं जिनमें विभिन्न दृष्टियों से विचार किया गया है। इस प्रकार गोस्वामीजी के संबंध में प्राचीन एवं नवीन विचारों का संकलन प्रस्तुत ग्रंथावली में देने की चेष्टा की गई है।

ग्रंथावली के तीन खंडों के प्रकाशन के अनंतर सभा ने चतुर्थ खंड को प्रकाशित करने की योजना की जिसमे गोस्वामीजी के सुभाषितों और काव्यांगो का क्रमवद्ध संग्रह और विवेचन हो। इस दृष्टि से चतुर्थ खड अन्योक्तियाँ, नीतिवचन, मुहावरे, लोकोक्ति, सूक्ति, अवांतर कथाएँ, छदप्रयोग भाववर्णन और रसनिरूपण एवं अलकार और ध्वनि, आदि से संवलित है। इस प्रकार गोस्वामीजी के संबंध में उनके काव्यों से संकलित एवं काव्याग सबधी विवेचनाओ का एक संमिलित रूप प्रस्तुत ग्रंथावली मे देने की चेष्टा की गई है जिससे गोस्वामीजी के साहित्य के सबध में अधिकांश महत्वपूर्ण सामग्री एक साथ प्राप्त हो सके।

ग्रंथावली के इस खड में गोस्वामी जी के संबंध में अद्यावधि प्रकाशित यथा सभव समग्र ग्रथों का विवेचनात्मक संक्षिप्त विवरण भी हम देना चाहते थे जिसे समयाभाव के कारण नही दे पा रहे है। पत्रिका के आगामी अंको में इसका प्रकाशन करने का यथासंभव प्रयत्न किया जायगा।

सभा का यह कभी आग्रह नहीं रहा है कि जो कुछ यहाँ होता है केवल उसे ही प्रामाणिक माना जाय, वल्कि उसकी मान्यता है कि जितना अधिक कार्य हो सके उतना ही अच्छा और श्रेयस्कर है। सभा अपने कार्य को अंतिम नहीं मानती, किंतु विद्वानो का विश्वास और श्रेय सभा के सत्कार्यों को निरंतर प्राप्त रहा है।

इस कार्य मे हमे सभा के साहित्य मंत्री डॉ० नागेंद्रनाथ उपाध्याय से वडी मूल्यवान् सहायता मिली है। संपादक मंडल के सदस्यो तथा सभा के मंत्रियो एवं कार्यकर्ताओ का भी मै अनुगृहीत हूँ, जो इस कार्य मे वरावर सहयोग देते रहे। प० विश्वनाथ त्रिपाठी और प० लालधर त्रिपाठी ने इस ग्रथावली के प्रकाशन में जहाँ तक उसके संपादन और प्रकाशन दोनो का सबध है, वडी ही निष्ठा, गंभीरता और दूरदर्शिता के साथ कार्य किया है। सर्वश्री व्रजेद्रनाथ पांडेय, नवीनचंद्र लोहनी, व्रजेशचंद्र पांडेय आदि ने प्रेस कापी तैयार करने मे निरंतर श्रम किया है। इसके लिये हम उनके प्रति आभारी हैं।

मुद्रण विभाग के सभी सहकर्मियों की तत्परता से यह कार्य समय पर पूर्ण हो सका है अत. उनके प्रति भी हम आभार व्यक्त करते है।

सभा भारत सरकार के प्रति भी हृदय से कृतज्ञ है जिसने इस अवसर पर इस महत्कार्य के संपादन एवं प्रकाशन के लिये वित्तीय अनुदान प्रदानकर इसे संपन्न करने में सक्षम बनाया।

हमें विश्वास है कि अपने युगधर्म के कारण तुलसी ग्रंथावली घर घर पहुँच जाएगी और तुलसी का संदेश लोकमंगल की प्रतिष्ठा कर युग को चिरंतन आलोक प्रदान करता रहेगा।

तुलसीजयंती
(श्रावण शु० ७)
संवत् २०३४

सुधाकर पांडेय
संयोजक
संपादक मंडल
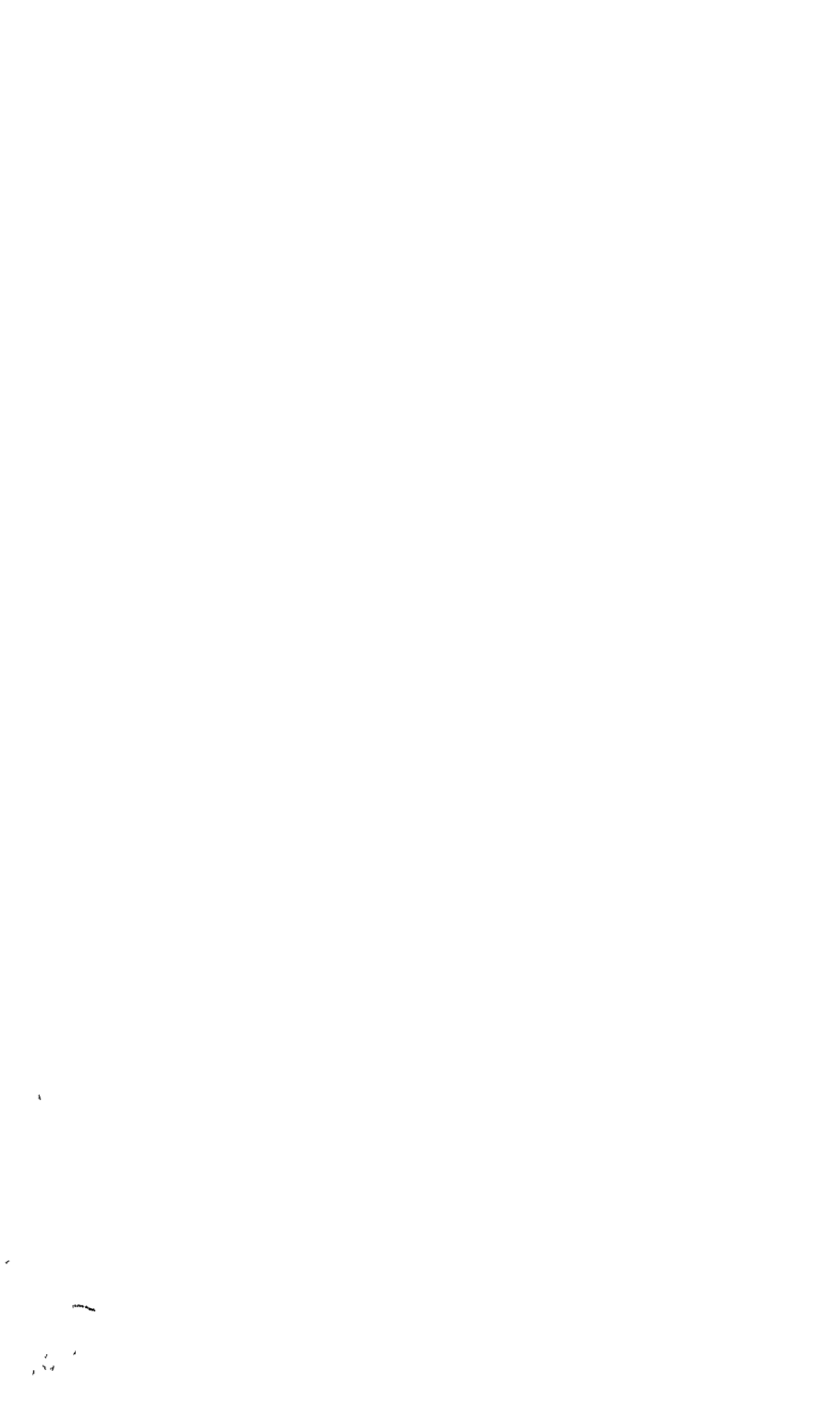
तुलसी ग्रंथावली

चतुर्थ खंड

अ

अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई । हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१८४

क

कह तुलसिदास किन भजसि मन भद्रसदन, मर्दनमयन ॥

उ० का०, क०—१५२

कहा भयो कपट जुआ जो हौं हारी ?

कृ० गी०, छंद ६०

कहु खगेस अस कवन अभागी । खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—११०

च

चंद किरन रस रसिक चकोरी । रवि रुख नयन सकै किमि जोरी ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—५९

छ

छूटै मल कि मलहि के धोए । घृत कि पाव कोई वारि विलोए ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—४९

ज

जलचर बृंद जाल अंतरगत होत सिमिटि इक पासा ।
एकहि एक खात लालच-बस, नहिँ देखत निज नासा ॥

विनय०, छंद—९२

त

तुलसी दलि रूँध्यो चहै सठ साखि सिहोरे ॥

विनय०, छंद—८

तेरे देखत सिंह को सिसु मेढक लीले ।

विनय०, छंद—३२

अ

अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई । हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१८४

क

कह तुलसिदास किन भजसि मन भद्रसदन, मर्दनमयन ॥

उ० का०, क०—१५२

कहा भयो कपट जुआ जो हौं हारी ?

कृ० गी०, छंद ६०

कहु खगेस अस कवन अभागी । खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—११०

च

चंद किरन रस रसिक चकोरी । रवि रुख नयन सकै किमि जोरी ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—५९

छ

छूटै मल कि मलहि के धोए । घृत कि पाव कोई वारि बिलोए ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—४९

ज

जलचर बृंद जाल अंतरगत होत सिमिटि इक पासा ।
एकहि एक खात लालच-बस, नहिँ देखत निज नासा ॥

विनय०, छंद—९२

त

तुलसी दलि रूँध्यो चहैं सठ साखि सिहोरे ॥

विनय०, छंद—८

तेरे देखत सिंह को सिसु मेंढक लीले ।

विनय०, छंद—३२

न

नट कृत विकट कपट खगराया । नट सेवकहि न व्यापै माया ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा १०४

नव रसाल वन विहरन सीला । सोह कि कोकिल विपिन करीला ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—६३

नहि विष बेलि अमिअ फल फरहीं ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१८६

निगम नेति सिव ध्यान न पावा । मायामृग पाछे सोइ धावा ।।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा—२१

निज भ्रम ते रविकर-सभव सागर अति भ्रम उपजावै ।
अवगाहत बोहित, नौका चढि कबहूँ पार न पावै ।।

विनय०, छंद–१

प

परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लपट ।।

विनय०, छंद–१२६

पेड़ काटि त पालउ सीचा । मीन जिअन निति वारि उलीचा ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१६१

प्रभा जाइ कहँ भानु विहाई । कहँ चद्रिका चंदु तजि जाई ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—६७

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई । अभिअंतर मल कबहु न जाई ।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—४६

फ

ालि सुसाली । मुकुता प्रसन कि सवुक काली ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२६१

व

सोह सुत सुभग-सजीवनि मूरि ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—५६

म

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जिअइ कि लवन पयोधि मराली ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—६३

स

ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रविकर-जल काहे धावहिं ॥

विनय०, छंद-२३७

सुरसर सुभग वनज बन चारी । डाबर जोगु कि हंसकुमारी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—६०

नीति

अ

अंधकार वरु रविहि नसावै । राम बिमुख न जीव सुख पावै ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२२

अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२४४

अग्याँ सम न सुसाहिब सेवा । सो प्रसादु जनु पावइ देवा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३०१

अद्यकि पिसुवता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११२

अति हरि कृपा जाहि पर होई । पाउँ देइ अेहि मारग सोई ।

मानस, सप्तम सोपान, दो०–१२९

अतुलित महिमा वेद की तुलसी किए विचार ।
जो निंदत निंदित भयो विदित बुद्ध अवतार ।।

दो०, दोहा–४६४

अनहित भय परहित किए, पर-अनहित हितहानि ।
तुलसी चारु विचार भल, करिग काज सुनि आनि ।।

दो०, दोहा–४६७

अनुचित उचित काजु किछु होऊ । समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२३१

अनुज बधू भगिनी सुत नारी । सुन सठ कन्या सम ए चारी ।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकै जोई । ताहि बधें कछु पाप न होई ।।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–९

अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितुबैन ।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन ।।

दो०, दोहा–५४१

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालिहि पितु वयन ।
ते भाजन सुख सुजस के बसहि अमरपति अयन ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७४

अपनो ऐपन निजहथा, तिय पूजहिँ निज भीति ।
फलै सकल मन कामना, तुलसी प्रीति प्रतीति ।।
दो०, दोहा–४५४

अब मोहि भा भरोस हनुमंता । विनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता ।
मानस, पञ्चम सोपान, दोहा–७

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहौं निरवान ।
जनम जनम रति राम पद येह वरदानु न आन ।।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२०४

अर्क जवास पात विनु भयेऊ । जस सुराज खल उद्यम गयेऊ ।
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१५

अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि ।
तातें कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि ।
मानस, तृतीय सोपान, दोहा–३८

अवध प्रभाव जान तब प्रानी । जब उर वसहि रामु धनुपानी ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९७

आ

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । सेवा धरमु कठिन जगु जाना ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९३

आपन छोड़े साथ जब ता दिन हितू न कोइ ।
तुलसी अंबुज अंबु विनु तरनि तासु रिपु होइ ।।
दो०, दोहा–५३४

आयसु मोर सासु सेवकाई । सब विधि भामिनि भवन भलाई ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६१

इ

इंद्र कुलिस मम सूल विसाला । कालदंड हरिचक्र कराला ।
जो इन्हकर मारा नहिं मरई । विप्र द्रोह पावक सो जरई ।।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०९

इंद्रिन सुरन्ह न ज्ञान सोहाई । विषय भोग पर प्रीति सदाई ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११८

इमि कुपंथ पग देत खगेसा । रह न तेज तन वुधि वल लेसा ।
मानस, तृतीय सोपान, दोहा–२२

ई

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११७

ईस–सीस बिलसत बिमल, तुलसी तरल तरंग।
स्वान सरावग के कहे लघुता लहै न गंग॥

दो०, दोहा–३८३

उ

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२६९

उदासीन नित रहिअ गोसाईं। खल परिहरिअ स्वान की नाईं।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०६

उदित अगस्ति पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखइ संतोषा।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१६

उपरोहित कर्म अतिमंदा। वेद पुरान सुमृति कर निंदा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४८

उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर॥

दो०, दोहा–२८३

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११२

उमा जोग जप दान तप, नाना मख ब्रत नेम।
रामु कृपा नहि करहि तसि, जसि निष्केवल प्रेम॥

मानस, पष्ठ सोपान, दोहा–११७

उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–३५

उमा राम गुन गूढ़ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ़ जे हरि बिमुख न धर्म्मरति॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–१

उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–३४

उमा संत कइ इहइ बडाई । मंद करत जो करै भलाई ।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–४१

ऊ

ऊसर बरपै तृन नहि जामा । जिमि हरिजन हिय उपज न कामा ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१५

ए

ओह कलिकाल मलायतन मन करि देखु विचार ।

श्री रघुनाथ नामु तजि नाहिन आन अधार ॥

मानस, पष्ठ सोपान, दोहा–१२१

ओहि कलिकास न साधन दूजा । जोग जज्ञ जप तप व्रत पूजा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१३०

एहि तन कर फल विषय न भाई । स्वर्गों स्वल्प अंत दुखदाई ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४४

एक पिता के विपुल कुमारा । होहिं पृथक गुन सील अचारा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–८७

एहि सन हठि करिहौ पहिचानी । साधु ते होइ न कारज हानी

मानस, पचम सोपान ,दोहा–६

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी । परमारथी प्रपंच वियोगी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–९३

औ

औरी एक गुपुत मत सभहि कहौं कर जोरि ।

संकर भजन विना नर भगति न पावै मोरि ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४५

क

कंटक करि करि परत गिरि, साखा सहस खजूरि ।

मरहि कुनृप करि करि कुनय, सो कुचालि भव भूरि ।।

दो०, दोहा—५१४

कठिन काल मल कोस, धर्म्म न ज्ञान न जोग तप ।

परिहरि सकल भरोस, रामहि भजहि ते चतुर नर ।।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा—६,

कबहु कि दुख सब कर हित ताके । तेहि कि दरिद्र परसमनि जाके ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११२

कबहुँ दिवस महुँ निविड़ तम, कबहुक प्रकट पतंग ।
विनसइ उपजइ ज्ञान जिमि, पाइ कुसंग सुसग ॥
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१५

कबहुँ प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कपूत के उपजे, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१५

करइ स्वामि हित सेवकु सोई । दूखन कोटि देइ किन कोई ॥
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१८६

करम वचन मन छाडि छलु, जब लगि जनु न तुम्हार ।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नही, किये कोटि उपचार ॥
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१०७

करि विचार जिय देखहु नीके । राम रजाइ सीस सबही के ॥
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२५४

करि विचारि, चलु सुपथ, भल आदि मध्य परिनाम ।
उलटि जपे 'जारा मरा' सूधे 'राजा राम' ॥
दो० दोहा—३६७

करै जो करमु पाव फलु सोई । निगम नीति प्रासि कह सबु कोई ॥
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—७७

कलि कर एक पुनीत प्रतापा । मानस पुन्य होहिं नाहि पापा ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०३

कलिजग केवल हरि गुन गाहा । गावत नर पावहिं भव थाहा ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०३

कलिजुग जोग न जग्य न ज्ञाना । एक अधार राम गुन गाना ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०३

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर विश्वास ।
गाइ राम गुन गन विमल भव तर बिनहि प्रयास ॥
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०३

कलि पाषंड प्रचार, प्रबल पाँवर पतित ।
तुलसी अभय अधार, राम नाम, सुरसरि-सलिल ॥
दो०, दोहा—५६६

कल्प कल्प भरि अेक अेक नरका । परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१००

कवनिउँ सिद्ध कि बिनु विस्वासा । बिनु हरि भजन न भव भय नासा ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—९०

कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई । राम परायन सो परि होई

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—९७

कलह न जानव छोट करि, कलह कठिन परिनाम ।
लगति अगिनि लघु नीचगृह, जरत धनिक-धन-धाम ॥

दो०, दोहा—४२६

कहत नसाइ होइ हिअँ नीकी । रीझत राम जानि जन जी की ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—२९

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई । जब तव सुमिरन भजनु न होई ।

मानस, पंचम सोपान, दोहा—३२

कहहिं सुनहि अनमोदन करहीं । ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१२६

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न मख जप तप उपवासा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—४६

कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी । कोउ अेक पाव भगति जिमि मोरी ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१६

कहो तात तुम्ह नीति सुहाई । सबतें कठिन राजमदु भाई ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२३१

काटेहि पइ कदली फरै, कोटि जतन कोउ सींच ।
विनय न मान खगेस सुनु, डाटेहि पै नव नीच ॥

मानस, पंचम सोपान, दोहा—५८

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि ।
तिय बिसेषि पुनी चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१४

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहि जेहि संत ।

मानस, पचम सोपान, दोहा—३८

कामधेनु सत कोटि समाना । सकल काम दायक भगवाना ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—९२

कारन ते कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर ।
कुलिस अस्थि तें, उपल तें, लोह कराल कठोर ॥

दो०, दोहा—५०२

काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल ।
पाप पलीता, कठिन गुरु, गोला पुहुमीपाल ।

दो०, दोहा—५१५

कालधर्म नहिं व्यापहिं ताही । रघुपति चरन प्रीति अति जाही

मानस, सप्तम सोपान; दोहा—१०४

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता । निज कृत करम भोग सबु भ्राता ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—९२

काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ ।
का न करइ अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—४७

काहू की जौं सुनहि बड़ाई । स्वास लेहि जनु जूड़ी आई ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—४०

काहू सुमति कि खल सँग जामी । सुभ गति पाव कि पर त्रिय गामी ।

मानअ, सप्तम सोपान, दोहा—११२

किएँ अन्यथा होई नहि विप्र श्राप अति घोर ।।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—१७४

कीट मनोरथ दारु सरीरा । जेहि न लाग घुन को अस धीरा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—७१

कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दंभ पापड ।
दहन राम-गुन-ग्राम जिमि, ईंधन अनल प्रचंड ।।

दो०, दोहा—५६५

कूप खनत मंदिर जरत, आए धारि बबूर ।
बवहिं, नवहि निज काज सिर, कुमति-सिरोमनि कूर ।।

दो०, दोहा—४८७

कृतयुग त्रेता द्वापरहुँ, पूजा मख अरु जोग ।
जो गति होई सो कलि हरिनाम ते पावहिं लोग ।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०२

कृपी निरावहिं चतुर किसाना । जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१५

कै निदरहु कै आदरहु, सिंहहि स्वान सियार ।
हरख विषाद न केसरिहिं, कुंजर-गंजनिहार ॥

दो०, दोहा—३८१

कै लघु कै बड़ मीत भल, समसनेह दुख सोइ ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस, मिले महाविष होइ ॥

दो०, दोहा—३२३

कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु ।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—८६

कोउ बह्म निर्गुन ध्याव । अव्यक्त जेहि श्रुति गाव ।
मोहि भाव कोसल भूप । श्री राम सगुन सरूप ।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा—११२

कोटि विघ्न ते संत कर, मन जिमि नीति न त्याग ॥

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा—३४

कौल कामबस कृपन विमूढ़ा । अतिदरिद्र अजसी अतिबूढ़ा ।
सदा रोग बस सतत क्रोधी । बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी ।
तनु पोषक निंदक अघखानी । जीवत सव सम चौदह प्रानी ॥

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा—३१

कौरव पाडव जानिए, क्रोध छमा के सीम ।
पाँचहि मारि न सौ सके, सओ सँहारे भीम ॥

दो०, दोहा—४२

क्रोध कि द्वैत बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिन अज्ञान ।
माया बस परिछिन्न जड़, जीव कि ईस समान ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१११

क्रोधिहि सम कामहि हरि कथा । ऊसर बीज बोये फल जथा ।

मानस, पंचम सोपान, दोहा—५८

ख

खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल ।
कुमति बालि दसकंठ घर, सुहृद बंधु कियो काल ॥

दो०, दोहा—४४२

-खल-उपकार विकार-फल, तुलसी जान जहान।
मेंढक, मर्कट, वनिक, वक कथा सत्य-उपखान।।

दो०, दोहा—३९८

-खल विनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूपक इव सुनु उरगारी।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१२१

-खल मंडली वसहु दिनु राती। सखा धर्म निवहइ केहि भाती।

मानस, पंचम सोपान, दोहा—४६

-खलन्ह हृदय अति ताप विसेखी। जरहि सदा पर संपति देखी।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—३९

-खोजत कतहु मिलइ नहि धूरी। करै क्रोध जिमि धरमहि दूरी।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१५

ग

-गठिबँध तें परतीति वड़ि, जेंहि सव को सव काज।
कहव थोर समुझव वहुत, गाड़े वढ़त अनाज।।

दो०, दोहा—४५३

-गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही।

मानस, पचम सोपान, दोहा ५

गिरिजा रघुपति कै यह रीती। संतन करहि प्रनत पर प्रीती।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा—३

-गिरिजा संत समागम, सम न लाभ कछु आन।
विनु हरि कृपा न होई सो, गावहिं वेद पुरान।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१२५

गुन कृत सन्यपात नहि केही। कोउ न मान मद तजेउ निवेही।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—७१

-गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोप भल कहै न कोऊ।

मानस, पचम सोपान, दोहा—३८

-गुर के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही।।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—८०

-गुर पितु मातु वंधु सुर साई। सेइअहि सकल प्रान की नाई।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—७४

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी।

मानस, द्वितीय सोपान दोहा—१७७

गुर श्रुति संमत धरम फलु, पाइअ बिनहि कलेस।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—६१

गुर बिनु भवनिधि तरै न कोई। जौ बिरंचि संकर सम होई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—९३

गुर बिवेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व करबदर समाना।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१८२

गोड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल।
साम न दाम, न भेद कलि, केवल दंड कराल॥

दो०, दोहा—५५६

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तन धारी।

मानस, पंचम सोपान, दोहा—३९

गोली, बान, सुमंत्र, सर, समुझि उलटि मन देखु।
उत्तम, मध्यम, नीच, प्रभु, बचन बिचारि बिसेखु॥

दो०, दोहा—५१९

ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होइ कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग॥

दो०, दोहा—३६४

च

चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१७

चढे बघूरे चंग ज्यों, ज्ञान ज्यों सोक-समाज।
करम, धरम, सुख-संपदा, त्यों जानिबे कुराज॥

दो०, दोहा—५१३

चरन चोंच लोचन रँगी, चली मराली चाल।
छीर-नीर बिबरन समय, बक उघरत तेहि काल॥

दो०, दोहा—३३८

चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहि बुद्धि बल बानी।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा—७४

चर्म देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—११०

चल न ब्रह्म कुल सन बरिआई। सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—१६५

चलब नीतिमग, रामपग-नेह-निवाहब नीक।

दो०, दोहा—४६९ (अ)

चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ स्रम, तजहिं आश्रमी चारि।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१६

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१७

चिंता सापिनि को नहि खाया। को जग जाहि न व्यापी माया।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—७१

छ

छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०९

छिद्यो न तरुनि–कटाछ सर, करेउ न कठिन सनेहु।
तुलसी तिनकी देह को जगत कवच करि लेहु।।

दो०, दोहा—४३८

छीजहि निसिचर दिनु अरु राती। निज-मुख कहे सुकृत जेहि भाँती।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा—७२

छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई।

मानस, चतुर्थ सोपान दोहा—१४

ज

जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहि सिंगारु न कहउँ बखानी।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—१०३

जग बौराइ राजपदु पाएँ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२२८

जगु भल भलेहि पोच कहुँ पोचू ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२१७

जड़ चेतन गुन-दोषमय, विस्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार ॥

दो० दोहा—३६६

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा । जाइअ बिनु बोले न सँदेहा ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६२

जद्यपि प्रभु जानत सब बाता । राजनीति राखत सुर त्राता ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–२३

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ । दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१

जनि मानहु हिय हानि गलानी । काल करम गति अघटित जानी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१६५

जब काहू कै देखहिं बिपती । सुखी भए मानहु जग नृपती ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४०

जरउ सो संपति सदन सुखु, सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहस सहाइ ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१८५

जल सकोच बिकल भइ मीना । अबुध कुटुंबी जिमि धन हीना ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१६

जलु पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति की रीति भलि ।
बिलग होइ रसु जाइ, कपट खटाई परत पुनि ॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–५७

जहँ कहुँ निंदा सुनहि पराई । हरषहि मनहुँ परी निधि पाई ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–३९

जहँ जहँ राम चरन चलि जाहीं । तिन्ह समान अमरावति नाहीं ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—११३

जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना । जिमि इंद्रिय गन उपजे ग्याना ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१५

जहँ लगि नाथ नेह अरु नातें । पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६५

जहँ लगि साधन वेद वखानी। सव कर फल हरि भगति भवानी।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१२६

जहाँ सुमति तहँ सपति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–४०

जाकर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–७

जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होइ श्रुति गावा।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–२५

जा के हृदय भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१८५

जानिअ तव मन विरुज गोसाई। जव उर वल विराग अधिकाई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२२

जानिअ तवहि जीव जग जागा। जव सव विषय विलास विरागा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–९३

जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–४३

जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१६

जाने विनु न होइ परतीती। विनु परतीति होइ नहि प्रीती।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२६

जाय जोग जग छेम विनु, तुलसी के हित राखि।
विनुऽपराध भृगुपति, नहुप, वेनु, वृकासुर साखि।।

दो०, दोहा–४७२

जा रिपु सों हारेहु हंसी, जिते पाप परितापु।
तासो रारि निवारिए, समय सँभारिय आपु।

दो०, दोहा–४३२

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव वंधन काटहि नर ज्ञानी।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–२०

जासु भरोसे सोइए, राखि गोद में सीस।
तुलसी तासु कुचाल तें, रखवारो जगदीस।।

दो०, दोहा–४०५

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७१

जासु सकल मंगलमय कीती । तासु पयान सगुन यह नीती ।
मानस, पंचम सोपान, दोहा–३५

जिअ बिनु देह नदी बिनु वारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६५

जिन्ह कृत महामोह मद पाना । तिन्हकर कहा करिय नहिं काना ।।
मानस, प्रथम सोपान, दो० १२

जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ।
मानस, प्रथम सोपान, दो०–१८०

जीवनमुक्त महामुनि जेऊ । हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–५३

जूझे ते भल बूझिबो, भली जीति तें हारि ।
डहके से डहकाइबो, भलो जो करिय विचारि ।।
दो०, दोहा–४३१

जे गुर पद अंबुज अनुरागी । ते लोकहुँ वेदहुँ बड़हुँभागी ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२५६

जे नाथ करि करुना विलोके त्रिविध दुख ते निर्वहे ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१३

जे सठ गुर सन इरिपा करही । रौरव नरक कोटि जुग परही ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०७

जे हित रहे करत तेइ पीरा । उरग स्वास सम त्रिविध समीरा ।
मानस, पंचम सोपान, दोहा–१५

जेहि ते नीच बड़ाई पावा । सो प्रथमहि हठि ताहि नसावा ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०६

जो अँचवत नृप मातहि तेई । नाहिन साधु सभा जेहि सेई ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२३१

जो अपराधु भगत कर करई । राम रोप पावक सो जरई ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२१८

जो आपन चाहइ कल्याना । सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना ।
सो परनारि लिलार गोसाईं । तजौ चौथ के चंद की नाईं ।।
मानस, पंचम सोपान, दोहा–३८

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–९२

जोगु कुजोगु ग्यानु-अग्यानू। जहँ नहिं राम पेमु परधानू।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९१

जो चेतन कह जड़ करै, जड़हि करै चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि, भजहिं जीव ते धन्य॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११९

जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४४

जो मधु मरै, न मारिये, माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ।

दो०, दोहा–४३३

जो सुनि समुझि अनीतिरत, जागत रहै जु सोइ।
उपदेसिबो जगाइके तुलसी उचित न होइ॥

दो०, दोहा–४८९

जौ हठ करउँ त निपट कुकरमू। हर गिरि ते गुरु सेवक धरमू।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२५३

जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही।
तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना॥

मानस, पंचम सोपान, दोहा–४८

जौवन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७१

जौ सब के रह ज्ञान एक रस। ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७८

ज्ञान अखंड एक सीताबर। माया बस्त जीव सचराचर।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७८

ज्ञान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११९

ज्ञानी तापस सूर कवि, कोविद गुन आगार।
केहि कै लोभ विडंबना, कीन्हि न ओहि संसार।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७०

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—३६

ठ

ठाढो द्वार न दै सकैं, तुलसी जे नर नीच।
निंदहि वलि, हरिचंद को, का कियो करन, दधीचि ।।

दो०, दोहा–३८२

ढ

ढोल गवार सूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–५६

त

तजि माया सेइअ परलोका। मिटहि सकल भव संभव सोका।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—२३

तदपि विरोध मान जहँ कोई। तहाँ गए कल्यान न होई।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—६२

तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—४१

तनु, गुन, धन, महिमा, धरम, तेहि बिनु जेहि अभिमान।
तुलसी जिअत बिडंबना, परिनामहु गत जान।।

दो०, दोहा—३६०

तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसध कहुँ तृन सम वरनी।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—३५

तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—६५

तप बल विप्र सदा बरिआरा। तिन्हके कोप न कोउ रखवारा।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—१६५

तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहि विरोधे नहिं कल्याना।
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। वैद बदि कबि मानस गनी।।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा—२०

तव लगि कुसल न जीव कहु, सपनेहु मन बिश्राम ।
जब लगि भजन न राम कहु, सोक धाम तजि काम ।

मानस, पचम सोपान, दोहा—४६

तब लगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन विश्राम ।
जब लगि भजन न राम कहँ, सोक धाम तजि काम ।।

दो०, दोहा—१३१

तब लगि हृदय वसत खल नाना । लोभ मोह मच्छर मद माना ।
जब लगि उर न वसत रघुनाथा । धरे चाप सायक कटि भाथा ।

मानस, पंचम सोपान, दोहा—४७

तात कहौ कछु करौ ढिठाई । अनुचितु छमव जानि लरिकाई ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—४५

तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू । जसु जग जाइ होइ अपवादू ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—७७

तात तीनि अति प्रवल ये, काम कोध अरु लोभ ।
मुनि विज्ञान धाम मन, करहिं निमिप महुँ छोभ ।।
लोभ के इच्छा दभ वल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के परुष वचन वल, मुनिवर कहहिं बिचारि ।।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा—३२

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला अेक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसग ।

मानस, पचम सोपान, दोहा—४

तामस बहुत रजोगुन थोरा । कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०४

ताहि कवहु भल कहै न कोई । गुजा ग्रहै परसमनि खोई ।

मानस, सप्तम सापान, दोहा—४४

ताहि कि संपति सगुन सुभ, सपनेहु मन विस्राम ।
भूत द्रोह रत मोह वस, राम विमुख रति काम ।।

मानस, पष्ठ सोपान, दोहा—७८

ताहि की संपति सगुन सुभ सपनेहु मन विस्राम ।
भूत द्रोहरत मोहवस, राम विमुख रतकाम ।

दो०, दोहा—२७२

तीनि जनम द्विज वचन प्रवाना।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—१२३

तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—९२

तीरथ पति पुनि देखु प्रयागा। निरखत जन्म कोटि अघ भागा।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा—१२०

तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि नाम विधाता।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१४३

तुम्हरिहि कृपा तुम्हहिं रघुनंदन। जानहि भगत उर चंदन।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१२७

तुलसी असमय के सखा धीरज, धर्म, विवेक।
साहित, साहस, सत्यव्रत, रामभरोसो एक॥

दो०, दोहा—४५७

तुलसी खल वानी मधुर, सुनि समुझिय हिय हेरि।
रामराज बाधक भई, मूढ़ मंथरा चेरि॥

दो०, दोहा—३९९

तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय॥

दो०, दोहा—४५०

तुलसी जे अभिमान विनु ते त्रिभुवन के दीप॥

दो०, दोहा—५३०

तुलसी ज कीरति चहहिं पर की कीरति खोइ।
तिनके मुँह मसि लागि है, छिटहि न मरिहै धोइ॥

दो०, दोहा—३८९

तुलसी तीरत तीरतरु, वक हित हंस विडारि।
विगत ननिल-अलि, मलिन जल, सुरसरिहू वढ़ियारि॥

दो०, दोहा—४९८

तुलसी दान जो देत है, जल में हाथ उठाय।
प्रतिग्राही जीवै नही, दाता नरकै जाय॥

दो०, दोहा—५३३

तुलसी देखत, अनुभवत, सुनत न समुझत नीचु ।
चपरि चपेटे देत नित, केस गहे कर मीचु ।।

दो०, दोहा—२४८

तुलसी देखि सुबेखु भूलहि मूढ़ न चतुर नर ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—१६१

तुलसी देवल देव को, लागे लाख करोरि ।
काक अभागे हगि भरयो, महिमा भई कि थोरि ।।

दो०, दोहा—३८४

तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीक ।।

दो०, दोहा—४६९ (आ)

तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन ।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन ? ।।

दो०, दोहा—५६४

तुलसी भजु सोच-विमोचन को, जन को पन राम न राख्यो कहाँ ।।

कवि०, उ० का०—८

तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़-जनता-सनमान ।
उपजत ही अभिमान भो, खोवत मूढ़ अपान ।।

दो०, दोहा—४९५

तुलसी मीठी अमी तें, माँगी मिलै जो मीच ।
सुधा सुधाकर समय विनु, कालकूट तें नीच ।।

दो०, दोहा—४४६

तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती, साधु, सयान ।
जो बिचारि व्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान ।।

दो०, दोहा—४७१

तुलसी स्वारथ सामुहो, परमारथ तनु पीठि ।
अंध कहे दुख पाइहो, डिडियारो केहि डीठि ? ।।

दो०, दोहा—४८१

तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि :
तीय, तनय, सेवक, सखा, मन के कंटक चारि ।।

दो०, दोहा—४७६

ते जड़ जीव निजात्मक घाती । जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—५३

द

दामिनि दमक रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१४

दीन दयालु बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी।
मानस पंचम सोपान, दोहा–२७

दीप सिखा सम जुबति तन, मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सत संग॥
मानस, तृतीय सोपान, दोहा–४०

दीरघ रोगी, दारिदी, कटुबच, लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ, होहिं निरादर-जोग॥
दो०, दोहा–४७७

देखिअत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं।
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१५

देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई।
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१७

देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९९

देश-काल-करता-करम, बचन-बिचार-बिहीन।
ते सुरतरु-तर दारिदी, सुरसरि-तीर मलीन॥
दो०, दोहा–४१४

देह धरे कर येह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई।
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–२४

ध

धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९२

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–४६

धरनि-धेनु चारितु चरत, प्रजा-सुबच्छ पेन्हाइ।
हाथ कछू नहिं लागिहै, किए गोड़ की गाइ।
दो०, दोहा–५१२

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७२

धरा धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि नि॰पम प्रभु जगदीसा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९२

धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभगा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२७

धन्य सो भूप नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई।

मानस, सप्तम सोपान दोहा–१२७

धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जाकर मन राता।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२७

धाय लगे लोहा ललकि, खैचि लेइ नइ नीचु।
समरथ पापी सों बयर, जानि बिसाही मीचु॥

दो०, दोहा–४७९

धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०६

न

नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाप।
दस दिसि देखत सगुन सुभ, पूजहि मन अभिलाष।

दो०, दोहा–४६०

नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत ते हित जानी।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७५

नर तन सम नहि कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२१

नर तनु पाइ बिषय मन देही। पलटि सुधा ते सठ विष लेही।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४४

नर वर धीर धरम धुरधारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७१

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहि ते सहहिं महा भव भीरा।

मानस, सप्तम सोपान दोहा–४१

नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई।
मानस, तृतीय सोपान, दोहा–१८

नहि असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२८

नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग माहीं।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२१

नाथ दीन दयाल रघुराई। बाघौ संमुख गए न खाई।
मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–७

नाथ बयरु कीजे ताही सो। बुधि बल सकिअ जीति जाही सो।
मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–६

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह करै छन माहीं।
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–२०

नारि चरित जलनिधि अवगाहू।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२७

नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा।
लोभ पास जेहि गर न बँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया॥
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–२१

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया॥
मानस, षष्ठ सोपान दोहा–१६

निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं।
मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–३७

निज गुन घटत न नागनग, परखि परिहरत कोल।
तुलसी प्रभु भूषन किए, गुंजा बढ़े न मोल॥
दो०, दोहा–३८५

निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्र क दुख रज मेरु समाना।
जिन्ह के असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई।
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–७

निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–४७

निज सुख विनु मन होइ कि थीरा । परस कि होइ विहीन समीरा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९०

नित जुग धर्म होहिं सब केरे । हृदय राम माया के प्रेरे ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०४

निफल होहिं रावन सर कैसे । खल के सकल मनोरथ जैसे ।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–९१

निर्मल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कपट छल छिद्र न भावा ।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–४४

निसि तम घन खद्योत विराजा । जनु दंभिन कर मिला समाजा ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१५

नीच गुडी ज्यों जानिवो, सुनि लखि तुलसीदास ।
ढीलि दिए गिरि परत महि, खैंचत चढ़त अकास ॥

दो०, दोहा–४०१

नीच निरादर ही सुखद, आदर सुखद विसाल ।
कदरी वदरी विटप गति, पेखहु पनस रसाल ॥

दो०, दोहा०–३५४

नीच निरावहिं निरस तरु, तुलसी सींचहि ऊख ।
पोपत पयद समान सब, विष पियूष के रूख ॥

दो०, दोहा–३७७

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु । कोउ न राम सम जान जथारथु ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२५४

प

पंक न रेनु सोह अस धरनी । नीति निपुन नृप कै जसि करनी ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१६

पन्नगारि असि नीति, श्रुति संमत सज्जन कहहिं ।
अति नीचहु सन प्रीति, करिअ जानि निज परम हित ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९५

पर उपदेस कुसल वहुतेरे । जे आचरहि ते नर न घनेरे ।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–७८

परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७८

परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गिरीसा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२१

पर द्रोही पर दार रत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पावर पाप मय, देह धरे मनुजाद॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–३९

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४१

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–२५

परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२५०

पाके, पकये, बिटप-दल, उत्तम मध्यम नीच।
फल नर लहै, नरेस त्यों करि बिचार मन बीच॥

दो०, दोहा–५१०

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–४४

पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भव सागर तरहीं।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–२९

पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावै कोई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११२

पाही खेती, लगनवट, रिन, कुब्याज, मग खेत।
बैर बड़े सों आपने, किए पाँच दुख-हेत॥

दो०, दोहा–४७८

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७५

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पदपूजा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४५

पुन्यपुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४५

पुन्य, प्रीति, पति, प्रापतिउ, परमारथ–पथ पाँच।
लहहिं सुजन, परिहरहिं खल, सुनहु सिखावन साँच॥

दो०, दोहा–३५३

पुरुष त्यागि सक नारिहिं, जो बिरक्त मति धीर।
न तु कामी बिषयावस, बिमुख जो पद रघुबीर॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११५

पुरैनि सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म।
माया छन्न न देखिऐ, जैसे निर्गुन ब्रह्म॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–३३

पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहिं राम के नाते।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७४

पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–२८

पेरत कोल्हू मेलि तिल, तिली सनेही जानि।
देखि प्रीति की रीति यह, अब देखिबी रिसानि॥

दो०, दोहा–४०३

प्रगट चारि पद धरम के, कलि महँ एक प्रधान।
येन केन बिधि दीन्हें ही, दान करै कल्यान॥

दो०, दोहा–५६१

प्रभु अपने नीचहु आदरही। अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरही।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२८५

प्रभु आग्रेसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाति रहे सुख लहई।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–५९

प्रभु सनमुख भए नीच नर निपट होत बिकराल।
रबि रुख लखि दरपन फटिक, उगिलत ज्वालाजाल॥

दो०, दोहा–३७५

प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–८९

प्रीति विरोध समान सन करिय नीति असि आहि।
जौ मृगपति वध मेड़ुकन्हि भल कि कहै कोउ ताहि॥

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा—२३

फ

फल भर नभ्र विटप सब, रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि, नवहिं सुसंपति पाइ॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा—३४

फूलै फरै न बेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलैं बिरंचि सिव॥

दो०, दोहा—४८४

व

बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हे। कर्म कि होहिं स्वरूपहिं चीन्हे॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—११२

बचन कहे अभिमान के, पारथ पेखत सेतु।
प्रभुतिय लूटत नीच भर, जय न, मीचु तेहि हेतु॥

दो०, दोहा—४४०

बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहि जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे॥

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा—९

बचन वेष क्यों जानिए मन मलीन नर नारि।
सूपनखा, मृग, पूतना, दसमुख प्रमुख विचारि॥

दो०, दोहा—४०८

बड़ि प्रतीति गठिबंध तें, बडो जोग ते छेम।

दो०, दोहा—४७३ क

बड़े विबुध दरबार ते, भूमि भूप दरबार।
जापक पूजक पेखियत, सहत निरादर भार॥

दो०, दोहा—३९३

बड़ें भाग पाइब सतसंगा। बिनहि प्रयास होहिं भव भंगा॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—३३

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—४३

बड़ो सुसेवक साइँ ते, बड़ो नेम तें प्रेम ॥

दो०, दोहा—४७३ ख

वयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सों ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—३९

बरषत करषत आपु जल, हरषत अरघनि भानु।
तुलसी चाहत साधु सुर, सब सनेह सनमानु ॥

दो०, दोहा—४[illegible]

बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा-सुभाग तें, भूप भानु सो होइ ॥

दो० दोहा—५०८

बरखहिं जलद भूमि नियराए। जथा नवहिं बुध बिद्या पाए।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१४

बरखि बिस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद को जो जल जरै जवास ॥

दो०, दोहा—३७८

बलकल भूषन, फल असन, तृन सय्या, द्रुम प्रीति ॥
तिन्ह समयन लंका दई, यह रघुबर की रीति ॥

दो०, दोहा—१६२

बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०४

बाढ़े खल बहु चोर जुवारा। जे लंपट पर धन पर दारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी ॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—१८४

बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ, अेह सिद्धांत अपेल ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१२२

बालक भ्रमहि न भ्रमहि गृहादी। कहहिं परसपर मिथ्यावादी।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०३

विधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१६२

विनु आँखिन की पानही, पहिचानत लखि पाय।
चारि नयन के नारि नर, सूझत मीचु न माय॥
दो०, दोहा-४८२

विनु औषध विआधि विधि खोई।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा—१७१

विनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग विनु।
गावहि वेद पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति विनु॥
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—८६

विनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१६

विनु तप तेज कि कर विस्तारा। जल विनु रस कि होइ संसारा॥
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—६०

विनु प्रपच छल भीख भलि, लहिय न दिए कलेस।
वावन वलि सो छल कियो, दियो उचित उपदेस॥
दो०, दोहा—३६४

विनु विज्ञान कि समता आवै। कोउ अवकास कि नभ विनु पावै॥
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—६०

विनु विस्वास भगति नहिं, तेहि विनु द्रवहि न रामु।
राम कृपा विनु सपनेहु, जीव न लह विश्रामु॥
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—६०

विनु संतोष काम न नसाही। काम अछत सुख सपनेहु नाही।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—६०

विन सतसग न हरि कथा, तेहि विनु मोह न भाग।
मोह गए विनु राम पद, होइ न दृढ अनुराग॥
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—६१

विविध जतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा वाढ़ जिमि पाइ सुराजा।
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१५

विवुध-काज बावन बलिहि, छलो भलो जिय जानि ।
प्रभुता तजि वस भे तदपि मन की गई न गलानि ।।

दो०, दोहा–३९६

विरुचि परखिए सुजन जन, राखि परखिए मंद ।
बड़वानल सोखत उदधि, हरष बढावत चंद ।।

दो०, दोहा–३७४

विय वस्य सुरनर मुनि स्वामी । मैं पाँवर पसु कपि अतिकामी ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–२१

विपइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा । श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–५३

विपई साधक सिद्ध सयाने । त्रिविध जीव जग बेद बखाने ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२७७

विस्नु कोटि सम पालन कर्ता । रुद्र कोटि सत सम संघर्ता ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९२

वुध जुगधर्म जानि मन माही । तजि अधर्म रति धर्म कराही ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०४

वूँद अघात सहहिं गिरि कैसे । खल के वचन संत सह जैसे ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१४

वेद विहित संमत सबही का । जेहि पितु देइ सो पावइ टीका ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७५

वेष विसद, वोलनि मधुर, मन कटु, करम मलीन ।
तुलसी राम न पाइए, भए विपय-जल-मीन ।।

दो०, दोहा–१५३

वैखानस सोइ सोचइ जोगू । तपु विहाइ जेहि भावइ भोगू ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७३

वैर-मूल-हर हित-वचन, प्रेम मूल उपकार ।
'दोहा' सुभ-संदोह सो, तुलसी किए विचार ।।

दो०, दोहा–४३४

वैरी पुनि छत्री पुनि राजा । छल बल कीन्ह चहै निज काजा ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१६०

वोल न मोटे मारिए, मोटी रोटी मारु।
जीति सहस सम हारिबो, जीते हारि निहारु ॥

दो०, दोहा–४२६

वोलहिं मधुर वचन जिमि मोरा। खाइ महा अहि हृदय कठोरा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—३६

व्यालहु तें विकराल वड़, व्याल फेन जिय जानु।
वहि के खाए मरत है, वह खाए विनु प्रानु ॥

दो०, दोहा–५०२

भ

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।

सप्तम सोपान, मानस, दोहा–४५

भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहिं जगजाल ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—६३

भगतिहि ज्ञानहि नहि कछु भेदा। उभै हरहिं भव संभव खेदा ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—११५

भगति हीन गुन सव सुख ऐसे। लवन विना वहु व्यंजन जैसे।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–८४

भगति हीन नर सोहै कैसा। विनु जल वारिद देखिय जैसा।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा—२६

भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—३०

भयदायक खल कै प्रिय वानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा—१८

भय विनु होइ न प्रीति ॥

मानस, पंचम सोपान, दोहा—५७

भरदर वरषत कोस सत, वचैं जे वूँद वराइ।
तुलसी तेउ खल-वचन-सर, हए, गए न पराइ ॥

दो०, दोहा—४०२

भरुहाए नट भाट के चपरि चढे, संग्राम।
कै वै भाजे आइहैं, कै बाँधे परिनाम॥

दो०, दोहा—४२२

भलो कहै बिनु जानेहूँ, बिनु जाने अपवाद।
ते नर गादुर जानि जिय, करिय न हरष विषाद॥

दो०, दोहा—३८७

भलो भले सो छल किए जनम कनौड़ो होइ।
श्रीपति सिर तुलसी लसति, बलि-बावन गति सोइ॥

दो०, दोहा—३९५

भव कि परहिं परमात्मा बिंदक। सुखी कि होहिं कबहु हरिनिंदक।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—११२

भवसागर चह पार जो पावा। रामकथा ता कहँ दृढ़ नावा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—५३

भागे भल, ओड़ेहु भलो, भलो न घाले घाउ।
तुलसी सबके सीस पर, रखवारो रघुराउ॥

दो०, दोहा—४२४

भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा २३

भाव बस्य भगवान, सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान, भजि सदा सीतारवन॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—९२

भूमि जीव संकुल रहे, गये सरद रितु पाइ।
सदगुर मिले जाहि जिमि, संसय भ्रमु समुदाइ॥

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१७

भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१४

म

मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१२६

मंत्री, गुरु अरु बैद जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज, धरम, तन तीनि कर होइ बेगिही नास॥

दो०, दोहा—५२४

मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—७१

मनकामना सिद्धि नर पावा। जे येह कथा कपट तजि गावा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१२६

मन क्रम वचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—७२

मनि मानिक महँगे किए, सहँगे तृन, जल नाज।
तुलसी एतो जानिए, राम गरीब-नेवाज॥

दो०, दोहा—५७३

ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥

मानस, पंचम सोपान, दोहा—४७

ममतारत सन ज्ञान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥

मानस, पंचम सोपान, दोहा—५८

मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१७

महावृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतंत्र भये बिगरहि नारी।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१५

माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड पसारि।
पाप-प्रतिष्ठा बढि परी, ताते बाढी रारि॥

दो०, दोहा–४९४

मातु पिता गुर स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर, नतरु जनमु जग जायँ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७०

मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३०६

मातु-पिता-गुरु-स्वामि-सिख सिर धरि करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन जनम कर, नतरु जनम जग जाय।।

दो०, दोहा—५४०

मातु पिता प्रभु गुर कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—७७

मान्य मीत सों सुख चहै, सो न छवै छलछाँह।
ससि, त्रिसकु, कैकेइ गति लखि तुलसी मन माँह।।

दो०, दोहा—३२४

मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया।

मानस द्वितीय, सोपान, दोहा—२१८

माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुनखानी।

मानस, सप्तम, सोपान, दोहा—७८

मारसि गाइ नहारू लागी।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—३६

माली भानु किसान सम, नीति निपुन नरपाल।
प्रजा भाग बस होहिंगे कबहुँ कबहुँ कलिकाल।।

दो०, दोहा—५०७

मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किए जोग तप ज्ञान बिरागा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—६२

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को एक।
पालै पोषै सकल अँग, तुलसी सहित विवेक।।

दो०, दोहा—५२२

मुनि तापस जिन्ह ते दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१२६

मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महा मोह निसि सूतत जागू।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा—५६

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—४६

मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—११६

मोह निसा सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–९३

य

येहि तें अधिकु धरमु नहि दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६१

र

रसना मन्त्री, दसन जन, तोष पोष निज काज।
प्रभु-कर सेन पदादिका, बालक राज-समाज॥

दो० दोहा–५२५

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१६

राकापति षोडस उअहिं, तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन दव लाइए, बिनु रवि राति न जाइ॥

दो०, दोहा–३८६

राखै गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जगत्राता।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१६६

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहु इन्हके बस होहू।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७५

राज करत बिनु काज ही, करैं कुचालि कुसाज।
तुलसी ते दसकंध ज्यों, जइहैं सहित समाज॥

दो०, दोहा–४१६

राज करत बिनु काज ही, ठटहिं जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरराज ज्यों, जइहैं बारह बाट॥

दो०, दोहा–४१७

राजु कि रहै नीति बिनु जाने। अघ कि रहहिं हरि चरित बखाने।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११२

राजु नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रमफल पढें किएँ अरु पाएँ॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–१५

रामकथा के तेइ अधिकारी । जिन्ह के सतसंगति अति प्यारी ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२८

रामकृपा बिनु सुनु खगराई । जानि न जाइ राम प्रभुताई ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–८९

रामचरन पंकज प्रिय जिन्हही । विपय भोग बस करहिं कि तिन्हही ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–८४

रामचरित जे सुनत अघाही । रस बिसेष जाना तिन्ह नाही ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–५३

राम नाम बिनु गिरा न सोहा । देखु बिचारि त्यागि मद मोहा ।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–२३

राम बिमुख लहि बिधि सम देही । कवि कोविद न प्रसंसहि तेही ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९६

राम बिमुख संपति प्रभुताई । जाइ रही पाई बिन पाई ।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–२३

राम भगति जिन्ह के उर नाही । कबहुँ न तात कहिय तिन्ह पाही ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११३

रामभजन बिनु मिटहि न कामा । थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९०

राम राम कहि जे जमुहाही । तिन्हहि न पाप पुंज समुहाही ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१९४

राम लषन कौसिक सहित, सुमिरहु करहु पयानु ।
लच्छिलाभ लै जगत जसु, मंगल सगुन प्रमान ॥

दो०, दोहा–४६३

राम लषन बिजयी भए, बनहु गरीब निवाज ।
मुखर बालि रावन गए, घर ही सहित समाज ॥

दो०, दोहा०–४४१

राम सिंधु घन सज्जन धीरा । चंदन तरु हरि संत समीरा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२०

रामहि भजहिं तात सिव धाता । नर पावर कै केतिक बाता ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०६

रामहि सुमिरत, रन भिरत, देत, परत गुरु पाय।
तुलसी जिन्हहि न पुलक तनु, ते जग जीवत जाय॥

दो०, दोहा–४२

रामहि सुमिरिय गाइअ रामहि। संतत सुनिय राम गुन ग्रामहि।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१३०

रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९१

रामु ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–९३

रावनारि जसु पावन, गावहि सुनहि जे लोग।
रामभगति दृढ़ पावहि, बिनु बिरागु जपु जोग॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–४०

रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिअ न ताहु।
अजहुँ देत दुख रवि ससिहि, सिर अविसेषित राहु॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१७०

रिपु रिन रंच न राखब काऊ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२२९

रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–१५

रीझि आपनी बूझि पर, खीझि विचार-विहीन।
ते उपदेस न मानहीं, मोह-महोदधि-मीन॥

दो०, दोहा–४८५

रीझि खीझि गुरु देत सिख, सखा सुसाहिब साधु।
तोरि खाय फल होइ भल, तरु काटे अपराधु॥

दो०, दोहा–५११

रोष न रसना खोलिए, बरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर, परिनाम हित, बोलिय वचन विचारि॥

दो०, दोहा–४३५

ल

लखि गयंद लै चलत भजि, स्वान सुखानो हाड़।
गज-गुन, मोल, अहार, बल, महिमा जान कि राड़?॥

दो०, दोहा–३८०

लखै अघानो भूख में, लखै जीति में हारि।
तुलसी सुमति सराहिएं, मग पग धरै विचारि।।

दो०, दोहा–४४३

लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–३२

ललित लपन मूरति-मधुर, सुमिरहु सहित सनेह।
सुख-सपति-कीरति-विजय-सगुन-सुमगल गेह।।

दो०, दोहा–२१०

लातेहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२२६

लाभु कि कछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति सत पुराना।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११२

लोगनि भलो मनाव जो, भली होन की आस।
करत गगन को गेंडुआ, सो सठ तुलसीदास।।

दो०, दोहा–४६१

लोकहुँ बेद विदित कवि कहहीं। रामविमुख थलु नरक न लहहीं।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२५२

लोभइ ओढन लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४०

श

श्रद्धा विना धर्म नहि होई। बिनु महि गध कि पावै कोई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९०

श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता वधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैनसर को अस लागि न जाहि।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७०

श्रुति कह परम धरम उपकारा।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–८४

स

संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुँ वास।।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–२

संकर विमुख भगत चह मोरी । सो नारकी मूढ़ मति थोरी ।
मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–२

संग ते जती कुमंत्र ते राजा । मान ते ज्ञान पान तें लाजा ।
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी । नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥
मानस, तृतीय सोपान, दोहा–१५

संत उदय संतत सुखकारी । बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१११

संत कहहिं असि नीति दसानन । चौथेपन जाइहिं नृप कानन ।
मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–७

संत बिटप सरिता गिरि धरनी । परहित हेतु सबन्ह कै करनी ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२५

संत संग अपबर्ग कर, कामी भव कर पथ ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–३३

संत संभु श्रीपति अपबादा । सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा ।
काटिय तासु जीभ जु बसाई । श्रवन मूँदि न त चलिय पराई ॥
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६४

संत सहहिं दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असंत अभागी ॥
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२१

संसृति मूल सूलप्रद नाना । सकल सोक दायक अभिमाना ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७४

सकल कामप्रद तीरथराऊ । बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२०४

सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७५

सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू । राम सीय पद सहज सनेहू ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७५

सखा परम परमारथु एहू । मन क्रम बचन राम पद नेहू ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–९३

सगुनोपासक मोक्ष न लेही । तिन्ह कहुँ राम भगति निज देही ।
मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–११२

सचिव बैद गुरु तीनि जौ, प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिही नास ।।

मानस, पचम सोपान, दोहा–३७

सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं । वरपि गए पुनि तवहि सुखाहीं ।।

मानस, पचम सोपान, दोहा–२३

सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपन सन सुंदर नीती ।।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–५८

सठ सहि साँसत पति लहत, सुजन कलेस न काय ।
गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिए, गंडक सिला सुभाय ।।

दो०, दोहा–३९२

सतसंगति दुर्लभ संसारा । निमिषि दंड भरि एको वारा ।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२३

सत्य मूल सव सुकृत सुहाए । बेद पुरान बिदित मुनि गाए ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२८

सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा । सव विधि सुख त्रेता कर धर्मा ।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०४

सदा रोगवस संतत क्रोधी । विष्णु बिमुख श्रुति संत विरोधी ।।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–३१

सपने होइ भिखारि नृपु, रंकु नाकपति होइ ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंचु जिय जोइ ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–९२

सव कर हित रुख राउरि राखें । आएसु किए मुदित फुर भाखे ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२५८

सव तरु फरे राम हित लागी । रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी ।।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–५

सव ते सो दुर्लभ सुरराया । राम भगति रत गत मद माया ।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–५४

सव विधि सोचिअ पर अपकारी । निज तनु पोपक निरदय भारी ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७३

सभा सुजोधन की सकुनि, सुमति सराहन जोग ।
द्रोन बिदुर भीषम हरिहिं, कहँ प्रपंची लोग ॥

दो०, दोहा–४१८

समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७

समरथ कोउ न राम सो, तीय हरन अपराधु ।
समयहि साधे काज सब, समय सराहहिं साधु ॥

दो०, दोहा–४४८

समिटि समिटि जल भरहि तलावा । जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१४

सरदातप निसि ससि अपहरई । संत दरस जिमि पातक टरई ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१७

सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा । विश्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–३९

सरनागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।
तेनर पाँवर पापमय, तिनहिं बिलोकत हानि ॥

दो०, दोहा–५४३

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पावर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि ।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–४३

सरल सुभाव न मन कुटिलाई । जथालाभ संतोष सदाई ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४६

सरिता जल जलनिधि महुँ जाई । होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१४

सरिता सर निर्मल जल सोहा । संत हृदय जस गत मद मोहा ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१६

ससि संपन्न सोह महि कैसी । उपकारी कै संपति जैसी ॥

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१५

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहइ ।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–५

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि विहाई॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—३०१

सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करई सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—६३

सहज सुहृद गुरु स्वामी सिख, जो न करै सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितहानि॥

दो०, दोहा—४२१

सहवासी काचो गिलहि, पुरजन पाक-प्रवीन।
कालछेप केहि मिलि करहिं, तुलसी खग-मृग मीन॥

दो०, दोहा—४०४

उाहसा करि पाछे पछिताही। कहहिं वेद वुध ते वुध नाही॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२३१

सहि कुवोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान।
तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान॥

दो०, वोहा—४६६

साखा मृग कै वड़ि मनुसाई। साखा ते साखा पर जाई॥

मानस, पचम सोपान, दोहा—३३

साधु अवज्ञा कर फल ऐसा। जरै नगर अनाथ कर जैसा॥

मानस, पंचम सोपान, दोहा—२६

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा।
जाय जिअत जग सो महि भारू। जननी जौवन विटप कुठारू॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१६०

सानकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करै द्विज सेवा॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—४५

सारद कोटि अमित चतुराई। विधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—९२

सारदूल को स्वाँग करि, कूकर की करतूति।
तुलसी तापर चाहिए, कीरति विजय विभूति॥

दो०, दोहा—४१२

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा ८६

सासु, ससुर, गुरु, मातु, पितु, प्रभु, भयो चह सब कोइ।
होनो दूजी ओर को, सुजन सराहिय सोइ ॥

दो०, दोहा–३६१

सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ॥
राखिय नारि जदपि उर माहीं। जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं ॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–३१

साहब तें सेवक बडो, जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि, लाँधि गए हनुमान ॥

दो०, दोहा–५२८

सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६१

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहु मोहि न पावा ॥

मानस, पंचम सोपान, दोहा–२

सिष्य, सखा, सेवक, सचिव, सुतिय सिखावन साँच।
सुनि समुझिय, पुनि परिहरिय, पर मनरंजन पाँच ॥

दो०, दोहा–४७४

सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रुप गोसाईं ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–६०

सुख हरषहिं जड दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–५५०

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकौ बाधा ॥

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१७

सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहि।
जथा धर्म सीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहि ॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–३२

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहि जग बारहिंबारा ॥

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–६१

सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७१

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानु-कुलकेतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति-सागर-सेतु॥

दो०, दोहा–११६

सुद्ध सत्व समता बिज्ञाना। कृत प्रभाव प्रसन मन जाना॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०४

सुधा, साधु, सुरतरु, सुमन, सुफल, सुहावनि बात।
तुलसी सीतापति भगति, सगन सुमंगल सात॥

दो०, दोहा–४६१

सुआ, सुनाज, कुनाज, पल, आम, असम, सम जानि।
सुप्रभु प्रजाहित लेहिं कर, सामादिक अनुमानि॥

दो०, दोहा–५०८

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिय न काऊ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–३९

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–२७

सुनहु तात मायाकृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं, देखिअ सो अबिबेक॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४१

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवन मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२७१

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढा। सहसा करि पछितांहि बिमूढ़ा॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१९२

सुनि मुनि तोहि कहौं सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करौं सदा तिन्हकै रखवारी। जिमि बालक राखै महतारी॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–३७

सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–४१

सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार।
गुनौ बहुत कलियुग कर बिनु प्रयास निस्तार॥

सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरि तोषन ब्रत द्विज सेवकाई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०९

सुनु महीस असि नीति, जहँ तहँ नाम न कहहिं नृप।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१६३

सुनु माता साखामृग, नहि बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप ते गरुड़हि, खाइ परम लघु ब्याल।

मानस, पंचम सोपान, दोहा–१६

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहँ नारि बसंता॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–३८

सुर नर मुनि कोउ नाहि, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस बिचारि मन माहि, भजिअ महा मायापतिहि॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२४०

सुर नर मुनि कोउ नाहि, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस विचारि मन माहि, भजिय महा माया पतिहि॥

दो०, दोहा–२७६

सुर सदननि, तीरत, तुरिन, निपट कुचालि कुसाज।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज॥

दो०, दोहा–५५८

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाय रिपु, कायर करहिं प्रलापु।

दो०, दोहा–४३९

सूर समर करनी करहि, कहि न जनावहि आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर करहि प्रलापु॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२७४

सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकवि सराहहिं सोइ॥

दो०, दोहा–५२३

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी॥

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–७

सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनी धन सुभगति बिभिचारी।
लोभी जस चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी।।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–११

सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धांत बिचारि।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११९

सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२६८

सोइ कवि कोविद सोइ रनधीरा। जो छल छाँड़ि भजै रघुबीरा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२७

सोइ गुनज्ञ सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–२३

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजै रघुबीरा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९६

सोउ मुनि ग्यान निधान, मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होइ हरिजान, नारि बिस्व माया प्रकट।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११५

सोक को अगार दुख-भार-भरो तौलों जन,
जौलों देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना।।

क०, उ० का०–१४८

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायन, जेहि नर उपज बिनीत।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२७

सोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छाड़ि छलु हरि जनु होई।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७३

सोचिय गृही जो मोह बस, करइ करमपथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत, बिगत बिवेक बिराग।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७२

सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७२

सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी । जननि जनक गुर बंधु बिरोधी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७३

सोचिअ पुनि पतिबंचक नारी । कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७२

सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई । जो नहि गुर आयसु अनुसरई ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७२

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू । जो न अतिथि सिव भगत सुजानू ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७२

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना । तजि निज धरमु बिषय लवलीना ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७२

सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी । मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७२

सोचिय गृही जो मोहबस, करै करमपथ-त्याग ।
सोचिय जती प्रपंच-रत, बिगत-बिबेक-बिराग ।।

दो०, दोहा–४८०

सो तैं ताहि तोहि नहि भेदा । बारि बीचि इव गावहिं बेदा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१११

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी । धन्य पुन्यरत मति सोइ जाकी ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२७

सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२४६

सो सुख करमु धरमु जरि जाऊ । जहँ न राम पद पंकज भाऊ ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९१

सोह न राम पेम बिनु ग्यानू । करनधार बिन जिमि जलजानू ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२७७

स्रवन घटहु, पुनि दृग घटहु, घटहु सकल बल देह ।
इते घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि-नेह ? ।।

दो०, दोहा–५६३

स्रापत ताड़त परुष कहंता । बिप्र पूज्य अस गावहिं संता ।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–२८

स्रुति-संमत हरि-भक्तिपथ, संजुत विरति विवेक।
तेहि परिहरहिं विमोहवस, कल्पहिं पथ अनेक॥

दो०, दोहा—५५५

स्वपच सबर खस जमन जड़, पाँवर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१९४

स्वामी सुसील समर्थ सुजान सो तोसो तुही दसरत्थ-दुलारे॥

क०, उ० का०—१२

स्वारथ मीत सकल जग माही। सपनेहु प्रभु परमारथ नाही।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—४७

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम वचन राम पद नेहा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—९६

ह

हरित भूमि तृन संकुल, समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड वाद तें, गुप्त होंहि सदग्रंथ॥

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—१४

हरि माया कृत दोष गुन, विनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब, अस विचारि मन माहिं॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०४

हरि सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि विद्या।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—७९

हरि हर निंदा सुनै जो काना। होइ पाप गोघात समाना।

मानस षष्ठ सोपान, दोहा—३२

हरै सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—९९

हानि कि जग अेहि सम कछु भाई। भजिय न रामहि नर तनु पाई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—११२

हित पुनीत सब स्वारथहिं, अरि असुद्ध विनु चाड़।
निज मुख मानिक सम दसन, भूमि परे ते हाड़॥

दो०, दोहा—३३०

हिमगिरि कोटि अचल रघबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९२

हृदय कपट, वर वेष धरि, वचन कहै गढ़ि छोलि।
अब के लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिए मन खोलि॥

दो०, दोहा–३३२

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४७

होइ न विमल विवेक उर, गुर सन किये दुराव।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–४५

होइ विवेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–९३

होइ भले के अन भलो, होइ दानि के सूम।
होइ कुपूत सुपूत के, ज्यों पावक में धूम॥

दो०, दोहा–३६८

होत आदरे ढीठ हीं अति नीच निचाई॥

विनय०, पद–३५

मुहावरा

अ

अंग अंग अगनित अनंग–छवि उपमा कहत सुकवि सकुचात ।
गी० अयोध्या, पद–।।४।।१५।।

अंजन–केस–सिखा जुवती तहँ लोचन–सलभ पठावौ ।।
विनय०, पद–१४२

अंतहु भाव भलो भाई को, कियो अनभलो मनाइकै ।
भइ कूवर की लात विधाता, राखी वात वनाइकै ।।
गी०, सुदरकांड, पद–२८

अघ अवगुनन्हि की कोठरी करि कृपा मुदमंगल भरी ।
गी०, अरण्यकांड, पद–७

अघन, अगुन, आलसिन को पालिवो फवि आयो रघुनायक नवीव को ।।
विनय०, पद–२७४

अगनेहिं धाम नाम-सुरतरु तजि विषय-ववूर-वाग मन लायो ।
विनय०, पद–२४४

अव केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो ।।
विनय०, पद–६४

अव तुलसी पूतरो वाँधिहै सहि न जात मोपै परिहास एते ।
विनय०, पद–२४१

असन, वसन, वसु, वस्तु विविध विधि सव मनि महँ रह जैसे ।
विनय०, पद–१२४

आ

आँखिन में, सखि ! राखिवे जोग, इन्हें किमि कै वनवास दियो है ? ।।
क०, अ० का०–२०

आनँदसिंधु मध्य तव वासा । विनु जाने कस मरसि पियासा ।।
विनय०, पद–२

आनाकानी, कंठ हँसी मुहाँ–चाही होन लगी ।
गी०, वालकांड, पद–८

आपको भले हैं सब, आपने को कोऊ कहूँ,
सबको भलो हैं राम ! रावरे चरन ।।

विनय०, पद–२५७

आप पाप को नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो ।

विनय०, पद–१४३

आयसु इतहि स्वामि-संकट उत, परत न कछू कियो है ।
तुलसिदास 'विहरयो अकास सो कैसे कै जात सियो है ।।'

गी०, लंकाकांड, पद–१०

आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करें निज हाथ की छाँहैं ।।

क०, उ० का०–११

इ

इहै समुझि सुनि रहौं मौन ही, कहि श्रम कहा गँवावों ? ।।

विनय०, पद–२३२

उ

उकठे विटप लागे फूलन फरन ।

विनय०, पद–२५७

उठति वयस, मसि भींजति, सलोने सुठि,
सोभा-देखवैया बिनु वित्त ही बिकैहैं ।

गी०, अयोध्याकांड, पद–२

ए

एतो बड़ो अपराध, भौ न मन बाँवों ।

विनय०, पद–७२

एहि दुख दाह दहइ दिन छाती । भूख न बासर नीद न राती ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२१२

ऐ

ऐसेहूँ थल बामता, बड़ि बाम बिधि की बानि ।

गी०, उत्तरकांड, पद–६२

औ

औसर कौ चूकियो सरिस न हानि ।।

गी०, सुंदरकांड, पद–७

क

कछु ह्वै न आइ गयो जनम जाय ।

विनय०, पद–८३

कटि तूनीर कसे, कर सर-धनु चले हरन छिति भार ॥

गी०, अयोध्याकांड, पद–३

कटु कहिए गाढे परे सुनु समुझि सुसाईं ।
करहिं अनभले को भलो आपनी भलाईं ॥

विनय०, पद–३५

कबहुँ समुझि वनगमन राम को रहि चकि चित्रलिखी सी ।
तुलसिदास वह समय कहे ते लागति प्रीति सिखी सी ॥

गी०, अयोध्याकांड, पद–५२

करम धरम स्रम-फल रघुबर बिनु ।
राख को सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो ।

विनय०, पद–२६४

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताही । जनु बिनु पंख विहग अकुलाहीं ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७६

करि हंस को बेष बड़ो सब सों, तजि दे बक बायस की करनी ॥

क०, उ० कां०–३२

कलि कालहुँ नाथ नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर की निवही है ।

विनय०, पद–२७९

कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए ।
जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि ॥

पद–१८४

कहत नसानी ह्वैहै हिये नाथ नीकी है ?

विनय०, पद–१७८

कहत सुगम, करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि-आई ।

विनय०, पद–१६७

कहत हित अपमान मैं कियो, होत हिय सोइ सालु ।
रोष छमि सुधि करत कबहूँ, ललित लछिमन लालु ?

गी०, सुदरकांड, पद–३

कहाँ जाउँ ? कासो कहौं ? को सुनै दीन की ?

विनय०, पद–१७९

कहु केहि लहे फल रसाल बबुर-बीज बपत।

विनय०, पद–१३०

कहौ कौन मुँह लाइ कै, रघुबार गुसाईं।

विनय०, पद–१४८

कह्यो है पछोरन छूछो।

कृ० गी०, पद–४३

काँच तें कृपानिधान किए सुवरन।

विनय०, पद–२५७

काँट कुराँय लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँउँ बझाऊ रे।

विनय०, पद—१८६

काढ़त दंत, करंत हहा है॥

क०, उ०का०–३६

कान्ह, अलि ! भए नए गुरु ज्ञानी।

कृ०गी०, पद–४७

कामधनु-धरनी कलि-गोमर विवस विकल, जामति न वई है।

विनय०, पद–१३६

कामधेनु महि, विटप कामतरु, कोउ विधि वाम न लाए।

गी०, लंकाकांड, पद–२२

काम-भुअंग डसन जब जाही। विषय निंब कटु लगति न ताही।

विनय०, पद–१२०

कीजै दास दास तुलसी अब कृपासिंधु बिनु मोल बिकाउँ।

विनय०, पद–१५३

कीर ज्यों नाम रटै तुलसी सो कहै जग जानकीनाथ पढ़ायो।

क०, उ० का०–६०

कुलगुरु, सचिव, निपुन नेवनि अवरेब न समुझि सुधारी॥

गी०, बालकांड, पद–१

कूजत विहँग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक जनु लेत बुलाई।

गी०, अयोध्याकांड, पद–४

कूदत करि रघुनाथ-सपथ उपरी–उपरा बदि बाद॥

गी०, सुंदरकांड, पद–२२

कूर कुजाति कुपूत अघी सब की सुधरै जो करै नर पूजो ॥

क०, उ० का०–५

केहि भाँति कहौं, सजनी ! तोहि सो मृदु मुरति द्वै निवसी मन मो हैं ॥

क०, अ० का०–२५

कै ए सदा वसहु इन्ह नयनन्हि, कै ए नयन जाहु जित ए री।

गी०, वालकांड, पद–२

कौसिक से कोही वस किये दुहुँ भाई हैं ॥

गी०, वालकाड, पद–२

क्यों न मारै गाल वैठो काल–डाढ़नि वीच ॥

गी०, सुदरकांड, पद–६

ख

खोटो खरो रावरो हौ, रावरी सौ, रावरे सों ।

विनय०, पद–७५

ग

गएउ तुम्हारेहि कोछे घाली ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१८

गड़त गोड़ मानों सकुच-पंक महँ, कढ़त प्रेम-वल धीर।

गी०, अयोध्याकांड, पद–३

गहि न जाति रसना काहू की, कहौ जाहि जोइ सूझै ?

गी०, अयोध्याकांड, पद–३

गाँठी वांध्यो दाम सो परखो न फिरि खर खोट ।।

विनय०, पद–१६१

गोपद वूड़िवे जोग करम करौ वातनि जलधि थहावों ।

विनय०, पद–२३२

गोमर-कर सुरधेनु, नाथ ! ज्यों, त्यों पर-हाथ परी हौ ॥

गी०, अरण्यकांड, पद–७

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहु टेका ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४५

घ

घालेसि सबु जगु वारह वाटा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२१२

घोर भव-नीरनिधि, नाम निज नाव रे।

विनय०, पद–६६

च

चतुरंग चमू पल मे दलि कै रन रावन राढ के हाड गढे॥

क०, लंकाकांड–६

चरन-सरोज बिसारि तिहारे, निसि-दिन फिरत अनेरो।

विनय०, पद–१४३

चलदल को सो पात करै चित चर को॥

गी०, बालकांड, पद–१।६७

चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।

विनय०, पद–२२६

चित्र कलपतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै॥

विनय०, पद–१२३

ज

जग में गति जाहि जगत्पति की, परवाह है ताहि कहा नर की।

क०, उ० कां०–२७

जटा मुकुट सिर सारस-नयननि गौंहैं तकत सुभौंह सकोरे।

गी०, अरण्यकांड, पद–२

जद्यपि अंगद नीति परम हित कह्यो तथापि न कछु मन भायो।
तुलसिदास मुनि बचन क्रोध अति पावक जरत मनहुँ घृत नायो॥

गी०, लंकाकांड, पद–२

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे। अस बिस्वास तजहु जनि भोरे।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–३६

जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।

विनय०, पद–२२७

जनम जनम जानकीनाथ के गुनगन तुलसिदास गाए।

गी०, लंकाकांड, पद–२३

जनम जनम हौ मन जित्यो, अव मोहि जितैहो।
हौं सनाथ ह्वैहौ सही, तुमहूँ अनाथपति, जो लघुतहि न भितैहो ॥

विनय०, पद–२७०

जन्म जहाँ तहँ रावरे सों निवहै भरि देह सनेह सगाई ॥

क०, उ० का०–५८

जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो।

विनय०, पद–१५१

जवहि रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत पेम मनहुँ चहुँ पासा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२२०

जरठाइ दिसा, रविकाल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे ॥

क०, उ०का०–३१

जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ, जियै जग में तुम्हरो विनु ह्वै।

क०, उ०का०–४१,

जहँ तहँ जिनि छिन छोह छाँड़िए कमठ-अड की नाईं ॥

विनय०, पद–१०३

जहाँ सव सकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहव राखै रमैया ॥

क०, उ०का०–५३

जाकी चिबुकचोट चूरन किय रद-मद कुलिस कठोर को ॥

विनय०, पद–३१

जागै भोगी भोगही, वियोगी रोगी सोगवस।
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के॥

क०, उ० का०–१०९

जानकी जीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि ॥

क०, उ०का०–२६

जानकी–जीवन ! जनम–जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं ॥

विनय०, पद–२२९

जानत गरल अमिय विमोहवस, अमिय गनत करि आगि है ॥

विनय०, पद–२२४

जानी है संकर हनुमान लखन भरत-रामभगति ।
कहत सुगम, करत अगम, सुनत मीठी लगति ॥

गी०, अयोध्याकांड, पद–१

जिमि गज-दसन तथा मम करनी ॥

विनय०, पद–११८

जीवत पाउ न पाछें धरहीं । रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१९२

जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी ।
तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै ॥

कविता०, सुं० कां०–१९

जे लोलुप भए दास आस के, ते सबही के चेरे ।

विनय०, पद–१६८

जे हरि कथा न करहिं रति, तिन्ह के हिय पापान ॥

मानस, सप्तमसोपान, दोहा–४२

जेहि वाटिका बसति तहँ खग मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन ।

गी०, सुंदरकांड, पद–२०

जोइ जाँच्यो सोइ जाचकता-बस फिरि बहु नाच न नाच्यो ॥

विनय०, पद–१६३

जो कछु काहय कटिय भवसागर तरिय वत्सपद जैसे ।

विनय०, पद–११८

जोपै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहा सरै ?
होइ न बाँको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै ॥

विनय०, पद–१३७

जो पै हौं मातु मते महँ ह्वैहौं ।
तो जननी ! जग मे या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं ॥

गी०, अयोध्याकांड, पद–१

जोवन-जर जुवती-कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन वाय ।

विनय०, पद—८३

जौ नहि लगिहहु कहे हमारें। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे।

मानस, द्वितीयसोपान, दोहा—५०

जौ पै कहुँ कोउ बूझत बातो।

तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो।।

विनय०, पद—१७७

जौ पै जिय धरिहौ अवगुन जन के।

तौ क्यों कटत सुकृत-नख ते मोपै विटप-बृंद अघ-वन के।।

विनय०, पद—९६

जौ मांगा पाइअ विधि पाही। ए रखिअहिं सखि आखिन्ह माही।

मानस, द्वितीयसोपान, दोहा—१२१

जौ मोहिं राम लागते मीठे।

तौ नवरस, षटरस रस, अनरस ह्वै जाते सब सीठे।।

विनय०, पद—१६९

ट

टूटत पिनाक के मनाक वाम राम से, ते

नाक बिनु भए भृगुनायक पलक में।।

क०, लंका कांड—२५

ठ

ठढ़ी ग्वालि ओरहने के मिस आइ वकहिं वेकामहिं।।

कृ० गी०, पद—५

ठोकि ठोकि खए।

गी०, बालकांड पद—४३

ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ लौ कहौ केहि सों रद काढे ?।।

क०, उ० कां०—५४

ड

डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ ! नींद भरि सोयो।

विनय०, पद—२४५

त

तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१६०

तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िए ? ।।

क०, उ० कां०—२५

तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ लजै ।।

विनय०, पद—८६

तनु-जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ।

विनय०, पद—२७५

तहँ तुलसी के कौन को काको तकिया रे ?

विनय०, पद—३३

ताँबे सो पीठि मनहुँ तनु पायो।

विनय०, पद—२००

ताको भलो अजहूँ तुलसी जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की ।।

क०, उ० का०—८६

तापर दाँत पीसि करि मीजत, को जानै चित कहा ठई है।

विनय०, पद—१३६

तापर मोको प्रभु करि चाहत, सब बिनु दहन दहा है।

गी०, अयोध्याकाण्ड, पद—२

ताहि तें आयो सरन सबेरे।

विनय०, पद—१८७

तिन रकन को नाक सँवारत, हौं आयो नकबानी ।।

विनय०, पद—५

तिन्ह स्रवनन परदोष निरंतर सुनि सुनि भरि भरि ताबो।

विनय०, पद—१४२

तुम जनि मन मैला करो लोचन जनि फेरो।

विनय०, पद—२७२

तुलसिदास कब तृषा जाइ सर खनतहि जनम सिरान्यो ।।

विनय० पद—८८

तुलसिदास जाको सुजस तिहूँ पुर क्यों तेहि कुलहिं कालिमा लावौ।

गी०, अयोध्याकांड, पद–७३

तुलसिदास जे रसिक न एहि रस ते जन जड़ जीवन जग जाए।

गी०, बालकांड, पद–२६

तुलसिदास निज भवनद्वार प्रभु दीजै रहन पर्यो।

विनय०, पद–६१

तुलसिदास प्रभु देखि लोग सब जनक समान भए।

गी०, बालकांड, पद–६१

तुलसिदास प्रभु बिन पियास मरै पसु।
जद्यपि है निकट सुरसरि–तीर॥

विनय०, पद–१६६

तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो।

विनय०, पद–१४३

तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु जोइ बाँध्यो सोइ छोरै॥

विनय०, पद–१०२

तुलसिदास रघुनाथ–कृपा को जोवत पंथ खरचो।

विनय०, पद–२३६

तुलसिदास रघुबीर–भजन करि को न परम पद पायो?

गी०, सुंदरकांड, पद–४४

तुलसिदास लंकेस कालबस गनत न कोटि जतन समझायो।

गी०, लंकाकांड, पद–३

तुलसिदास सठ तेहि न भजसि कस कारुनीक जो अनाथहिं दाहिना।

विनय०, पद–२०७

तुलसिदास सों स्वामि न सूझ्यो नयन बीस मंदिर के-से मोखे।

गी०, सुंदरकांड, पद–१२

तुलसी और प्रीति की चरचा करत कहा कछु चारो॥६॥६६

गी०, अयोध्याकांड, पद–६६

तुलसी काको नाम जपत जग जगती जामति विनु वई ।

गी०, सुंदरकांड, पद–३८

तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली ॥

गी०, अयोध्याकांड, पद–१

तुलसी के अवलव नाम को एक गाँठि कई फेरे ॥

विनय०, पद–२२७

तुलसी चित चिंता न मिटै विनु चिंतामनि पहिचाने ॥

विनय०, पद–२३५

तुलसी जग जानियत नाम तें सोच न कूच, मुकाम को ॥

विनय०, पद–१५६

तुलसी जेहि आनंद–मगन मन क्यों रसना वरनै सुख सो री ॥

गी०, वालकांड, पद–१०३

तुलसी जो सदा सुख चाहिय तो रसना निसि वासर राम रटो ॥

क०, उत्तरकांड–८६

तुलसी तिहारो तुमहीं तें तुलसी को हित,
राखि कहौं हौं जो पै तो ह्वैहों माखी घीय की ॥

विनय०, पद–२६३

तुलसी निहाल कै कै दियो सरखतु है ॥

क०, लंकाकांड, पद–५८

तुलसी प्रभु आरत–आरतिहर अभय-वाँह केहि केहि न दई है ?

विनय०, पद–१३९

तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन ही परी मानो प्रेम सहीजे ।

गी०, अरण्यकांड, पद–१५

तुलसी प्रभु–सुजस गाइ क्यों न सुधा पियत ॥

विनय०, पद–१३२

तुलसी प्रभु सुमिरि ग्रामजुवती सिथिल,
विनु प्रयास परीं प्रेम सही ॥

गी०, अयोध्याकांड, पद–३८

तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहै
बार बार कह्यो पिय कपि सों न लगि रे।'

क०, सुदरकांड–६

तुलसी बिलोकि लोग व्याकुल बिहाल कहैं
लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे ॥

क०, सुंदरकांड–१६

तुलसी मनहुँ महासुख मेरो देखि न सकेउ विधाता ॥

गी०, अयोध्याकाड, पद–५१

तुलसी राम-भरत के बिछुरत सिला सप्रेम भई है॥

गी०, अयोध्याकांड, पद–७८

तुलसी सहज सनेह राम बस, और सबै जल की चिकनाई॥

वि०, पद–२४५

तुलसी सहज सनेह सुरंग सब,
सो समाज चित चित्रसार लागी लेखन ॥

गी०, बालकांड, पद–७३

तुलसी सहित बनबासी मुनि हमरिऔ,
अनायास अधिक अघाइ बनि गई है॥

गी०, अयोध्याकांड, पद–३४

तुलसी सुनि जानि बूझि भूलहि जनि भरम।

वि०, पद–१३१

तुलसी सुनी न कबहुँ काहू कहुँ, तनु परिहरि परिछाँहि रही है॥

गी०, अयोध्याकांड, पद–९

तुलसी सुभाय कही साँचियै परैगी सही
सीतानाथ–नाम चित हूँ को चितु है॥

वि०, पद–२५४

तुलसी हाथ पराए प्रीतम, तुम्ह प्रिय-हाथ बिकानी।

कृ० गी०, पद–४७

तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो॥

वि०, पद–२४५

तृस्ना केहि न कीन्ह बौरहा । केहि कर हृदय क्रोध नहि दहा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७०

तेजी माटी मगहु की मृगमद साथजू ?

क०, उ०कां०–१६

तेरी कुमति कायर कलपवल्ली चहति विपफल फली ।।

वि०, पद–१

तेरी महिमा तें चलै चिंचिनी-चियाँ रे ।

वि०, पद–३३

तेरे राज राय दसरथ के लयो बयो विनु जोतो ।।

वि०, पद–१६१

तोहि माँगि माँगनो न भागनो कहायो ।

वि०, पद–७८

तौ तू पछितहै मन मीजि हाथ ।

वि०, पद–८४

तौलौ बात मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही ।

गी०, उत्तरकांड, पद–३७

त्यों त्यों नीच चढत सिर ऊपर ज्यों ज्यो सीलवस ढील दई है ।

विनय०, पद–१३६

थ

थोरेहि कोप, कृपा पुनि थोरेहि, बैठि कै जोरत तोरत ठाढे ।।

क०, उ० का० –५४

द

दास तुलसी राम परम करुनाधाम,

काम सत कोटि मद हरत छवि आपनी ।।

गी०, उत्तरकांड, पद–५

दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं ।

गी०, लंकाकाड, पद–८

दीन वित्तहीन हौं विकल विनु डेरे ।

वि०, पद–२१०

दुखउ दुखित मोहिं हेरे ।

वि०, पद–२२७

दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी ।

वि०, पद–५

देखत गरीब को साहब बांह गही है ।।

विनय०, पद–२७६

देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए ।।

वि०, पद–१११

देखत बालक बहु कालीना ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–३२

देखि आन की विपति परम सुख सुनि सपति बिनु आगि जरौ ।।

वि०, पद–१४१

देखिहैं हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय ।।

वि०, पद–२२०

देव, पितर, ग्रह पूजिए तुला तौलिए घी के ।
तदपि कबहुँ कबहुँक सखा ऐसेहि अरत जब परत दृष्टि दुष्ट ती के ।।

गी०, बालकांड, पद--१२

देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो ।

विनय०, पद–२७७

दोष दुख सपने के जागे ही पै जाहिं, रे।

विनय०, पद–७३

द्वार द्वार दीनता कही काढि रद, परि पाहूँ ।

विनय०, पद–२७५

ध

धन्य नर नारि जे निहारि बिनु गाहक हूँ ।
आपने आपने मन मोल बिनु बीके हैं ।।

गी०, अयोध्याकांड, पद–४

धन्य मातु, हौ धन्य लागि जेहि राज-समाज ढहा है ।

गी०, अयोध्याकांड, पद–२

धरम वरन आस्रमनि के पैयत पोथिही पुरान।
करतब बिनु बेप देखिए ज्यौं सरीर बिनु प्रान ॥

वि०, पद–१९२

धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहु विपति विपाद वसेरा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३८

न

न घटै जन जो रघुवीर बढायो।

क०, उ० कां०–६०

नतु और सवै विष वीज वये हर-हाटक कामदुहा नहि कै ॥

क०, उ० कां०–३३

नर तनु भव वारिधि कहु वेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४४

नाक, रसातल भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे ॥

क०, उ०कां०–५०

नाक सवाँरत आयो हौ नाकहिँ।

क०, उ०कां०–१५३

नाचत ही निसि-दिवस मर्यो।

वि०, पद–९१

नातो नेह नाथ सो करि सब नातो नेह वहैहौं।

वि०, पद–१०४

नाथ हाथ कछु नाहिं लग्यो लालच ललचायो।

विनय० पद–२७६

नाम-नरेस-प्रताप प्रबल जग जुग जुग चालत चाम को ॥

वि०, पद–९९

नाम-प्रताप पतित-पावन किए जे न अघाने अघ अनै।

गी०, सुदरकाड, पद–४७

नाम, राम रावरो सयानो किधौ बावरो।
जो करत गिरी तें गरु, तृन ते तनक को ॥

क०, उ० कां०–७३

नाम लेत दाहिनो होत मन बाम विधाता बाम को ।

वि०, पद–१५६

नाम सो निवाहु नेहु दीन को दयालु देहु
दास तुलसी को, वलि वड़ो बरु है ।

वि०, पद–२५५

नाहिन ग्रौर ठहर मो कहँ ताते हठि नातो लावत ॥

वि०, पद–१८५

निदरि गनी, आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई ॥

वि०, पद–१६५

निरलजता पर रीझि रघुवर देहु तुलसिहि छोरि ॥

वि०, पद–१५८

निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई ॥

वि०, पद–१२३

निसि-वासर तेहि कर-सरोज की चाहत तुलसिदास छाया ॥

वि०, पद–१३८

प

पवि को पहार कियो ख्याल ही कृपालु राम;
वापुरो विभीषन घरौंधा हुतो वालु को ।

क०, उ० का०–१७

पर घर घालक लाज न भीरा । बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६७

परत न कछु कियो है ।

गी०, लंकाकांड, पद–१०

परम वर्वर खर्व गर्व-पर्वत चढ़्यो,
अज्ञ सर्वज्ञ जनमनि जनावौ ।

विनय०, पद–२०८

परिनाम पचहि पातकी पाप ।

गी०, सुंदरकांड, पद–१६

परिहरि रामभगति-सुर सरिता आस करत ओसकन की ॥

वि०, पद–९०

पाथ-माथे चढ़ै तृन तुलसी जो नीचो।
वोरत न नारि ताहि आनि आपु सीचो ॥
वि०, पद–७२

पावक-काम भोग-घृत तें सठ कैसे परत बुझायो ?
वि०, पद–१९९

पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
राम हू की बिगरी तुही सुधारि लई है ॥
क०, उ०कां० –१७६

'पिय ! पावक न होउ जातुधान बेनु वन मैं।
गी०, सुंदरकांड, पद–२३

पूजत पेखि प्रीति पुलकत तनु, नयन लाभ लुटि पाई।
गी०, बालकांड, पद–८

प्रजा पतित पाखंड-पाप-रत, अपने अपने रंग रई है।
वि०, पद–१३९

प्रभु आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो ॥
गी०, लंकाकांड, पद–१९

प्रभुपद-प्रेम नेमव्रत निरखत मुनिन्ह नमित मुख कीन्हें ॥
गी०, अयोध्याकांड, पद–२

प्रभु रुख निरखि निरास भरत भए जान्यो है सबहि भाँति विधि बावाँ।
गी०, अयोध्याकांड, पद–७२

प्रभु हू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को।
क०, उ० कां० –७०

प्रसाद रामनाम के पसारि पायँ सूतिहौं ॥
क०, उ० कां० –६९

प्रिय पाहुने जानि नरनारिन नयननि अयन दए।
गी०, बालकांड, पद–६१

ब

बदन-सरोज सरोज-लोचननि रही है लुभाइ लुनाई ॥
गी०, बालकांड, पद–२

बनबासी पुर लोग, महामुनि किए है काठ के-से कोरि।
गी०, अयोध्याकांड, पद–३

वय-अनुहरत विभूपन बिचित्र अंग,
जोहे जिय आवति सनेह की सरक सी।
गी०, वालकांद, पद—४२

"वयो लुनियत सव याही दाढीजार के"
क०, सु० का०—१२

वसत गढ लंक लकेश नायक अछत
लक नहिं खात कोउ भात राँध्यो ॥
क०, लं० कां० —४

वहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि बिनु बेरे।
विनय०, पद—२७३

वहुत प्रीति पुजाइवे पर पूजिवे पर, थोरि।
वि०, पद—१५८

वहु विधि वाज वधाई।
गी०, वालकांड —५

बाँधिवे को भवगयंद रेनु को रजु बटत ॥
वि०, पद—१२६

बाँस पुरान, साज़ सव अटखट, सरल तिकोन खटोला रे।
हमहि दिहल करि कुटिल करमचँद मद मोल बिनु डोला रे॥
वि०, पद—१८६

वायों दियो विभव कुरुपति को।
विनय०, पद—२४०

वालमीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो।
उलटे-पलटे नाम-महातम गुंजनि जितो ललामो ॥
वि०, पद—२२८

वाँह वोल दै थापिए जो निज वरिआई।
वि०, पद—३५

वादि वीर-जननी-जीवन जग, छत्रि जाति-गति भारी ॥
गी०, वालकांड, पद—३

वात चले वात को न मानिवो विलग, वलि।
क०, उ० कां०—१६

वालमीकि न सके तुलसी सो सनेह सँभारि ॥

गी०, उत्तरकांड, पद–२६

बालि को बालक जो तुलसी दसहू मुख के रन मे रद तोरौ ॥

क०, लं० कां० –१४

'बाचिहै न पाछे त्रिपुरारि हू मुरारि हू के,
को है रन रारि को जौं कोसलेस कोपिहै ?"

क०, लं० कां०–१

बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई ॥

वि०, पद–२५२

बिटप मध्य पुत्रिका सूत्र महँ कंचुक बिनहिं बनाए ।

वि०, पद–१२४

बिद्य मान सब के गवनै बन बदन करम को कारो ।

गी०, अयोध्याकांड, पद–२

बिधि से करनिहार हरि से पालनिहार,
हर से हरनिहार जपैं जाके नाम ।

गी०, सुंदरकांड, पद–२५

बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस परयो कीर की नाईं ॥

वि०, पद–१२०

बिनु हरिभजन इँनारुन के फल, तजत नही करुआई ॥

वि०, पद–१७५

बिप्रद्रोह जनु बाँट परयो ।

विनय०, पद–१४२

बिस्वदवन सुर-साधु-सतावन रावन कियो आपनो पै है ।

गी०, सुदरकांड, पद–५०

बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ बिषय-भोग बहु घी तें ॥

वि०, पद–१९८

बूड़ो मृगबारि, खायो जेंवरी को साँप रे ।

वि०, पद–७३

बृथहि मंदमति बारि बिलोयो ॥

वि०, पद–२४५

वेद लोक सब साखी, काहू की रती न राखी ।

वि०, पद–२४८

वैठे नाम-कामतरु तर डर कौन घोर घन-घाम को ?

वि०, पद–१५५

वोले वचन विनीत उचित हित करुना-रसहिं निचोरि ॥

गी०, अयोध्याकाड, पद–७०

व्याह न वरेखी, जाति पाँति न चहत हौ ।

वि०, पद–७६

ब्रह्म विसिख ब्रह्मांड-दहन-छम गर्भ न नृपति जर्‍यो ।

वि०, पद–२३९

भ

भइ मम कीट भृंग की नाई । जहँ तहँ मै देखौ दोउ भाई ।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–१९,

भजन विवेक विराग लोग भले करम करम करि ल्यावौ ।

वि०, पद–१४६

भजन-हीन नरदेह वृथा खर स्वान फेरु की नाईं ।

गी०, अयोध्याकाड, पद–४

भयो प्रथम गनती मे अव तें हौ जहँ लौं साधु समाज ।

गी०, वालकाड, पद–१

भली भाँति साहव तुलसी के चलिहैं व्याहि वजाइकै ॥

गी०, वालकांड, पद–६८

भले भवन अव वायन दीन्हा । पापहुगे फल आपन कीन्हा ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१३७

भले सुकृती के संग मोहि तुला तौलिये तौ,
नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमिहै ॥

क०, उ० कां०–७१

भूरिभाग-भाजनु भई ।
रूपरासि अवलोकि वंधु दोउ प्रेम-सुरग रई ॥

गी०, वालकांड, पद–१

भेट पितरन को न मूड़ हू मे वारु है ॥

क०, उ० कां०–६७

म

मत्सर मान मोह मद चोरा । इन्ह कर हुनर न कवनिहु ओरा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–३१

मन अगहुँड़ तनु पुलक सिथिल भयो, नलिन-नयन भरे नीर ।

गी०, अयोध्यकांड; पद–३

मन पछितैहै अवसर बीते ।

वि०, पद–१९८

मनहु उमँगि अँग अँग छवि छलकै ॥

गी०, बालकांट, पद–१

मनहूँ को मन मोहै, उपमा को को है ?

गी०, बालकांड, पद–१

मरै न उरग अनेक जतन बलमीक विविध विधि मारे ।

वि०, पद–११५

मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है ॥

क०, उ० कां०–९९

मसक ह्वै कहै 'भार मेरे मेरु हालिहै' ।

क०, उ० का०–१२०

महरि तिहरे पाँय परों अपनो ब्रज लीजै ।
सहि देख्यो, तुम्हसों कह्यो, अब नाकहि आई, कौन दिनहु दिन छीजै ॥

कृ०, गी०, पद–७

महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातो ॥

वि०, पद–१५१

महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच- बिसिखन बाँची ?

गी०, अयोध्याकांड, पद- २

महिमा मान प्रिय प्रान तें तजि खोलि खलनि आगे खिनुखिनु पेट खलायो ॥

विनय०, पद–२७६

माई ! हौं अवध कहा रहि लैहौं ।

गी०, अयोध्याकांड, पद–१

मिलेहि माँझ रावन रजनीचर लंक संक अकुलानी

गी०, बालकांड, पद–४

मींजो गुरु पीठ ।

विनय०, पद–७६

मुँह लाए मूडहि चढ़ी अंतहु अहिरिनि, तू सूधि करि पाई ।

कृ० गी०, पद–८

मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है ॥

वि०, पद–२७९

मुनि-प्रसाद मेरे राम लखन की विधि बड़ि करवर टारी ।

गी०, बालकांड, पद–२

मूकन बचन-लाहु, मानो अंधनि लहे है बिलोचत तारे ।

गी०, बालकांड, पद–५८

मूड़ मारि हिय हारि कै हित हेरि हहरि अब चरन-सरन तकि आयो ।

विनय०, पद–२७६

मृगभ्रम-बारि सत्य जिय जानी । तहँ तू मगन भयो सुखमानी ।

वि०, पद–२

मेरी कहा चली ? हौं बजाइ जाइ रह्यो हौं ।

विनय०, पद–२६०

मेरी तो थोरी ही है, सुधरैगी बिगरियो,

वि०, पद–२५६

बलि, राम रावरी सौं रही रावरी चहत ॥
मेरी बार मेरे ही अभाग नाथ ढील की ॥

क०, उ० का०–१८;

मेरे एकौ हाथ न लागी ।

गी०, अरण्यकांड, पद–१२

मेरे तो माय-बाप ोउ आखर हौं सिसु-अरनि अरो ॥

वि०, पद–२२६

मेरे पासंगहु न पूजिहै, ह्वै गए है, होने खल जेते ।।

विनय०, पद–२४१

मेरे ही सुख सुखी, सुख अपनो सपनहूँ नाहि ।

गी०, उत्तरकांड, पद–२६

मैं, ढारो विगारो तिहारो कहा है ? ।

क०, उ० कां०,–१०१,

मोको आज विधाता वावौ ।।

गी०, अयोध्याकांड, पद–१

मोपै तौ न कछू ह्वै आई ।
ओर निवाहि भली विधि भायप चल्यौ लखन सो भाई ।।

गी०, लंकाकांड, पद–६

मोहजनित मल लाग विविध विधि, कोटिहु जतन न जाई ।
जनम-जनम अभ्यास- निरत चित अधिक अधिक लपटाई ।

वि०, पद–८२

मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७०

र

रघुनाथ अनाथ के नाथ सही ।।

क०, उ०कां०–१०

रघुनाथ अनार्थाह दाहिन जू ।।

क०, उ०का०–७

रन चढि करिअ कपट चतुराई । रिपु पर कृपा परम कदराई ।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–१२

राइ दसरत्थ के समत्थ राम राजमनि ।
तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की ।।

क०, उ० कां०–२०

राखिहै राम सो जासु हिए तुलसी हुलसै बल आखर दू को ॥

क०, उ० कां०—६०

राजरिषि पितु ससुर, प्रभु पति, तू सुमंगल-खानि ।

गी०, उत्तरकांड, पद—३२

राढ़उ राउत होत फिरि कै जूझै ॥

विनय०, पद—१७६

राम के रोष न राखि सकै तुलसी विधि, श्रीपति, संकर सो रे ॥

क०, लं० कां०—१२

राम गरीबनिवाज निवाजिहै, जानिहै ठाकुर ठाऊँगो ॥

गी०, सुंदरकांड, पद—३०

राम छाम, लरिका लखन, बालि-बालकहि घालि कौ गनत ?

गी०, सुंदरकांड, पद—२३

राम तुम से सुचि सुहृद साहिबहि मैं सठ पीठि दई ॥

वि०, पद—१७१

रामनाम छाँड़ि जो भरोसो करै और, रे !
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर, रे !

विनय०, पद—६६

रामनाम-जप-निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो ॥

विनय०, पद—२२८

रामनाम-महिमा करै काम-भूरुह आको ।

विनय०, पद—१५२

राम विचारि कै राखी ठीक दै मन माहिं ।

गी०, उत्तरकांड, पद—२६

राम भलाई आपनी भल कियो न काको ?

वि०, पद—१५२

राम रावरो नाम मेरो मातु-पितु है ।

वि०, पद—२५४

राम लखन लखि लोग लूटहिं लोचन-लाभ अघाइकै ।
वालकांड, गी०, पद–१

राम लखन सुधि आई, बाजै अवध बधाई ।
वालकांड, गी० ,पद–१

राम से वाम भए तेहि वामहि वाम सबै सुख संपति लावैं ॥
क०, उ० का०–२

राम सोहाते तोहि जौ, तू सबहिं सोहातो ।
वि०, छंद–१५१

रामहिं नीके कै निरखि, सुनैनी ।
मनसहु अगम समुझि यह अवसरु कत सकुचति पिकबैनी ॥
वालकाड, गी०, पद–१

रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं । एक बार कालहु सन लरहीं ।
मानस, तृतीय सोपान, दोहा–१३

रीझिबे लायक तुलसी की निलजई ॥
विनय०, पद–२५२

रूप-रासि बिरचि बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही री ॥
वालकाड, गी०, पद–१०४

रोक्यो बिंध्य, सोख्यो सिंधु घटजहुँ नाम-बल,
हार्‌यो हिय खारो भयो भूसुर-डरनि ॥
विनय०, पद–२४७

रोटी-लूगा नीके राखै,
विनय०, पद–७६

ल

लखन लाल कृपाल ! निपटहिं डारिबी न बिसारि ।
उत्तरकाड, गी०, छद–२६

लखब सनेहु सुभायँ सुहाएँ । बैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराएँ ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१६३

लगी न संग चित्रकूटहु तें ह्याँ कहा जात वह्यो।

अयोध्याकांड, गी०, पद–१

लसम के खसम तुही पै दसरत्थु के ॥

क०, उ० कां०–२४

लाले पाले पोपे तोषे आलसी अभागी अघी
नाथ पैं अनाथनि सो भए न डरिन।

वि०, पद–२५३

लेति भरि भरि अंक सैंतति पैंत जनु दुहुँ करनि।

बालकांड, गी०, पद–४

लेहु निज करि देहु निज पदप्रेम पावन दीन।

उत्तरकांड, गी०, छंद–२४

लोचन आँजहि फगुआ मनाइ। छाँड़हिं नचाइ हाहा कराइ॥

उत्तकांड, गी०, पद–२२

लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर-नर-नारि।

बालकांड, गी०, पद–३९

लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा-डोरि।

विनय०, पद–१५८

लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान वजै॥

वि०, पद–८९

श

श्रीहरिचरन-कमल-नौका तजि फिरि फिरि फेन गह्यो।

वि०, पद–९२

स

सकल अंग पद-बिमुख नाथ, मुख नाम की ओट लई है।

वि०, पद–१७०

सकल–भुवन–सोभा–सरवसु लघु लागति निरखि निकाई।

बालकांड, गी० पद–३

सकल भूप बल गरब-सहित तोर्‌यो कठोर सिवचापु।

लंकाकांड, गी०, पद–१

सकल सुख की सीव।

बालकांड, गी०, पद–१

सकुचत समुझि नाम महिमा मद, लोभ, मोह कोह कामी।

वि०, पद–२२८

सकुच बेंचि सी खाई।

कृ० गी०, पद–८

सज्जन–चख–झख-निकेत, भूपन मनिगन समेत,
रूप - जलधि - वपुप लेत मन–मयद बोहैं।

उत्तरकांड, गी०, पद–४

सतरंज को सो राज, काठ को सब समाज।

वि०, पद–२४६

सदा मलीन पंथ के जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने॥

विनय०, पद–२३५

सपने व्याधि विविध बाधा भइ, मृत्यु उपस्थित आई।
बैद अनेक उपाय करहिं जागे बिनु पीर न जाई॥

वि०, पद–१२०

सबको दाहिनो, दीनबंधु काहू को न बाम।

वि०, पद–७७

सबको भलो है राजा राम के रहम ही।

क०, लं० कां०–८

सबही सो उठाइ कही भुज द्वै।

उ० कां०, क–३४

समौ पाइ कहाइ सेवक घट्यो तौ न सहाय।

लंकाकांड, गी०, पद–१४

सरनागत आरत प्रनतनि को दै दै अभयपद ओर निवाहैं।

उत्तरकाड, गी०, पद–१३

सरुज वरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहैं कुम्हड़े की जई है।

वि०, पद–१३६

सांच कहौ नाच कौन सो जो न मोहिं लोभ लघु निलज नचायो।

विनय०, पद–२७६

सिर धरि आयेसु करिअ तुम्हारा। परम धरम येहु नाथ हमारा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२१३

सिर धुनि धुनि पछितात मीजिकर, कोउ न मीत हितदुसह दाय॥

विनय०, पद–८३

सिला, गुह, गीध, कपि, भील, भाल, रातिचर
ख्याल ही कृपाल कीन्हें तारन-तरन।

वि०, पद–२४८

सिला सरोरुह जामो।

विनय०, पद–२२८

सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौ मैं रामु त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–२५

सीदत साधु साधुता सोचति, खल विलसत हुलसति खलई है॥

वि०, पद–१३६

सीलसिंधु ढील तुलसी की वार भई है।

वि०, पद–१८०

सुकृत-संकट परचो जात गलानिन्ह गरचो,

सुंदरकांड, गी०, पद–२७

सुखसाधन हरि विमुख वृथा, जैसे श्रम-फल घृतहित मथे पाथ।

वि०, पद–८४

सुत-वित-दार-भवन-ममता-निसि सोवत अति, न कबहुँ मति जागी॥

वि०, पद–१४०

सुनत रामकृपालु के मेरी बिगारिऔ बनि जाइ।

वि०, पद–४१

सुनि प्रभु वचन भालु-कपि-गन सुर सोच सुखाइ गए हैं।
तुलसी आइ पवनसुत-विधि मानो फिरि निरमए नए है।

लंकाकांड, गी०, पद—५

सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ॥

वि०, पद—१००

सुनु दसमाथ! नाथ-साथ के हमारे कपि,
हाथ लंका लाइहै तो रहैगी हथेरी सी॥

क०, लं० कां०—१०

सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यों छन-छन प्रभुहिं सँभारहि॥

वि०, पद—८५

सुमिरि सुभूमि भयो तुलसो-सो ऊसरो।

वि०, पद—६६

सुमिरि सो तुलसी अजहुँ हिय हरष होत विसाल।

गी०, उत्तरकांड, पद—१

सुरसरि-तीर बिनु नीर दुख पाइहैं।

वि०, पद—६८

सुसमय दिन द्वै निसान सब के द्वार बाजै।

वि०, पद—८०

सेवक को परदा फटै, तू समरथ सीले।

विनय०, पद—३२

सोइबो जो राम के सनेह की समाधि-सुख,
जागिबो जो जीह जपै नीके राम नाम को।

क०, उ० कां०—८३

सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन।

क०, उ० कां०—११७

सो जननि ज्यों आदरी सानुज राम भूखे भाव के।

अरण्यकांड, गी०, पद—४

सो दिन सोने को कहु कब ऐहै ?

गी०, सुंदरकांड, पद–५०

सो निबह्यो नीके जो जनमि जग राम–राज मारग चलो।

सुंदरकांड, गी०, पद–४२

सोभा-सुधा पिए करि ग्राँखिया दोनी।

अयोध्या०, गी०, पद–२२

सो हौ सुमिरत नाम सुधारस पेखत परुसि धरो।

विनय०, पद–२२६

स्वामि सहित सब सों कहों सुनि गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खोंचो।

विनय०, पद–४६६

स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा कोसो टोटक, औचट उलटि न हेरो।

विनय०, पद–२७२

स्वास-समीर भेट भइ भोरेहुँ तेहिं मग पगु न धरयो तिहुँ पौन।

सुंदरकांड, गी०, पद–२०

ह

हरि परे उघरि, सदेसहु ठठई।

कृ०गी०, पद—३६

हाँकि हनुमान कुलि कटक कूटयो॥

क०, लं० कां०,—४६

हाटक घट भरि धरयो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौं॥

वि०, पद—१४२

हाथ मीजिबो हाथ रह्यो।

अयोध्याकांड, गी०, पद–१

हाहा करि दीनता कही द्वार द्वार वार वार, परी न छार मुँह वायो॥

विनय०, पद—२७६

हिय हरषि बरषि प्रसून निरखति बिबुध-तिय तृन तूरि।

उत्तरकांड, गी०, पद—१८

है बायनो दियो घर नीके।

कृ० गी०, पद–१०

होत हठि मोहि दाहिनो दिन दैव दारुन-दाय ॥

गी०, उत्तरकांड, पद–३१

होतो नहिं जो जग जनम भरत को,
तो कपि कहत, कृपान धार-मग चलि आचरत बरत को ?

गी०, लंकाकांड, पद–१२

हौं तो सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो ॥

क०, उ० कां० –६०

लोकोक्ति

अ

अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥

विं०, पद—१७४

अंतहुँ कीच तहाँ जहँ पानी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१८२

अग जग जीव नाग नर देवा । नाथ सकल जगु काल कलेवा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—९४

अगम सनेहु भरत रघुवर को । जहँ न जाइ मनु विधि हरि हर को ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा– २४१

अचल-सुता-मन-अचल बयारि कि डोलइ ? ॥

पार्वती मं०, पद–६५

अति अपार जे सरित वर जौ नृप सेतु कराहिं ।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं ॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—१३

अति प्रचंड रघुपति कै माया । जेहि न मोह अस को जग जाया ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१२८

अति संघरषन जौं कर कोई । अनल प्रगट चंदन ते होई ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१११

अधम जाति मैं विद्या पाएँ । भयेउँ जथा अहि दूध पिआए ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०६

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम ।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा यह काम ॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–५ क

अपडर डरेउँ न सोच समूले । रविहि न दोसु देव दिसि भूले ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२६७

अपनिहि मति विलास अकास महँ चाहत सियनि चलाई ।।

कृ० गी०, पद–५१

अपने देखे दोप सपनेहु राम न उर धरे ।।

दो०, दोहा–४७

अब उर राखेहु हम जो कहेऊ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७७

अब जो कहहु सो करउँ बिलब न यहि घरि ।

पार्वती मं०, छद–८२

अब प्रभ् परम अनुग्रह तोरे । सहित कोटि कुल मंगल मोरें ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१९५

अबला कच भूषन भूरि छुधा । धन हीन दुखी ममता बहुधा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०२

अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई । जिअत जीव जड सबइ सहाई ।

मानस, द्वितीय सोपन, दोहा–२६२

अम अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–५ क

असुभ वेप भूपन धरे भक्षाभक्ष जे खाहि ।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूजिति कलिजुग माँहि ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९८

अस अनद अचिरिजु प्रति ग्रामा । जन मरुभूमि कलपतरु जामा ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२२३

अगुन अलेख अमान एकरस । रामु सगुन भए भगत प्रेम बस ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२१९

अवसर कौडी जो चुकै, बहुरि दिए का लाख ? ।
दुइज न चदा देखिये, उदो कहा भरि पाख ।।

दो०, दोहा–३४४

अस को जीव जंतु जग माही। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाही।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१६२

अव हम नाथ सनाथ सव भए देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमनु राउर कोसलराय॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१३५

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७४

अपने चलत न आजु लगि अनभल काहु क कीन्ह।
केहि अघ एकहि वार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२०

अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जव लगि गंग जमुन जल धारा॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६९

अति लघु वात लागि दुखु पावा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–४५

आ

आई मीचु मिटति जपत रामनाम को।

क०, उ० कां०–७५

आए देव सदा स्वारथी। वचन कहहि जनु परमारथी।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–११०

आकर चारि जीव जग अहही। कासी मरत परम पद लहही।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–४६

आपनी-समुझि सूझि आयो टकटोरि हौ।

विनय०, पद–२५८

आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहिं। जे कहुँ सन्मारग प्रतिपालहिं।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१००

आरत कहहि बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२५८

आरत की आरति निवारिबे को तिहूँ पुर,
तुलसी को साहिब हठीलो हनुमान सो॥

क० (हनु०बा०),–११

आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१६३

इ

इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिअ न कोटि जोग जप साधें।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७०

इदमित्थ कहि जाइ न सोई।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१२१

इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरी रही समता बिगता।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०२

इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२७३

'ईशान महिमा अगम, निगम न जानई"।

पार्वती मं०, छंद–१२१

उ

उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–५

उत्तम, मध्यम, नीच गति पाहन, सिकता, पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुँन की, बैर बितिक्रम जानि॥

दो०, दोहा–३५२

उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए ॥

कविता०, उ० कां०-७६

उतरु देउँ केहि विधि केहि केही । कहहु सुखेन जथा रुचि जेही ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा-१८१

उमा रावनहि ग्रस ग्रभिमाना । जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना ।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा-४०

उमा दारुजोषित की नाईं । सवहि नचावत राम गोसाईं ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा-११

उमा राम सम हित जग माहीं । गुर पितु मातु वंधु प्रभु नाहीं ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा-१२

उर ग्रानत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोकु परलोकु नसाई ।

मासस, द्वितीय सोपान, दोहा-२६३

उलटा नामु जपत जगु जाना । वालमीकि भये ब्रह्म समाना ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा-१६४

ऊतर देउँ छमव ग्रपराधू । दुखित दोप गुन गनहि न साधू ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा-१७७

ऊधो ! प्रीति करि निरमोहियन सो को न भयो दुखदीन ?

कृ०गी०, पद-५५

ए

एक कहै तुलसी 'सकल सिधि ताके जाके
कृपापाथनाथ सीतानाथ सानुकूल हैं ।

क०, सु०कां०-३०

एक भरोसो, एक वल, एक ग्रास विस्वास ।
एक राम-घनस्याम हित चातक तुलसीदास ॥

दो०, दोहा-२७७

एहि तन सतिहि भेट मोहि नाहीं । शिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–५७

ऐसिउ पीर विहस तेहिं गोई । चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२७

ऐसे सम समधी समाज ना विराजमान,

राम से न वर, दुलही न सीय सारखी ॥

क०, बा०कां०–१५

ऐसे भए तो कहा तुलसी जु पै राजिवलोचन राम न जाने ॥

क०, उ०कां०–४२

औ

और करै अपराध कोउ, और पाव फल-भोग ।

अति विचित्र भगवंतगति, कोउ न जानिबे जोग ॥

दो०, दोहा–२४१

औरु करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु ।

अति विचित्र भगवंत गति को जग जानइ जोगु ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७७

और देवन की कहा कहौं स्वारथहि के मीत ।

वि०, छंद–२१६

क

कदलि सीप चातक को कारज स्वाति–वारि बिनु कोउ न सँवारे ॥

कृ० गी०, छंद–५७

कपट कलेवर कलि मल भाँड़े ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१२

कपट कुचालि सीव सुरराजू । पर अकाज प्रिय आपन काजू ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३०२

कबहुँकि काँजी सीकरनि छीरसिंधु विनसाइ ॥

दो०, दोहा–२०५

कविवृंद उदार दुनी न सुनी । गुन दूषक बात न कोपि गुनी ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०१

करत जतन जासों जोरिबे को जोगीजन
तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरिहौ ।

विनय०, पद–२५८

करतब बायस बेष मराला ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१२

करम प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२१९

करहु काज सब, सिद्धि सुभ आनि हिए हनुमान ॥

रा० प्र०, सप्तम सर्ग, सप्तक १, दोहा–२

करुनामय रघुनाथ गोसाईं । बेगि पाइअहिं पीर पराई ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–८५

कलिकाल बिहाल किए मनुजा । नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०२

कलि-कुचाल संतनि कही सोइ सही, मोहि कछु फहम न तरनि-तमी को ।।

विनय०, पद–२६५

कलि नहिं ज्ञान, विराग, न जोग–समाधि ।
रामनाम जपु तुलसी नित निरुपाधि ॥

बरवै, रा०–४८

कलि बारहिं बार दुकाल परे । बिनु अंत दुखी सब लोग मरे ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०१

कसे कनकु मनि पारिखि पाएँ । पुरुष परिखिअहिं समय सुभाएँ ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२८३

कहउँ वचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२६९

कहँ लगि सहिअ रहिअ मनु मारे।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२२९

कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३३

कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२६

कहत सुनत सतिभाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३०४

कह तुलसिदास बस जासु उर मारुत सुत मूरति बिकट।
संताप पाप तेहि पुरुप कहँ सपनहुँ नहिं आवत निकट॥
क० (हनुमान बा०),–२

कह मुनीस हिमवंत सुनु, जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनिहार॥
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६८

कहहिं ते वेद असंमत बानी। जिन्हहिं न सूझ लाभु नहिं हानी।
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहिं किमि दीना।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–११५

कहहिं परस्पर पुर नर नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७६

कहा बिभीपन लै मिल्यो, कहा दियो रघुनाथ।
तुलसी यह जाने बिना, मूढ़ मीजिहैं हाथ॥
दो०, दोहा–१६५

कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहि कियो भौंटुवा भौंर को हौं।
विनय० पद–२२९

कहि न जाइ कछु हृदयँ विषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू ।

मानस, द्वितीय सोपान दोहा–५४

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीनु जनु जल ते काढ़े ।

मानस, द्वितीय सोपान दोहा–७०

कहे बिनु रह्यो न परत कहे राम ! रस न रहत ।

वि०, पद–२५६

कहीं साँचु सब सुनि पतिआहू । चाहिअ धरमसील नरनाहू।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७६

काक समान पाकरिपु रीती। छली मलिन कतहूँ न प्रतीती ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३०२

का काहू के द्वार परौं, जो हौ सो हौं राम को

क०, उ०का०–१०७

कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा।

मानस, पचम सोपान, दोहा–५१

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए सांच ।
काम जु आवै कामरी का लै करै कुमाच।।

दो०, दोहा–५७२

काम कुसुम धनु सायक लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२५७

काल करम बस होहि गोसाई । बरबस रात दिवस की नाईं ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१५०

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम ।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१३०

काल दंड गहि काउ न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–३७

काल पाय फिरत दसा दयालु ! सब ही की,

विनय०, पद–२५६

कासी विधि वस तनु तजै, हठि तन तजै प्रयाग ।
तुलसी जो फल सो सुलभ, रामनाम अनुराग ।।

दो०, दोहा–१४

कासी मे कंटक जेते भए ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो ।
आजु कि काल्हि परों कि नरों जड जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो ।।

क०, उ०का०–१७६

काह न पावक जारि सकै, का न समुद्र समाइ ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ ? ।।

दो०, दोहा–२६७

काहू बैठन कहा न ओही । राखि को सकै राम कर द्रोही ।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–२

काहे को कहत बचन सवाँरि ।

कृ० गी०, पद–५३

कियेहु कुबेष साधु सनमानू ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७

की तनु प्रान कि केवल प्राना । विधि करतबु कछु जाइ न जाना ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–५८

कीन्ह विधि मनभावनो ।

पार्वती मं०, छंद–८३

कीन्ही भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पगु धारे ।।

क०, अ०कां०–२८

कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कहँ हित होई ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१४

-कुँवर चढाईं भौहैं, अब कों विलोकै सौहैं,
जहँ तहँ भे अचेत, खेत के से धोखे है।

गी०, बालकाण्ड, पद–३

-कुंभज के किंकर विकल बूडे गोखुरनि,
हाय रामराय ! ऐसी हाल कहूँ भई है ? ॥

क०, (हनु०वा०),–३८

-कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१३३

कुमया कछु हानि न औरन की, जो पै जानकीनाथ मया करिहैं॥

क०, उ०कां०–४७

कुलवति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०१

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परै कहु काहि।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१९

कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६६

कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढत बिंधि जिमि घटज निवारा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९७

-कुसमय जानब, वाम विधि, रामनाम अवलंब ॥

रा० प्र०, सप्तम सर्ग, सप्तक-५, दोहा–३,

-कुसमय जाय उपाय सब, केवल करमविपाकु ॥

रा० प्र०, सप्तम सर्ग, सप्तक ६, दोहा–५,

-कृपा अनुग्रह अंगु अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३००

-कृपासिंधु ताते रहौं निसि दिन मन-मारे।
-महाराज लाज आपुही निज जाँघ उघारे ॥

वि०, पद–१४७

कृसधन सखहिं न देत दुख, मुएहु न माँगत नीच ।
तुलसी सज्जन की रहनि पावक पानी बीच ॥

दो०; दोहा–३३५

केवट की जाति कछू वेदना पढ़ाइहौं ।

क०, अ०का०–८

केहि कारन आगमन तुम्हारा । करहु सो करत न लावौं बारा ।

मानस प्रथम सोपान, दोहा–२०७

केहि न सुसंग बड़त्तनु पावा ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१०

कोउ उलटो, कोउ सूधो जपि भए राजहंस बायस तनै ।

गी०, सुदरकांड, पद–४०

कोउ नृप होउ हमहि का हानि । चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१६

को कहि सकइ अनद मगन भइ भारति ॥

जानकी मं० छंद–१६६

को प्रभु सँग मोहि चितवनि हारा । सिंघ बधहि जिमि ससक सिआरा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६७

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ । कलुष पुज कुजर मृगराऊ ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१०६

को जिअ कै रघुबर बिनु बूझा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१८३

कौन की त्रास करै तुलसी, जो पै राखिहैं राम तौ मारिहैं को रे ?॥

क० उ०का०–४८

ख

खलउ करहिं भल भल पाइ सुसगू । मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७

खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–९

खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि।
केसरी किसोर राखे वीर बरियाई है॥
क०, (हनु०बा०),–३५

खेलत बालक व्याल संग, मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितु मातु ज्यो राखत सिय रघुनाथ॥
दो०, दोहा–४७

ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोपरी।
क०, लं०कां०–२७

ख्वैहौ न पठावनी कै ह्वैहौ न हँसाइ कै ?
क०, अ०कां०–९

ग

गंग सकल मुद मगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला।
मानस, द्वितीय सोपान दोहा–८७

गनि का गीध बधिक हरिपुर गए लै करसी प्रयाग कब सीझे ?
विनय०, पद–२४०

गरब करहु रघुनदन जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह॥
बरवै, रा०–१७

गाड़ी के स्वान की नाईं माया मोह की बड़ाई,
छिनहि तजत, छिन भजत बहोरि हौ॥
विनय०, पद–२५८

गाधिसूनु कह हृदय हसि मुनिहि हरिअरेइ सूझ।
अयमय खाँड न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ॥
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२७५

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।

मानस द्वितीय सोपान, दोहा—८३

च

चढ़त न चातक-चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख।
तुलसी प्रेमपयोधि की ताते नाप न जोख॥

दो०, दोहा—२८१

चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। प्रगट जुगल ससि तेहि कें भाएँ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—११७

चित्रकूट सब दिन बसत, प्रभु सिय-लषन-समेत।
रामनाम जप जापकहिं तुलसी अभिमत देत॥

दो०, दोहा—४

चीन्हों चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा सुनि,
प्रभु सों गुदरि निबर्‍यो हौ॥

विनय०, पद—२६६

चीरी को मरन खेल बालकनि को सो है॥

क०, (हनु०बा०)—२९

चेरो तेरो तुलसी 'तू मेरो' कह्यो रामदूत,
ढील तेरी, बीर, मोहिं पीर तें पिराति है॥

क०, (हनु०बा०)—३०

छ

छाँड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—३५

छिति जल पावक गगग समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—११

छोरिबे को महाराज, बाँधिबो को कोटि भट,

विनय०, पद—२६०

ज

जग भल पोच ऊच अरु नीचू । अमिअ अमरपद माहुरु मीचू ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९८

जतन करहु आलस तजहु, नाइ रामपद माथ ।।
रा० प्र०, तृतीय सर्ग, सप्तक, ६, दोहा–४

जथा दरिद्र विबुधतरु पाई । वहु संपति माँगत सँकुचाई ।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१४६

जद्यपि जग दारुन दुख नाना । सब ते कठिन जाति अपमाना ।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६३

जनक-वचन छुए विरवा लजारु के से,
वीर रहे सकल सकुचि सिर नाइ कै ।
गी०, वालकांड, पद–८२

जनम मरन सब दुख सुख भोगा । हानि लाभु प्रिय मिलन वियोगा ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१५०

जनम हेतु सब कहँ पितु माता । करम सुभासुभ देइ विधाता ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२५५

जनि आचरजु करहु मन माहीं । सुत तप ते दुर्लभ कछु नाहीं ।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१६३

जनु छुइ गयेउ पाक वरतोरु ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२७

जनु प्रगटि चतुरानन देखाई चतुरता सब आपनी ।
जानकी मं०, छंद–९

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ।
मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१०

जन्मत मरत दुसह दुख होई ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०९

जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उअेउ दिनेसा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७३

जल चाहत पावक लहौं, विष होत अमी को।

विनय०, पद–२६५

जल बूड़त अवलंब फेन को फिरि फिरि कहा कहत हौं॥

कृ० गी०, पद–३३

जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोस कहा दिरमानी।

विनय०, पद–१२२

जस दूलह तसि बनी बराता।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६४

जाके नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९८

जाचक सकल अजाचक, कीन्हें।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२

जान आदि-कवि तुलसी नाम प्रभाउ।
उलटा जपत कोल ते भए ऋषिराउ॥

बरवै रा०–५४

जानतहू अस प्रभु परिहरही। काहे न विपति जाल नर परहीं।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१२

जानि अंध अंजन कहै वन-बघिनि-घी को।

विनय०, पद–२६५

जानि पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान,
एतो मान ढीठ हौं उलटि देत खोरि हौं।

विनय०, पद–२५८

जाने, बिनु जाने, कै रिसाने, केलि कबहुँक,
सिवहि चढ़ाए ह्वै है बेल के पतौवा द्वै॥

क०, उ० कां०–१६३

जायँ जीव विनु देह सुहाई। वादि मोर सव विनु रघुराई।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७८

जाय कहब करतूति विनु, जाय जोग विनु छेम।
तुलसी जाय उपाय सब विना रामपद-प्रेम॥

दो०, दोहा–१०३

जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१६

जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोह सुख चहसि अभागी।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०६

जासु नाम वल संकर कासी। देत सवहिं सम गति अविनासी।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–१०

जासु नाम सुमिरत एक वारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१०१

जासु भवनु सुरतरु तर होई। सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१०८

जिन्हके रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२४१

जिन्ह हरिभगति हृदय नहि आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–११३

जीव कि ईस समान॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६६

जीवनफल, लोचनफल विधि सव कहँ दए॥

जानकी मं०, छंद–१७४

जीवनु राम दरस आधीना।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३३

जुग सम दिवस सिराहिं ॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–५८

जुगुति धूम बघारिबे की समुझिहै न गँवारि।

कृ० गी०, पद–५३

जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो हौं ॥

विनय०, पद–२६०

जूड़े होत थोरे ही, थोरे ही गरम।

विनय०, पद–२४६

जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लवार तेइ वकता कलिकाल महुँ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९८

जे अपकारी चार, तिनकर गौरव, मान्य तेइ।
मन बच करम लवार ते बकता कलिकाल महँ ॥

दो०, दोहा–५५१

जे कामी लोलुप जग माही। कुटिल काक इव सबहि डेराही ॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१२५

जे जन रूखे विषय रस, चिकने राम सनेह।
तुलसी ते प्रिय राम के, कानन वसहिं कि गेह ॥

दो०, दोहा–६१

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं विलोकत पातक भारी।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–७

जे पर भनिति सुनत हरषाही। ते वर पुरुष वहुत जग नाहीं।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–८

जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावही।
ते कहहु जानहु नाथ हम तव सगुन जस नित गावही।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१३

जेहि कर मनु रम जाहि सन, तेहि तेहि सन काम।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–८०

जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ॥

मानस प्रथम सोपान, दोहा–१२४

जेहि पिनाक बिनु नाक किए नृप सबहि बिषाद बढ़ायो।

गी०, बालकांड, पद–२

जेहि बिधि तुम्हहि रूप अस दीन्हा। तेहि जड़ बरु बाउर कस कीन्हा।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–९६

जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१३२

जैसे सुने तैसेई कुँवर सिरमौर है।

गी०, बालकांड, पद–२

जो अति आतप व्याकुल होई। तरु छाया सुख जानै सोई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–६९

जो इच्छा करिहहु मन माही। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाही।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११४

जो कह झूठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवत बखाना।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९८

जोग जुगुति जप मंत्र प्रभाऊ। फलै तबहि जब करिअ दुराऊ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१६८

जो चेतन कहँ जड करइ, जडहिं करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहिं भजहिं जीव ते धन्य॥

दो०, दोहा–१२८

जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–५६

जो पै जिय जानकीनाथ न जाने।
तौ सब करम धरम स्रमदायक, ऐसेइ कहत सयाने।

छंद–२२६

जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बालकबि करहीं।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१४

जो फलु चहिअ सुरतरुहि सो बरबस बबूरहि लागई।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–९६

जो बड़ होत सो राम बड़ाई।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१९९

जोरि पानि बर मागउँ एहू। सीय रामपद सहज सनेहू।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१९७

"जोरी जियौ जुग जुग" सखीजन जाँचहीं।।

क०, बा० कां०–१४

जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२६८

जौ पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न मागे दीन्हा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–८६

जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहि मुदित मन पितु अरु माता।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–८

जौ सपने सिर काटै कोई। बिनु जागे न दूरि दुख होई।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–११८

जौ अनीति कछु भाषौ भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–४३

जौ घन बरषै समय सिर, जौ भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहिं तऊ तिहारी आस।

दो०, दोहा–२७८

टेढ़ जानि संका सब काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२८१

ठ

ठीक प्रतीति कहै तुलसी जग होइ भले को भलाई भलाई॥

क०, उ०कां०–१३१

ड

डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६३

डहकु न है उजियरिया निसि नहिं धाम।
जगत जरत अस लागु मोहिं बिनु राम॥

बरवै रा०–३७

त

तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६९

तज्ञ कृतज्ञ अज्ञता भंजन। नाम अनेक अनाम निरंजन।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–३४

तन कृस मन दुखु बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७६

तनुपोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०२

तप तें अगम न कछु संसारा।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१६३

तापसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०१

तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७३

तब ते मोहि न व्यापी माया । जब ते रघुनायक अपनाया ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–८६

तबहि होई सब संसय भंगा । जब बहु काल करिअ सतसंगा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–६१

तात कुतरक करहु जनि जाएँ । बैर प्रेम नहि दुरइ दुराएँ ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२६४

तात गलानि करहु जियँ जाएँ । डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२१०

तात जायँ जिय करहु गलानी । ईस अधीन जीवगति जानी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२६३

तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन ।

जानकी मं०, दोहा–१८८

तात तुम्हार बिमल जसु गाई । पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२०७

तात ! समय सुधि करबि छोह छांड़ब जनि ।।

जानकी मं०, छंद–१६७

ताहि तें त्रिताप तयो लुनियत वई ।।

वि०, पद–२५२

तिन्हहि सोहाई न अवध बधावा । चोरहि चंदिनि राति न भावा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–११

तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै ।।

क०, अ० कां०–११

तुम अपनायो तब जानिहौ जब मन फिरि परिहै ।

वि०, पद—२६८

तुमते कहा न होय, हाहा ! सो बुझैये मोहिं,
हौंहूँ रहौं मौन ही, वयो सो जानि लुनिए ॥

क०, (हनु० बा)—४४

तुम्ह जो कहहु करहु सबु साचा । जस काछिअ तस चाहिअ नाचा ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१२७

तुलसी अस बालक सों नहि नेह कहा जप जोग समाधि किए ? ।
नर ते खर सूकर स्वान समान, कहो जग मे फल कौन जिए ? ॥

क०, बा० कां०—६

तुलसी करतल सिद्धि सब, सगुन सुमंगल साज ।
करि प्रनाम रामहिं चलहु, साहस सिद्ध सुकाज ॥

रा० प्र०, तृतीय सर्ग, सप्तक ६, दोहा—७

तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची
ढील किए नाम महिमा की नाव बोरिहौ ॥

वि०, पद—२५८

तुलसी की सुधरै सुधारे भूत नाथही के,
मेरे माय बाप गुरु संकर-भवानिए ॥

क०, उ० कां०—१६८,

तुलसी जगजीवन अहित, कतहुँ कोउ हित जानि ।
सोषक भानु, कृसानु, महि, पवन, एक घन दानि ॥

दो०, दोहा—३४६

तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिलै सहाइ ।
आपुनु आवै ताहि पहि, ताहि तहाँ लै जाइ ॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—१५९

तुलसी जाने सुनि समुझि, कृपासिंधु रघुराज ।
महँगे मनि कंचन किए, सौंघे जग, जल, नाज ॥

दो०, दोहा—१४९

तुलसी जापै राम सों, नाहिन सहज सनेह ।
मूड़ मुड़ायो बादि ही, भाँड़ भयो तजि गेह ॥

दो०, दोहा–६३

तुलसी जो राम सों सनेह साँचो चाहिए
तौ सेइए सनेह सो विचित्र चित्रकूट सो ॥

क०, उ० कां०–१४१

तुलसी तिहारो घरजायउ है घर को ॥

क०, उ० कां०–१२२

तुलसी तून जल-कूल को निरबल, निपट निकाज ।
कै राखै, कै संग चलै, बाँह गहे की लाज ॥

दो०, दोहावली–५४४

तुलसी त्यों त्यों होइगी गरुई ज्यों ज्यों कामरि भीजै ॥

कृ० गी०, पद–४६

तुलसी दिन भल साहु कहँ, भली चोर कहँ राति ।
निसि बासर ताकहँ भलो, मानै राम-इताति ॥

दो०, दोहा–१४८

तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२७६

तुलसी परिहरि हरि हरहि, पाँवर पूजहि, भूत ।
अंत फजीहति होहिगे गनिका के से पूत ॥

दो०, दोहा–६५

तुलसी प्रभु गुभाउ सुरतरु सो ज्यों दरपन मुखकांति ।

वि०, पद–२३३

तुलसी भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ
कोटिक कलेस करौ मरौ छार छानि सो ।

क, उ० कां०–१६१

तुलसी महीस देखे दिन रजनीस जैसे,
सूने परे सून से मनो मिटाए आँक के ॥

गी०, बालकांड, पद–६२

तुलसी रघुबर- सेवकहिं खल डांटत मन माखि।
बाजराज के बालकहिं, लवा दिखावत आंखि ॥

दो०, दोहा–१४४

तुलसी राम सुदीठि तें निबल होत बलवान ।
बैर बालि सुग्रीव के, कहा कियो हनुमान ? ॥

दो०, दोहा–११६

तुलसी रामहु ते अधिक, रामभक्त जिय जान ॥
रिनिया राजा राम भे, धनिक भए हनुमान ॥

दो०, दोहा–१११

तुलसी श्री रघुबीर तजि करै भरोसो और ।
सुख संपति को का चलो, नरकहु नाही ठौर ॥

दो०, दोहा–६४

तुलसी सहावै बिधि सोई सहियतु है ।

क०, अ० कां०–४

तुलसी सो राम के सरोज-पानि परसत ही,
टूट्यो मानों बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है ॥

क०, बा० कां०–१०

ते धीर अछत बिकारहेतु जे रहत मनसिज बस किए ॥

पार्वती मं०, छंद–२७

तेहि तें कहहिं संत श्रुति टेरें । परम-अकिंचन प्रिय हरि केरें ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१६१

तेहि तें परेउ मनोरथु छूछे ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३२

तोको मोसे अति घने, मोको एकै तूं ॥

विनय०, पद–१५०

तौलों न दाप दल्यो दसकंधर जौलौं विभीषन लात न मारो ॥

क०, उ० कां०–३

तौ सुनिबो देखिबो बहुत अब, कहा करम सों चारो ? ।।

कृ०गी०, पद–३८

द

दंडकवन-पावन करन, चरन सरोज प्रभाउ ।
ऊसर जामहिं, खल तरहिं, होइ रंक तें राउ ।।

दो०, दोहा–१७२

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज ।
जीतहु मनहि सुनिअ अस, रामचंद्र के राज ।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–२२

दारिद-दमन, दुख-दोष-दाह-दावानल,
दुनी न दयालु दूजो दानि सूलपानि सो ।।

क०, उ० का०–१६१

दिये पीठि पाछे लगै, सनमुख होत पराय ।
तुलसी संपति छाँह ज्यों, लखि दिन बैठि गँवाय ।।

दो०, दोहा–२५७

दिवस जात नहि लागिहि बारा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६२

दिसिनायक रह मूँदि कान ।।

गी०, बालकांड, पद–८

दीन-दुख- दमन को कौन तुलसीस है ।
पवन को पूत रजपूत रूरो ।।

क०, (हनु०बा०) –३

दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक,
लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं ।।

क०, उ० कां०–१६५

दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे जाब जहँ पाउब तहीं ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६७

दुखित कतहुँ परितोषु न लहही । एक एक सन मरमु न कहही ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३०२

दुराराध्य पै अहहिं महेसू । आसुतोप पुनि किएँ कलेसु ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७०

दुष्ट उदय जग अनरथ हेतू । जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२१

दूध को जरयो पिअत फूँकि फूँकि मह्यो हौ ।

विनय०, पद–२६०

देखव कोटि वियाह जियत जो वाँचिय''

पार्वती मं०, छंद–११६

देखि अमित बल वाढी प्रीती ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–७

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे । भये सुकृत सब सुफल हमारे ।

मानस, द्वितीय मापान, दोहा–१२६

देखिबो दरस दूसरेहु चौथेहु वडो लाभ, लघु हानी ।

कृ० गी०, पद–४८

देखो काल-कौतुक पिपीलिकनि पंख लागो,

भाग मेरे लोगनि के भई चित-सही है ।

गी०, सुदरकांड, पद–२४

देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,

भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत है ॥

क०, उ० कां०–१५६

देव काह हम तुम्हहि गोसाँई । ईंधनु पात किरात मिताई ।
येह हमारि अति वड़ि सेवकाई । लेहि न वासन वसन चोराई ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२५१

देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं । राखहुँ पलक नयन की नाईं ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–५७

देवनरि सेवौं वामदेव गाउँ रावरे ही,

नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं ।

क०, उ० कां०–१६५

देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,

ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है ॥

क०, अ० कां०–४

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहि व्यापा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–२१

दोष दुख दारिद दलैया दीनबंधु राम,

तुलसी न दूसरो दयानिधान दुनी में ॥

क०, उ० कां०–२१

दोष-दुरित-दुख-दारिद-दाहक नाम ।

सकल सुमंगलदायक तुलसी राम ॥

बरवै०, छंद–५८

ध

धन्य देस सो जहँ सुरसरी । धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२७

धरम सनेह उभय मति घेरी । भइ गति साँप छछूँदरि केरी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–५५

धान को गाँव पयारतें जानिय ।

कृ० गी०, पद–४४

धिग जीवन रघुबीर बिहीना ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१४४

धीरजु धर्म्म मित्र अरु नारी । आपद काल परखिअहि चारी ।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–५

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू । नाहि त बूड़िहि सबु परिवारू ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१५८

धीर, बीर, रघुबीर प्रिय सुमिरि समीर कुमार ।
अगम सुगम सब काज करु, करतल सिद्धिविचार ।।

दो०, दोहा—२३०

धोबी कैसो कूकर न घर को, न घाट को ।।

क०, उ० कां०—६६

न

नट मर्कट इव सबहि नचावत । रामु खगेस बेद अस गावत ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा—७

नयन दोष जा कहँ जब होई । पीत बरन ससि कहु कह सोई ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—७३

नरपीड़ित रोग न भोग कही । अभिमान बिरोध अकारन ही ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०२

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा । रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२०९

नहि अस कोउ जनमा जग माही । प्रभुता पाइ जाहि मद नाही ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—६०

नहिं तोप बिचार न सीतलता । सब जाति कुजाति भये मँगता ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०२

नहि मान पुरान न बेदहि जो । हरि सेवक संत सही कलि सो ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०१

नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन
कहाँ हनुमान-से बीर बाँके ।।

कविता०, लं० कां०—४५

नाथ कुसल पद पकज देखें। भयेउँ भाग भाजनु जन लेखें।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–८८

नाथ साथ साँथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१४०

नाथ ही के हाथ सब चोरउ-पहरु।

विनय०, पद–२५०

नाम भरोस, नाम बल, नाम सनेहु।
जनम जनम रघुनंदन तुलसिहि देहु॥

बरवै०–६८

नारद कर उपदेसु सुनि कहहु बसेउ किसु गेह।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७८

"नारि जनमु जग जाय"

पार्वती म०, छंद–१५६

नारि धरमु पति देव न दूजा।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१०२

नारि विवस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मकट की नाईं।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९९

नाहिन तात उरिन मैं तोही।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–२

नाहिन मोहि और कतहूँ कछु जैसे काग जहाज के।

गीता०, सुंदर०, पद–२६

निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–८

निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा विषु चाहति चीखा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–४७

निज गुन स्रवन सुनत सकुचाही। पर गुन सुनत अधिक हरषाही।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–४०

निज नयननि को त्र्यो सत्र चुनिए।

कृ० गी०, पद–३७

निज निज रुख रामहि सव् देखा।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२४४

निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहि थोरा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२६६

निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवहि संत सुपुनीता।

मानस, उत्तरकांड, दोहा–१२५

निज भुज वल मे वयरु वढ़ावा। देहौ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा।

मानस, पष्ठ सोपान, दोहा–७८

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ज्ञानी वैरागी।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–६८

निवछावरि प्रान करै तुलसी, वलि जाउँ लला इन वोलन की॥

कविता०, वालकाड–५

नीच जन, मन ऊँच, जैसी कोढ़ मे की खाज॥

विनय०, पद–२१६

नीच निचाई नहि तजै, सज्जन हू के संग।
तुलसी चंदन-विटप वसि, विनु विप भए न भुअग॥

दो०, दोहा–३३७

नीच महिपावली दहन विनु दही है॥

गीता०, वालकाड, पद–१

नीद न भूख पियास, सरिस निसि वासरु।

पार्वती मं०, छंद–४१

नील निचोल छाल भइ, फनि मनि भूषन।

पार्वती मं०, छंद–१२५

नृपमति अगह, गिरा न जाति गही है।

गीता०, बालकांड, पद–२

नृप न सोह बिनु बचन, नाक बिनु भूषन॥

जानकी मं०, छंद–७४

नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०१

नौकारूढ़ चलत जग देखा। अचल मोह बस आपुहि लेखा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७३

'न्हात खसै जनि बार।'

जानकी मं०, छंद–३२

प

पढ़िबो परचो न छठी।

विनय०, पद–१५५

पतित-पावन नाम, बाम हू दाहिनो, देव

विनय०, पद–२५७

परद्रोही की होइ निसंका। कामी पुनि रहहि अकलंका।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–११२

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावै मनहि करहु तुम्ह सोई।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१३७

परसुराम से सूर-सिरोमनि पल मे भए खेत के-से धोखे॥

गी०, सुं०कां०, पद–१२

परहित लागि तजै जो देही। संतत संत प्रसंसहिं तेही

मानस, प्रथम सोपान दोहा–८४

पराधीन सपनेहु सुखु नाही।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१०२

परेउ निसानहिं घाउ राउ अवधहिं चले।

जानकी मं०, छंद–१६०

पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९९

पात द्वै धतूरे के दै भोरे कै भवेस सों
सुरेस हू की संपदा सुभाय सों न लेत रे।।

क०, उ०कां०–१६२

पात पात कै सीचिबो, बरी बरी कै लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन कलि डँहके कहु को न? ।।

दो०, दोहा–४४६

पाप करत निसि बासर जाही। नहि पट कटि नहि पेट अघाहीं।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२५१

पारस जौ घर मिलै तौ मेरु कि जाइय ? ।।

पार्वती मं०, छंद–५१

पालि कै कृपालु ब्याल-बाल को न मारिए।
औ काटिए न, नाथ ! बिषहू को रूख लाइकै।।

क०, उ० कां० –६१

पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी।।

कृ० गी०, पद–४८

पाहि हनुमान ! करुनानिधान राम पाहि।
कासी-कामधेनु कलि कुहत कसाई है।।

क०, उ० कां०–१८१

पितु आयेसु सब धरम क टीका।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–५५

पीपर पात सरिस मनु डोला ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–४५

पुन्य, पाप, जस अजस के भावी भाजन भूरि ।
सकट तुलसीदास को राम करहिंगे दूरि ।।

दो०, दोहा–१४६

पूंछ सो प्रेम, विरोध सीग सों, यहि विचार हितहानी ।

कृ० गी०, पद–४६

पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच-विमोचन छेमकरी है ।।

क०, उ० कां०–१८०

प्रभु के चरित चारु तुलसी सुनत सुख,
　　एक ही सुलाभ सबही की हानि हरी है ।।

गी०, बालकांड, पद–६०

प्रभु जानत सब बिनहि जनाएँ । कहहु कवन सिधि लोक रिझाएँ ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१६२

प्रभु तरुतर, कपि डार पर, ते किए आपु समान ।
तुलसी कहूँ न राम सो साहिब सीलनिधान ।।

दो०, दोहा–५०

प्रभु माया बलवंत भवानी । जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–६२

प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो ।

विनय०, पद–२२६

प्रीति राम सों, नीतिपथ चलिय, राग रिस जीति ।
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति ।।

दो०, दोहा—८६

प्रेम तें प्रभु प्रगटै जिमि आगी ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१८५

प्रेम विबस मुख आव न बानी ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१०४

प्रभु प्रमोदु न कछु कहि जाई । रंकु धनद पदवी जनु पाई ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–५२

फ

फरै फूलै फैलै खल, सीदे साधु पल पल,
खाती दीप मालिका, ठठाइयत सूप हैं ।।

क०, उ० कां०–१७१

फोरै जोगु कपारु अभागा । भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१६

ब

बंचक भगत कहाइ राम के । किंकर कंचन कोह काम के ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१२

बंधु-बधू-रत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि ।
तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछू कुचालि ।।

दो०, दोहा–१५७

बक्यो आउ बाउ मैं ।

विनय०, पद–२६१

बचन अन्यथा होइ न मोरा ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–८८

बचन-बेष तें जो बनै सो बिगरै परिनाम ।
तुलसी मन तें जो बनै बनी बनाई राम ।।

दो०, दोहा–१५४

बड़े सनेह लघुन्ह पर करही । गिरि निज सिरनि सदा तृन धरही ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१६७

बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि दीनता।

विनय०, पद–२६२

बनइ न रहत, न बनइ परातहि ॥

पार्वती मं०, छंद–११५

बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–२०

बर अनुहारि बरात न भाई। हंसी करैहहु पर पुर जाई।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६३

बरु पावक प्रगटै ससि माहीं। नारद बचनु अन्यथा नाहीं।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७१

बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास।
तीरथहू को नाम भो 'गया' मगह के पास ॥

दो०, दोहा–३६२

बसौ भवनु उजरो नहि डरऊँ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–८०

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मै जानत अहऊँ।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–१७

बहु दाम सवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि रही बिरती।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०१

बहै न हाथु दहै रिस छाती। भा कुठारु कुंठित नृपघाती।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२८०

ब्यर्थ मरहु जनि गाल बजाई। मनमोदकन्हि कि भूख बताई।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२४६

ब्याधि बिपति सब देवकृत, समय सगुन कहि दीन्ह ॥

रा०प्र०, सप्तम सर्ग, सप्तक–६, दोहा–५

बागन्ह विटप वेलि कुंभिनाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं ॥
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—८३

बाजु सुराग कि गाँडर ताँती।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२४१

बातुल भूत विवस मतवारे। ते नहि बोलहिं वचन विचारे।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा—११५

बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानै ब्रह्म सो विप्रवर, आँखि देखावहिं डाटि ॥
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—९९

बसौ भवनु उजरौ नहि डरऊ।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा—८०

बादि बसन विनु भूषन भारू। बादि विरति विनु ब्रह्म विचारू।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—१७८

बाम विधि मेरो सुख सिरिस सुमन सम,
ताको छल-छुरी केहि-कुलिस लै टेई है ॥
अ० कां०, क०,—३

बायस पलिअहि अति अनुरागा। होंहि निरामिष कवहुँ कि कागा।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा—५

बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२१७

बार बार बर मागौं, हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी, भगति सदा सतसंग ॥
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१४

बारिबुद चारि त्रिपुरारि पर डारिए तौ।
देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो ॥
उ० कां०, क०—१६१

वालक ज्ञान वुद्धि वल हीना । राखहु सरन नाथ जन दीना ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१८

विध न ईंधन पाइए, सागर जुरै न नीर।
परै उपास कुवेर घर, जो विपच्छ रघुवीर।

दो०, दोहा–७२

विछुरत एक प्रान हरि लेई। मिलत एक दुख दारुन देई।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–५

विधि गति अति वलवान ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२००

विधि प्रपचु गुन अवगुन साना ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६

विधि वस सुजन कुसंगति परही। फनि मनि सम निज गुन अनुसरही ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–३

विधि सों कछु न वसाई।।

कृ० गी०, पद–३२

विधि हरि हर माया वड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकै निहारी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९५

विधु महि पूर मयूखन्हि, रवि तप जेतनेहि काज ।
मागे वारिद देहि जल, रामचद्र के राज ।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–२३

विनय न मानहिं जीव जड़, डाँटे नवहिं अचेत ।।

रा० प्र०, पंचमसर्ग, सप्तक ५, दोहा–६

विन ही ऋतु तरुवर फरत, सिला द्रवति जलजोर।
राम लपन सिय करि कृपा, जव चितवत जेहि ओर ।।

दो०, दोहा–१७३

विनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग विनु।
गावहिं वेद पुरान, सुख कि लहिय हरिभगति विनु ।।

दो०, दोहा—१३७

"विपरीत गति विधि वाम की" ।

जानकी मं०, छंद—८१

बीस भुज सीस दस खीस गए तवहिं जव
ईस के ईस सो वैर कीन्ह्यौ ।

लं०कां०, क०—१८

बूझयो राग वाजी तांति ।

विनय०, पद—२३३

बूड़त विरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो ।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—५

बूढ भए वलि, मेरेहि वार, कि हारि परैं वहुतै नत पाले।।

क०, (हनु० वा०)—१७

ब्रह्म ज्ञान विनु नारि नर कहहिं न दूसरि वात।
कौड़ी लागि ते लोभ वस करहिं विप्र गुर घात।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—९९

ब्रह्मज्ञान विनु नारि-नर, कहहिं न दूसरि वात।
कौड़ी लागि ते लोभवस, करहिं विप्र-गुरु-घात।।

दो०, दोहा—५५२

भ

भए कामवस, जोगीस तापस पाँवरन्हि की को कहे।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा—८५

भए वरनसंकर कलि भिन्न सेतु सव लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक वियोग।।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१००

भगत, भूमि भूसुर, सुरभि, सुरहित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज-तनु, सुनत मिटहिं जगजाल ॥

दो०, दोहा–१२३

भगति तात अनुपम सुख मूला । मिलइ जो संत होइ अनुकूला ।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–१०

भरत हृदय सिय रामु निवासू । तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९५

भरतु अवधि सनेह ममता की । जद्यपि रामु सीव समता की ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२८९

भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ विधाता वाम ।
धूरि मेरु सम जनक जम, ताहि व्याल सम दाम ॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१७५

भलो न भूमि पर वादर छीवो ।

कृ० गी०, पद–६

भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीचु ।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु ॥

दो०, दोहा–३३८

भायँ कुभायँ अनख आलसहू । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२८

भारी पीर दुसह सरीर तें विहाल होत,
सोऊ रघुवीर विनु सकै दूरि करि को ॥

क०, (हनु० वा०)–४२

भाविउ मेटि सकहि त्रिपुरारी ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७०

भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान,
सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महावल भो ॥

क० (हनु० वा०)–७

भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिन।
कछु न अगम, सब सुगम, भयो विधि दाहिन ।।

पा० मं०, छंद–१७

भूरि भाग भाजनु भयेहु, मोहि समेत बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरें मनु छाड़ि छलु, कीन्ह राम पद ठाउँ ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७४

भोग रोग सम भूपन भारू । जम जातना सरिस संसारू ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६५

भौन में भाँग, धतूरोई आँगन, नांगे के आगे है माँगने वाढे ।।

उ० का०, कवि०–१५४

भ्राता पिता पुत्र उरगारी । पुरुष मनोहर निरखत नारी ।।
होइ बिकल सक मनहिं न रोकी । जिमि रविमनि द्रव रविहिं बिलोकी ।।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–१०

म

मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–११२

मंजुल मंगल मोदमय, मूरति मारुत पूत।
सकल सिद्धि करकमल तल सुमिरत रघुवरदूत ।।

दो०, दोहा–२२६

मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी । चहिअ अमिअँ जग जुरैं न छाछी ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–८

मतिभारति पंगु भई जो निहारि, विचारि फिरी उपमा न पवै ।।

क०, बा० कां०–७

मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागही ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१३

मन मो न बस्यो अस बालक जौ तुलसी जग मे फल कौन जिए ? ॥

कविता०, बा०कां०–२

मनु मलीन तनु सुदर कैसे । विष रस भरा कनक घट जैसे ॥

मानम, सप्तम सोपान, दोहा–२७८

मसक कहूं खगपति हित करही ।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–११८

महा मोहु महिषेसु बिसाला । रामकथा कालिका कराला ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–४७

महाराज अब कीजिअ सोई । सब कर धरम सहित हित होई ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९१

महिमा अमित मोरि मति थोरी । रवि सन्मुख खद्योत अँजोरी ।

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–५ क

मांगउँ भीख त्याग निज धरमू । आरत काह न करइ कुकरमू ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२०४

मांगि कै खैबो, मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ ॥

उ० का०, क०–१०६

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं । उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९९

माथे हाथ मूदि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ।

मानस, द्वितीय सोपान दोहा–२९

मान राखिबो मांगिबो, पिय सों नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिउ तब फबैं, जौं चातक मत लेहु ॥

दो०, दोहा–२५८

माया ईस न आपु कहुँ, जान कहिअ सो जीव ।
बंध मोक्षप्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव ॥

मानस, तृतीय सोपान, दोहा–९

माया मायानाथ की को जग जाननहार ?

दो०, दोहा–२४५

मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९८

मारिए तो अनायास कासीवास खास फल,
ज्याइए तौ कृपा करि निरुज सरीर हौ ।।

क०, उ० कां०–१६६

मारेसि मोहि कुठाय ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३०

मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहै सब कोई।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९८

मिलहि न पावक महं तुषार-कन जो खोजत सत कलप सिराही ।।

कृ० गी०, पद–५८

मिलेहु गरुड़ मारग महं मोही। कवन भांति समुझावौं तोही।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–६१

मिलै जो सरलहि सरल ह्वै, कुटिल न सहज बिहाइ।
सो सहेतु ज्यों वक्रगति, व्याल न बिलै समाइ।।

दो०, दोहा–३३४

मिलै न जगत सहोदर भ्राता।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–६१

मीठ ताहि कवि कहहिं जाहि जोइ भावइ।।

पार्वती, म०, छंद–७२

मीठो अरु कठवति भरौ, रौताई अरु खेम।
स्वारथ परमारथ सुलभ, रामनाम के प्रेम ।।

दो०, दोहा–१५

मुखिया मुखु सो चाहिअइ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक ॥
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३१५

मुनि अति बिकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१३५

मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२६४

मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनसफल जैसा।
मानस, तृतीय सोपान, दोहा–४ क

मुनिहि सोचु पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२१२

मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ ॥
पार्वती मं०, छंद–७१

मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—६६

मेरोई फोरिबे जोग कपार, किधौं कछु काहू लखाइ दियो है।
उ० कां०, क०–१५७

मेरु-से दोष दूरि करि जन के, रेनु-से गुन उर आने।
वि०, पद–२३६

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया।
मानस, तृतीय सोपान, दोहा–६

मैन के दसन, कुलिस के मोदक कहत सुनत बौराई।
कृ० गी०, पद–५१

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तपु मो कहुँ भोगू ॥
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६७

मो कहुँ तिलक साज सज सोऊ। भयें विधि विमुख विमुख सब कोऊ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१८२

मोटो दसकंध सो न दूवरो विभीपन सो,
बूझि परी रावरे की प्रेम-पराधीनता ।।
विनय०, पद–२६२

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईश्वर करिहि सहाई।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–८३

मोरि बात सब विधिहिं बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई ।।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१८०

मोरे तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१८

मोरे मन प्रभु अस विस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१२०

मो सम दीन न दीनहित तुम्ह समान रघुवीर।
अस विचरि रघुवंस मनि हरहु विषम भवभीर।।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१३०

मो सम दीन, न दीनहितु तुम समान रघुवीर।
अस विचारि, रघुवंसमनि, हरहु विषम भवभीर ।।
दो०, दोहा–१७६

मोहिं तो सावन के अंधहिं ज्यौं सूझत रंग हरो।।
वि०, पद–२२६

र

रघुकुल-तिलक सदा तुम्ह उथपनथापन ।।
जानकी मं०, छंद–१६३

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ वरु वचनु न जाई।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२८

रघुनाथ विना दुख कौन हरै ? ॥

क०, उ० कां०–५५

रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमदिक सुख संपदा रही अवध सब छाइ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–२९

रमा विलासु राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड़भागी॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३२४

राँक सिरोमनि काकिनिभाग विलोकत लोकप को करदा है॥

क०, उ० का०–१५५

राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परमपद लाहू।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३१४

राकापति षोडस उअहिं तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रवि राति न जाइ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–७८

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–५५

राजभवन सुख विलसत सिय सँग राम।
विपिन चले तजि राज, सु विधि बड़ बाम॥

बरवै रा०–२१

राजा रामु जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२७३

राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं॥

क०, अयोध्याकांड–२

राजु करत येह दैअँ बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–५१

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२४

राम कथा जग मंगल करनी॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१०

रामकथा सुंदर करतारी। संसय विहग उडावनिहारी।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–११४

राम कीन्ह आपन जवही ते। भयेउँ भुवन भूपन तवही ते।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१९६

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहि कोई॥

मानस, प्रथम सोदान, दोहा–१२८

राम के गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सव,
सव सों सनेह सवही को सनमानिए।

क०, उ० का०–१६८

राम को दुलारो दास वामदेव को निवास,
नाम कलि कामतरु केसरी-किसोर को।

क०, (हनु० वाहु०)–९

रामचंद्र के भजन विनु जो चह पद निर्वान।
ज्ञानवंत अपि सोइ नर पसु विनु पुंछ बिखान॥

दो०, दोहा–१३८

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सव काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित विसेषि वड़ लाहु॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–३२

रामनाम-अवलंव विनु परमारथ की आस।
वरषत वारिद-वूंद गहि चाहत चढ़न अकास॥

दो०, दोहा–२०

रामनाम-रति, नामगति, राम नाम विस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, तुलसी तुलसीदास ॥

रा० प्र०, षष्ठसर्ग, सप्तक–४, दोहा–७

रामनाम ही सों जोग छेम, नेम प्रेम-पन ।
सुधा सो भरोसो एहु दूसरो जहरु ॥

वि० ,पद–२५०

राम पुनीत विषय रस रूखे । लोलुप भूमि भोग के भूखे ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७६

राम वाम दिसि जानकी, लषनु दाहिनी ओर ।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर ॥

रा० प्र०, सप्तम सर्ग, सप्तक–३, दोहा–७

राम विमुख काहु न सुखु पायो ।

मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–४८

राम ब्रह्म चिन्मय अविनासी । सर्व रहित सब उर पुर वासी ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१२०

राम राज कर सुख संपदा । बरनि न सकै फनीस सारदा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–२२

राम राज बैठे त्रैलोका । हरषित भए गए सब सोका ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–२०

राम सदा सरनागत की अनखौंही अनैसी सुभाय सही है ॥

क०, उ० कां०–६

राम सदा सेवक रुचि राखी । वेद पुरान साधु सुर भाखी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२१६

राम सुमिरि साहसु करिय, मानिय हिये न हारि ॥

रा० प्र०, पंचम सर्ग, सप्तक–१, दोहा–३

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१३७

रामहि डरु, करु राम सों ममता, प्रीति, प्रतीति।
तुलसी निरुपधि राम को भए हारेहू जीति॥
दो०, दोहा–६५

रामु प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७४

रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२८३

रीझि रीझि दिए वर, खीझि खीझि घाले घर।
विनय०, पद–२४६

रूप विसेष नाम बिनु जाने। करतल गत न परहिं पहिचाने।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–२१

रोष में भरोसो एक आसुतोष कहि जात,
विकल विलोकि लोक कालकूट पियो है॥
उ० कां०, क० क–१७२

रौरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२८५

ल

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।
मानस, पंचम सोपान, दोहा–६

लखि सुवेस जग वंचक जेऊ। वेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ।
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७

लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू । सरिस स्वान मघवान जुवानू ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा ३०२

लघु आनन उत्तर देत बड़ो, लरिहै मरिहै करिहै कछु साको ।
क०, बा० कां०—२०

लघु जीवन संवत पंचदसा । कलपात न नास गुमानु असा ।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा—१०२

लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो ?
विनय०, पद २५६

लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के
क०, लं० कां०—६

लही आँख किन आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याय ? ।
कब कोढ़ी काया लही ? जग बहराइच जाइ ।।
दो० दोहा—४६६

लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै, केहि काज ? ।
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीबनिवाज ।।
दो०, दोहा—१०८

लागत रामप्रसाद मोहिं, गोपद सरिस पयोधि ।।
रा० प्र०, पंचम सर्ग, सप्तक—१, दोहा—५

लालन जोगु लखन लघु लोने । भे न भाइ अस अहहिं न होने ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२००

लिए बेर बदलि अमोल-मनि-आउ मैं ।
वि०, पद—२६१

लिखत सुधाकर गा लिखि राहू । विधि गति बाम सदा सब काहू ।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—५५

लोचन सहस न सूझ सुमेरू ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२६५

लोभ के इच्छा दंभ वल, काम के केवल नारि ।
क्रोध के परूप वचन वल, मुनिवर कहहिं विचारि ॥

दो०, दोहा–२६५

श

श्रवनवंत अस को जग माही । जाहि न रघुपति चरित सुहाहीं ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–५३

श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहिँ ।
मृगनयनी के नयनसर, को अस लाग न जाहि ? ॥

दो०, दोहा–२६२

श्री रघुवीर प्रताप ते सिंधु तरे पापान ।
ते मतिमद जे राम तजि भजहिं जाय प्रभु आन ॥

दो०, दोहा–१२६

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत विरति विवेक ।
तेहि न चलहि नर मोह वस कल्पहिं पंथ अनेक ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१००

श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरि दास ।
पाइ उमा अति गोप्यमपि सज्जन करहि प्रकाश ॥

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–६९

स

संत असंतन्ह कै असि करनी । जिमि कुठार चदन आचरनी ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–३७

सत-संग अपवर्गकर, कामी भवकर पंथ ।

दो०, दोहा–३४०

संत हंस गुन ग्रहंहि पय परिहरि वारि विकार ॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६

सकल-सुमंगल-मूल जग, भूसुर आसिरवाद।

रा० प्र०, प्रथम सर्ग, सप्तक–१, दोहा–४

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१८६

सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहि मुनि पुरान बुध वेदा।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–११६

सठ सुधरहि सत संगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–३

सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं। मायाकृत परमारथ नाहीं।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा–७

सत्य वचन, मानस विमल, कपटरहित करतूति।
तुलसी रघुबर सेवकहिं, सकै न कलिजुग धूति॥

दो०, दोहा–८७

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ॥

दो०, दोहा–२४७

सबके प्रिय सेवक यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१६

सबके सकल मनोरथ विधि पूरन करे॥

पार्वती मं०, छंद–१६२

सब जाय दास तुलसी कहै जो न रामपद नेह नित।

क०, उ० कां–११६

सब दिन रूरो परै पूरो जहाँ तहाँ ताहि,
जाके है भरोसो हिए हाँक हनुमान को ॥

(क०) हनु० बा०,–१२

सब नर करहिं परस्पर प्रीती ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–२१

सब नर कल्पित करहिं अचारा । जाइ न बरनि अनीति अपारा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१००

सब लोग वियोग विसोक हए । बरनाश्रम धर्म अचार गए ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०२

सबै कहावत रामके, सबहि राम की आस ।
राम कहै जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसीदास ॥

दो०, दोहा–१४१

सबै साहिबहि सोहै ॥

कृ० गी०, पद–३५

सम मानि निरादर आदरही । सब संत सुखी विचरंति मही ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१४

समय सगुन कह करमबस, दुख सुख जोग वियोग ॥

रा० प्र०, सप्तम सर्ग, सप्तक-६, दोहा–६

समरथ कहुँ नहिं दोस गोसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाईं ॥

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६६

समुझै खग खग ही कै भाषा ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–६२

सरल कवित कीरति विमल सोइ आदरहिं सुजान ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१४

सरुज सरीर बादि बहु भोगा । बिनु हरि भगति जायँ जप जोगा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१७८

सर्बसु खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भए वल्लभ प्राना।
मानस, षष्ठ सोपान, दोहा–४२

ससुरारि पिआरी लगी जब तें। रिपु रूप कुटुंब भए तब तें।
मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०१

सहज एकाकन्हि कें भवन कबहुँ कि नारि खटाहिं ॥
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–६७

सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलै जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिल समान ॥
दो०, दोहा–२१७

सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परें पावस पानी।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–५४

सहित समाज गढ राँड़ कैसो भाँड़िगो ॥
क०, लं० कां०–२४

साक बनिक मनि गन गुन जैसे ॥
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–३

साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान।
दो०, दोहा–५५४

साधो कहा करि साधन तें, जोपै राधो नहीं पति पारबती को ? ॥
क०, उ० का०–१५६

सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी।
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी ॥
मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१०५

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भवबंध बिमोचनि।
मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२८८

सावनसरित सिंधुरुख सूप सों घेरइ ॥

पार्वती मं०, छंद–६६

सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर कूपहि ॥

पार्वती मं०, छंद–१४०

सिअरे बचन सूखि गये कैसे । परसतु तुहिन तामरसु जैसे ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७१

सिय मनु रामु चरन अनुरागा । 'घरु न सुगमु बनु बिषम न लागा' ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७८

सिर धरि आएसु करिअ तुम्हारा । परम धरमु यह नाथ हमारा ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७७

सिर भर जाऊँ उचित अस मोरा । सब ते सेवक धरमु कठोरा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२०३

सिव-साधु-निंदकु मंद अति जो सुनै सोउ बड़ पातकी ॥

पार्वती मं०, छंद–७४

सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा । तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३०

सीतल सिख दाहक भइ कैसें । चकइहि सरद चंद निसि जैसें ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–६४

सीतापति सेवक सेवकाई । कामधेनु सय सरिस सुहाई ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२२६

सीताराम चरन रति मोरें । अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२०५

सीम की चाँपि सकै कोउ तासू । बड़ रखवार रमापति जासू ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१२६

सीय राम मय सब जग जानी । करौ प्रनाम जोरि जुग पानी ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–८

सीय सो न तीय न पुरुष राम सारिखो ।

क०, बालकांड–१६

सीय सुखदायक, दुलारो रघुनायक को,
सेवक सहायक है साहसी समीर को ॥

क०, (हनु० बा०)–१०

सीलु सकुच सुठि सरल सुभाऊ । कृपा सनेह सदन रघुराऊ ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१८३

सीलु सराहि सभा सब सोची । कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३२३

सुकृत न सुकृती परिहरै, कपट न कपटी नीच ।
मरत सिखावन देइ चले, गीधराज मारीच ॥

दो०, दोहा–३४१

सुख चाहहिं मूढ न धर्मरता । मति थोरि कठोरि न कोमलता ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०२

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे । अरथु अमित अति आखर थोरे ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९४

सुगुनु खीरु अवगुन जलु ताता । मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२३२

सुजन सुतरु, बन, ऊख सम, खल टंकिका रुखान ।
परहित अनहित लागि सब, साँसति सहत समान ॥

दो०, दोहा–३४२

सुत मानहिं मातु पिता तब लौं । अबलानन दीख नहीं जब लौं ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१०१

सुधा कि रोगिहि चाहहि, रतन कि राजहि ? ॥

पार्वती मं०, छंद–५२

सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै ? ।।

जानकी मं०, छंद–९७

सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहडो रैहौ ।।

विनय०, पद–२५८

सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई । लहहिं भगति गति संपति नई ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१५

सुनिअँ सुधा देखिअहिं गरल, सब करतूति कराल ।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२८१

सुनि आमरखि उठे अवनीपति ।

गी०, बालकांड, पद–४

सुनिय सुधा, देखिय गरल, सब करतूति कराल ।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ।।

दो०, दोहा–३४७

सुनि रघुबीर की बचन–-रचना की रीति, ।
भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहान को ।।

गी०, बालकांड, पद–४

सुनु प्रभु बहुत अवज्ञा किए । उपज क्रोध ज्ञानिन्ह के हिये ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–१११

सुनु मुनि मोह होइ मन ताके । ज्ञान बिराग हृदय नहिं जाके ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१२९

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी । ईसु देइ फलु हृदय विचारी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–७७

सुमिरत भरतहि प्रेमु राम को । जेहि न सुलभु तेहि सरिस वाम को ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३०४

सुमिरि करहु सब काज सुभ, पग पग परमानंद ॥

रा० प्र०, पंचम सर्ग, सप्तक-४, दोहा-५

सुर नर मुनि सब के यह रीती । स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा-१२

सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा-३११

सुलभ सिद्धि सब सगुन सुभ, सुमिरत सीताराम ॥

रा० प्र०, सप्तम सर्ग, सप्तक ५, दोहा-४

सूख हाड़ लै भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा-१२५

सूर-सिरोमनि साहसी, सुमति समीर कुमार ।
सुमिरत सब सुख-संपदा-मुदमंगल-दातार ॥

दो०, दोहा-२३३

सेइ, साधु गुरु, समुझि, सिखि, रामभगति थिरताइ ।
लरिकाई को पैरिबो तुलसी बिसरि न जाइ ॥

दो०, दोहा-१४०

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ ।
तुलमी प्रीति की रीति सुनि सुकवि सराहहिं सोइ ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा-३०६

सेवक सुत पति मातु भरोसे । रहै असोच बनै प्रभु पोसे ।

मानस, चतुर्थ सोपान, दोहा-३

सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी । परिहरि अमृत लेहिं बिषु माँगी ।
तेउ न पाइअ समउ चुकाही । देखु बिचारि मातु मन माही ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा-४२

सोइ आदरौं आस जाके जिय बारि बिलोवत घी की ॥

कृ० गी०, पद-४३

सोइ प्रभु कर परसत टूट्यो जनु हुतो पुरारि पढ़ायो ॥

गी०, बालकाड, पद–२

सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९८

सो कि दोषगुन गनइ जो जेहि अनुरागइ ।

पार्वती म०, छंद–६७

सोच विकल मग परइ न पाऊ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–३९

सोचहिं दूपन दैवहि देही । बिरचत हंस काग किय जेही ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१७५

सो न टरै जो रचै विधाता ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–९७

सो मति मोहि कहत करु भोरी । चदिनि कर कि चंडकर चोरी ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९५

सो मैं बरनि कहौ विधि केही। डाबर कमठ कि मंदरु लेही ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१३९

सौभागिनी विभूपन हीना । विधवन्ह के सिंगार नवीना ।

मानस, सप्तम सोपान, दोहा–९९

स्वामि धरम स्वारथहि विरोधू। वैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू ॥

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२९३

स्वामी के सनेह स्वान हू को सनमानु है ॥

क०, उ० कां०–६४

स्वारथ औ परमारथ हूँ को नहिं कुजरो नरो ।

वि०, पद–२२६

हरि अनंत हरिकथा अनंता । कहहिं सुनहिं बहु विधि सब संता ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१४०

हरि इच्छा बलवान ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१२७

हरि इच्छा भावी बलवाना ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–५६

हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–१८५

हरो चरहिं, तापहिं बरत, फरे पसारहिं हाथ ।
तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ ।।

दो०, दोहा–५२

हानि कुसंग सुसंगति लाहू ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–७

हित अनहित पसु पच्छिउ जाना । मानुष तनु गुन ग्यान निधाना ।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२६४

हित पर बढ़इ विरोध जब, अनहित पर अनुराग ।
राम विमुख विधि बामगत, सगुन अघाइ अभाग ।।

रा० प्र०, सप्तम, सर्ग, सप्तक–४ दोहा–२

हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु ।
जानत हों मोहि दीन्ह बिधि एहु जातना सरीरु ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–१४६

हृदय सोचु समुझत निज करनी ।

मानस, प्रथम सोपान, दोहा–५८

है तुलसी के एक गुन अवगुन निधि कहैं लोग ।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग ।।

दो०, दोहा–८५

सूक्तियाँ

अ

अति ऊँचे भूधरनि पर, भुजगन के अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख अन्न अरु पान॥

वै० सं०, दोहा–३९

अवसि होइ सिधि, साहस फलै सुधा धन।
कोटि कल्पतरु सरिस सभु-अवराधन॥

पार्वती मं०, छंद–२२

आ

आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम।
तेहिके पग को पानही तुलसी-तनु को चाम॥

दो०, दोहा–५९

आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोई कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ॥

दो०, दोहा–३५७

आपु व्याध को रूप धरि, कुहो कुरंगहि राग।
तुलसी जो मृगमन मुरै, परै प्रेमपट दाग॥

दो०, दोहा–३१४

उ

उपमा कहत लजाइ भारती भाजइ॥

जानकी मं०, दोहा–१५८

ए

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
राम-रूप-स्वाती-जलद, चातक तुलसीदास॥

वै० सं०, दोहा–१५

क

कंचन काँचहि सम गनै, कामिनी काठ पपान।
तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान॥

वै० सं०, दोहा–२७

कनकहि बान चढ़इ जिमि दाहें । तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२०५

कमल कटकित सजनी, कोमल पाइ ।
निसि मलीन यह प्रफुलित नित दरसाइ ।।

बरवै०–२६

कामधेनु हरिनाम, कामतरु राम ।
तुलसी सुलभ चारि फल सुमिरत नाम ।।

बरवै०–६२

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि ।
चित खगेस अस रामकर, समुझि परै कहु काहि ।।

दो०, दोहा–१६१

कृपनु देइ, पाइअ परो, बिन साधन सिधि होइ ।
सीतापति सनमुख समुझि, जो कीजिय सुभ सोइ ।।

रा० प्र०, सप्तम सर्ग, सप्तक–४, दोहा–३

केहि गिनती महँ ? गिनती जस बनघास ।
राम जपत भए तुलसी तुलसीदास ।।

बरवै०–५६

कै तोहि लागहि राम प्रिय, कै तू प्रभु प्रिय होहि ।
दुइ महँ रुचै जो सुगम सो, कीबे तुलसी तोहि ।।

दो०, दोहा–७८

ग

गुन बिस्वास, बिचित्र मनि, सगुन मनोहर हारु ।
तुलसी रघुबर–भगत–उर, बिलसत बिमल बिचारु ।।

रा० प्र०, सप्तम सर्ग, सप्तक–७, दोहा–७

गुरु सरसइ सिंधुरबदन, ससि सुरसरि सुरगाइ ।
सुमिरि चलहु मग मुदित मन, होइहि सुकृत सहाइ ।।

रा० प्र०, प्रथम सर्ग, सप्तक–१, दोहा–२

ज

जटा मुकुट कर सर धनु संग मरीच ।
चितवनि बसति कनखियनु अँखियनु बीच ।।

बरवै०–३०

जथा भूमि सब बीज मैं, नखत निवास अकास ।
रामनाम सब धरम मैं, जानत तुलसीदास ॥

दो०, दोहा—२६

जनम-पत्रिका बरति कै, देखहु मनहिं विचारि ।
दारुन बैरी मीचु के, बीच विराजत नारि ॥

दो०, दोहा—२६७

जरत सकल सुरबृंद, विषम गरल जेहिं पान किय ।
तेहिं न भजसि मतिमंद, को कृपालु संकर सरिस ॥

दो०, दोहा—२३८

जाने बिनु भगति न, जानिबो तिहारे हाथ ।

विनय, पद २५१

जेहिं सरीर रति राम सों, सोइ आदरहिं सुजान ।
रुद्र देह तजि नेह-बस, बानर भे हनुमान ॥

दो०, दोहा—१४२

जो संपति सिव रावनहि, दीन्हि दिए दस माथ ।
सोइ संपदा विभीषनहिं, सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥

दो०, दोहा—१६३

जौं जगदीस तौ अति भलो, जो महीस तौ भाग ।
तुलसी चाहत जनम भरि, रामचरन-अनुराग ॥

दो०, दोहा—६१

झ

झलका झलकत पायन्ह कैसे । पंकज कोस ओस कन जैसे

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा—२०४

त

तन करि मन करि वचन करि, काहू दूषत नाहिं ।
तुलसी ऐसे संतजन, रामरूप जग माहिं ॥

वै० सं०, दोहा—२३

तनु विचित्र, कायर वचन, अहि अहार, मन घोर ।
तुलसी हरि भए पच्छधर, ताते कह सब मोर ॥

दो०, दोहा—१०७

तप, तीरथ, मख, दान, नेम, उपवास ।
सब तें अधिक राम जपु तुलसीदास ॥

बरवै रा०—५२

तुलसिदास एहि त्रास सरन राखिहि जेहि गीध उधार्यो ॥

विनय०, पद—२०२

तुलसी अपनो आचरन, भलो न लागत कासु ।
तेहि न बसात जो खात नित, लहसुनहू को बासु ॥

दो०, दोहा—३५५

तुलसी ऐसे कहुँ कहूँ, धन्य धरनि वहु संत ।
परकाजे परमारथी, प्रीति लिये निबहंत ॥

वै० सं०, दोहा—१०

तुलसी ऐसे सीतल संता । सदा रहैं एहि भाँति एकंता ।
कहा करै खल लोग भुजंगा । कीन्ह्यो गरलसील जो अगा ॥

वै० सं०, दोहा—४७

तुलसी चातक देत सिख, सुतहि बार ही बार ।
तात न तर्पन कीजियै, विना बारिधर धार ॥

दो०, दोहा—३०४

तुलसी चातक माँगनो एक, एक घन दानि ।
देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूंटक पानि ॥

दो०, दोहा—२८७

तुलसी जाके वदन तें, धोखेउ निकसत राम ।
ताके पग की पगतरी, मेरे तनु को चाम ॥

वै० सं०, दोहा—३७

तुलसी भगत सुपच भलो, भजै रैनि दिन राम ।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम ॥

वै० सं०, दोहा—३८

तुलसी भलो सुसंग तें, पोच कुसंगति होइ ।
नाउ, किन्नरी, तीर, असि, लोह बिलोकहू लोई ॥

दो०, दोहा—३५८

तुलसी यह तनु खेत है, मन वच कर्म किसान ।
पाप पुन्य द्वै बीज है, बवै सो लवै निदान ॥

वै० सं०, दोहा—५

तुलसी रामनाम सम मित्र न आन ।
जो पहुँचाव रामपुर तनु अवसान ॥

बरवै०—६७

तेहि समाज कियो कठिन पन जेहि तौल्यो कैलास ।
तुलसी प्रभु-महिमा कहो, सेवक को विस्वास ॥

दो०, दोहा—१६७

द

दानव दनुज बड़े महामूढ़ मूड़ चढे ।

वि०, पद—२४९

दुखी सिय पिय-विरह तुलसी, सुखी सुत-सुख पाइ ।
आँच पय उफनात सीचत सलिल ज्यों सकुचाइ ॥

उत्तरकाड, गी०, पद—३६

धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्रवर सोइ ।
तुलसी जो रामहिं भजै, जैसेहु जैसेहु होइ ॥

वै० सं०, दोहा—३६

न

नहिं तनु सम्हारहिं, छवि निहारहिं निमिष-रिपु जनु रन जए ।

जानकी मं०, छंद—१५३

नातो नाते राम के, राम सनेह सनेहु ।
तुलसी माँगत जोरि कर जनम जनम सिव देहु ॥

दो०, दोहा—८९

नाम सत्रुसूदन सुभग, सुखमा-सील निकेत ।
सेवत सुमिरत सुलभ सुख, सकल सुमंगल देत ॥

रा० प्र०, चतुर्थ सर्ग, सप्तक-४, दोहा—६

निगम अगम, साहब सुगम, राम साँचिली चाह ।
अबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माँह ॥

दो०, दोहा—८०

प

पय नहाइ, फल खाइ, जपु रामनाम षट मास ।
सगुन सुमंगल सिद्धि सब, करतल तुलसीदास ।।

रा० प्र०, सप्तम सर्ग, सप्तक-४, दोहा–७

पय नहाइ फल खाहु परिहरिय आस ।
सीयराम–पद सुमिरहु तुलसीदास ।।

बरवै०–४४

फ

फिरी दोहाई राम की, गे कामादिक भाजि ।
तुलसी ज्यों रवि के उदय, तुरत जात तम लाजि ।।

वै० स०, दोहा–६१

ब

बध्यो बधिक परयो पुन्यजल, उलटि उठाई चोंच ।
तुलसी चातक-प्रेमपट मरतहु लगी न खोंच ।।

दो०, दोहा–३०२

बालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज ।
तुलसी राम कृपालु को बिरुद गरीबनिवाज ।।

दो०, दोहा–१५८

बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ ।
ए अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ ।।

बरवै०–३६

भ

भरत सरिस को रामु सनेही । जगु जप रामु रामु जपु जेही ।।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२१८

भवभुवंग तुलसी-नकुल डसत ज्ञान हरि लेत ।
चित्रकूट इक औषधी, चितवत होइ सचेत ।।

दो०, दोहा–१८०

भूमिनंदिनी-पद-पदुम सुमिरत सुभ सब काज ।

रा० प्र०, षष्ठ सर्ग, सप्तक-४, दोहा–५

म

मकर, उरग, दादुर, कमठ, जलजीवन जलगेह ।
तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह ॥

दो०, दोहा०–३१८

महा सांति जल परसि कै, सांत भए जन जोइ ।
अहं-अगिनि ते नहि दहै, कोटि करै जो कोइ ॥

वै० सं०, दोहा–५४

माय बाप गुरु स्वामि राम कर नाम ।
तुलसी जेहि न सोहाइ ताहि बिधि वाम ॥

बरवै०–५०

मुए, मरत, मरिहै सकल घरी पहर के बीच ।
लही न काहू आजु लौं गीधराज की मीच ॥

दो०, दोहा–२२४

र

रसना साँपिन, वदन बिल, जे न जपहि हरिनाम ।
तुलसी प्रेम न राम सों ताहि विधाता वाम ॥

दो०, दोहा–४०

राम चरित राकेसकर सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन-कुमुद चकोर चित, हित विसेष बड़ लाहु ॥

दो०, दोहा–१९३

राम दूरि माया वढ़ति, घटति जानि मन माँह ।
भूरि होति रवि दूरि लखि सिर पर पग तर छाँह ॥

दो०, दोहा–६९

रामनाम-जप जापकहिँ, तुलसी अभिमत देत ॥

रा० प्र०, द्वितीय सर्ग, सप्तक–५, दोहा–७

राम नाम कलि कामतरु, सकल सुमंगल कंद ।
सुमिरत करतल सिद्धि जग, पग पग परमानंद ॥

रा० प्र०, तृतीय सर्ग, सप्तक–४, दोहा–४

रामनाम को अंक है, सब साधन है सून।
अंक गए कछु हाथ नहिं, अंक रहे दसगून॥

दो०, दोहा–१०

रामनाम पर राम तें, प्रीति प्रतीति भरोस।
सो तुलसी सुमिरत सकल, सगुन सुमंगल कोस॥

रा० प्र०, द्वितीय सर्ग, सप्तक–४, दोहा–७

राम वाम दिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर॥

वै० सं०, दोहा–१

राम वास वन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा।

मानस, द्वितीय सोपान, दोहा–२३५

रामरमनी को वट कलि कामतरु है॥

उ० कां०, क०–१३६

राम रूप निरखि हरषे हिय हनूमान,
मानो खेलवार खोली सीसताज बाज की॥

लं० कां०, क०–३०

राम-सुकीरति-कामिनी, तुलसी-करतब केस।

दो०, दोहा–१६२

राम सो न साहिब, न कुमति कटाइको।

उ० कां०, क०–२२

रावन रिपु के दास तें कायर करहिं कुचालि।
खर दूषन मारिच ज्यों, नीच जाहिंगे कालि॥

दो०, दोहा–१४५

रूपरासि जेहि ओर सुभाय निहारइ।
नील-कमल-सर-श्रेनि मयन जनु डारइ॥

जानकी मं०, छंद–६२

रैनि को भूषन इंदु है, दिवस को भूषन भानु।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान॥

वै० सं०, दोहा–४३

स

सकरप्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महँ वास॥

दो०, दोहा–१०१

सकल सिद्धि कर-कमल-तल, सुमिरत रघुवर दूत ॥

रा० प्र०, षष्ठ सर्ग, सप्तक–४, दोहा–१

सकुचहिं वसन विभूषन परसत जो वपु।

पार्वती म०, छंद–३६

सत समाज तब होइ जब, रमा राम अनुकूल॥

रा० प्र०, द्वितीय सर्ग, सप्तक–६, दोहा–६

सत्रु न काहू करि गनै, मित्र गने नहि काहि।
तुलसी यह मत सत को, बोलै समता माहि॥

वै० सं०, दोहा–१३

सत्रुसमन पद पकरुह, सुमिरि करहु सब काज।
कुसल खेम कल्यान सुभ, सगुन सुमंगल साज॥

रा० प्र०, पंचम सर्ग, सप्तक–४, दोहा–२

सधन चोर मग मुदित मन, धनी गही ज्यों फेंट।
त्यों सुग्रीव विभीषनहिं भई भरत की भेंट॥

दो०, दोहा–२०७

सभा सभासद निरखि पट पकरि, उठायो हाथ।
तुलसी कियो इगारहों वसनवेष जदुनाथ॥

दो०, दोहा–१६८

सम कचन काँचै गिनत, सत्रु मित्र सम दोइ।
तुलसी या ससार में, कहत संतजन सोइ॥

वै सं०, दोहा–३१

सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद विधि कीन्ह।
ससि पोषक सोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह॥

दो०, दोहा–३७२

सरल वरन भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि।
तुलसी सरलै संतजन, ताहि परी, पहिचानि ।।

वै० सं०, दोहा–८

साधु सुसील सुमति सुचि सरल सुभाव।
राम नीतिरत, काम कहा यह पाव ? ।।

बरवै० दोहा–७

सिला सु तिय भइ, गिरि तरे, मृतक जिए जग जान।
राम अनुग्रह सगुन सुभ सुलभ सकल कल्यान ।।

दो०, दोहा–१७४

सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम।
तुलसी रहिए एहि रहनि, संत जनन को काम ।।

वै० सं०, दोहा–१७

सुधा, साधु, सुरतरु, सुमन, सुफल सुहावनि बात।
तुलसी सीतापति-भगति, सगुन सुमंगल सात ।।

रा० प्र०, सप्तम सर्ग, सप्तक–३, दोहा–१

सुमिरहु तुलसी ताहि तू जाको मारुति दूत ।।

दो०, दोहा–१७६

सुमिरि सुमित्रा नाम जग, जे तिय लेहिं सुनेम।
सुवन लखन रिपुदवनु से, पावहिं पति-पद-प्रेम ।।

रा० प्र०, सप्तम सर्ग, सप्तक–३, दोहा–४

सुरगुरु गुरु सिय राम गनराउ गिरा उर आनि।
जो कुछ करिय सो होइ सुभ, खुलहिं सुमंगल खानि ।।

रा० प्र०, प्रथम सर्ग, सप्तक–१–दोहा–५

सूधे मन, सूधे वचन सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर-प्रेम-प्रसूति ।।

दो०, दोहा–१५२

सोइ ज्ञानी सोइ गुनी, जन, सोई दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित भई, रागद्वेष की हानि ।।

वै० सं०, दोहा–५६

स्याम-सुरभि-पय विसद अति गुनद करहिं तेहि पान ।
गिरा ग्राम्य सियराम-जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥

दो०, दोहा–१९६

हृदय-घाउ मेरे पीर रघवीरै ।

लंकाकांड, गी०, पद–१५

मराल आयो सुफलकसुत लै गयो छीर नीर बिलगाई ॥

कृ० गी०, पद–२५

❀
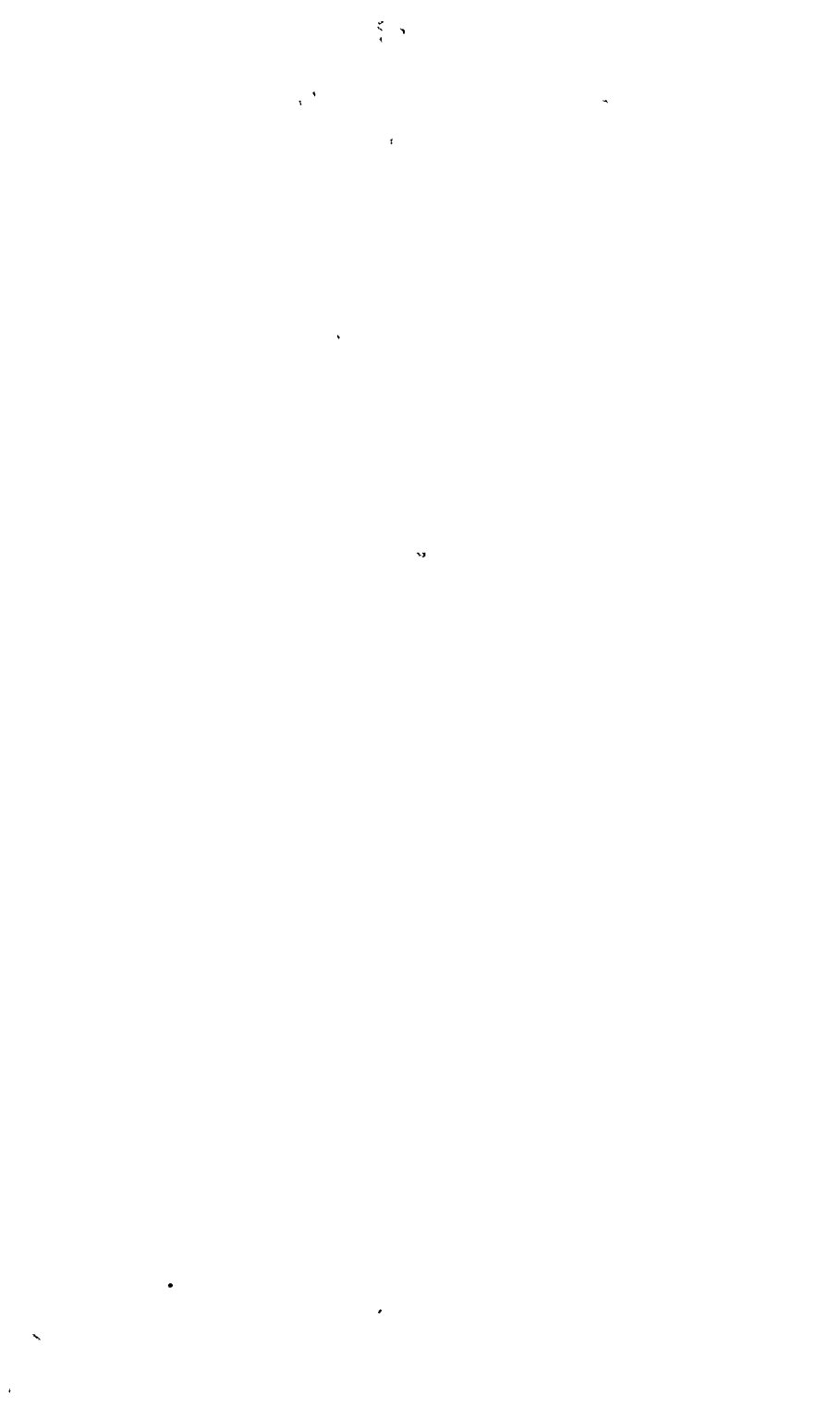
अवांतर कथाएँ

अंजनी

दूत रामराय को, सपूत पूत पौन को,
तू अंजनी को नंदन, प्रताप भूरि भानु सो।

हनुमानबाहुक, ८।

अंजना या अंजनी हनुमान् की माता का नाम है। इनके पति का नाम केसरी था; किंतु हनुमान् की उत्पत्ति पवन से बतलाई जाती है। एक बार किसी कारणवश महादेव का वीर्यपात हो गया, जिसे वायु ने उड़ाकर अंजनी के कान में फूँक दिया और इस प्रकार गर्भ रह गया, जिससे हनुमान् की उत्पत्ति हुई।

अंधक

अंधक रिपु जन सुखदाई।

अंधक एक राक्षस का नाम है। जिसकी उत्पत्ति पार्वती के पसीने से मानी जाती है। हिरण्याक्ष के घोर तप करने पर शंकर जी ने प्रसन्न होकर इसे यही पुत्र दिया था। इसके सहस्र बाहु, सहस्र शिर तथा दो सहस्र नेत्र थे। इतने नेत्र रहने पर भी वह अंधों की तरह झूम झूम कर चलता था इसी से इसका नाम अंधक पड़ा था। पार्वती की अवज्ञा करने के कारण शिव से इसका घोर युद्ध हुआ। इसके रक्त की एक एक बूंद से जब इसी के समान राक्षस उत्पन्न होने लगे तब शिव ने एक मातृका उत्पन्न की जो गिरे हुए रक्त को पी लेती थी, पर उसके तृप्त होने पर फिर नये अंधक उत्पन्न होने लगे और उन्हे विवश होकर विष्णु की सहायता लेनी पड़ी। विष्णु की एक युक्ति से सारे अंधक विलीन हो गए और शिव ने मुख्य अंधक को त्रिशूल पर लटका दिया। आकुल होकर जब उसने शिव की स्तुति करनी आरंभ की तो उन्होने उसे गणाधिपत्य प्रदान किया। मतांतर से यह कश्यप और दिति का पुत्र था। देवताओ ने जब दिति के समस्त पुत्रो का वध कर दिया। तब उसने एक अवध्य पुत्र के लिये भगवान् से प्रार्थना की जिसके फलस्वरूप अंधक की उत्पत्ति हुई शिव तथा विष्णु के अतिरिक्त किसी अन्य देवता के द्वारा पराजित न होने का इसे वर था। यह इतना अत्याचारी हुआ कि इसके अत्याचार से त्रैलोक्य काँप उठा। इसने उर्वशी इंद्रावती आदि अप्सराओं का हरण कर लिया तथा नंदनकानन से पारिजात लाकर अपने यहाँ रख लिया। अंत मे बड़ी कठिनता से यह शिव के हाथों मारा गया।

अंबरीष

सुधि करि अंबरीष दुरवासा ।
भे सुर सुरपति निपट निरासा ।।

—मानस, दो० २

अयोध्या के एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा । विष्णु का रामावतार इन्हीं के वंश मे हुआ था । ये इक्ष्वाकु की चौबीसवीं पीढी मे थे और गंगा के प्रवर्तक प्रसिद्ध राजा भगीरथ के प्रपौत्र थे । ये बड़े पराक्रमी थे। कहा जाता है कि इन्होने १० लाख राजाओं को युद्ध में पराजित किया । अंबरीष उच्च कोटि के विष्णुभक्त थे । सारा राज्यभार कर्मचारियों को सौंपकर अधिकांश समय हरिभजन मे ही व्यतीत किया करते थे ।

अंशुमान

अंशुमान—प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा सगर के पौत्र तथा असमंजस के पुत्र थे। असमंजस, जो विदर्भकन्या केशिनी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, बड़े होने पर नितांत अयोग्य तथा अत्याचारी राजा हुए जिससे तंग आकर सगर ने इनका देश निकाला कर दिया किंतु इसके पूर्व ही वे अंशुमान नामक पुत्र छोड गए थे जो पिता के विपरीत योग्य पुत्र हुआ । इंद्र ने राजा सगर के अश्वमेध का घोड़ा जब चुरा लिया और उसकी खोज में सगर के ६० हजार पुत्र जब कपिल के शाप से भस्म हो गए तो अंशुमान ने ही उनका पाताल मे पता लगाया और अपने सद्व्यवहार तथा बुद्धिकौशल से महर्षि कपिल को प्रसन्न कर अश्व का उद्धार किया और पितामह का यज्ञ पूरा कराया । अंशुमान की प्रार्थना पर महर्षि कपिल ने उन्हें यह भी वरदान दिया कि उनके पौत्र भगीरथ द्वारा गंगा का मर्त्यलोक मे अवतरण होगा और उन्हीं के द्वारा सगर के ६० हजार पुत्रों का भी उद्धार होगा।

दे० सगर, भगीरथ, दिलीप

अकंपन

कुमुख अकंपन कुलिस रद, धूमकेतु अतिकाय ।
एक एक जग जीति सक, ऐसे सुभट निकाय ॥

—मानस, सो०—१

अकंपन रावण का एक सेनापति था। इसके पिता का नाम सुमाली तथा माता का नाम केतुमाली था। यह संबंध मे रावण का मामा लगता था। प्रहस तथा धूम्राक्ष इनके दो भाई थे। इनकी मृत्यु युद्ध मे हनुमान के द्वारा हुई थी।

अक्षय कुमार

पुनि पठवा तेहि अच्छकुमारा।
चला संग लै सुभट अपारा॥ —मानस, सो०—५

अक्षयकुमार रावण तथा मंदोदरी के कनिष्ठ पुत्र का नाम है जिसकी मृत्यु अशोकवाटिका मे सीता की खोज के लिये आए हुए हनुमान् के द्वारा हुई थी।

अगस्त्य

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना।
नाम सुतीछन रति भगवाना॥ —मानस, सो० ३

अगस्त्य ऋग्वेद की कई ऋचाओं के रचयिता एक ऋषि थे। उर्वशी के सौंदर्य को देखकर मित्र और वरुण के स्खलन से इनकी और वसिष्ठ की उत्पत्ति हुई। भाष्यकार सायण के कथनानुसार इनकी उत्पत्ति घड़े से हुई जिससे इन्हे कलसी-सुत, कुंभसंभव और घटोद्भव आदि भी कहा गया है। पिता और माता को ध्यान में रखते हुए इन्हे मैत्रावरुणि और और्वशीय भी कहा गया है। जन्म के समय ये अंगूठे के बराबर लंबे थे, इसलिये इन्हें मान भी कहा गया। मतांतर से ये वसिष्ठ के बहुत बाद के हैं और प्रजापतियों में नहीं गिने जाते। कहा जाता है कि विंध्य पर्वत को दंडवत करने के लिये इनके आगे झुकना पड़ा। अगस्त्य नाम पड़ने का कारण इस पर्वत का झुकना ही है। इसी चमत्कार के कारण इन्हें

विंध्यकूट भी कहा गया। देवासुर संग्राम में जब दानव सागर में जाकर छिप गए और खुद सागर भी इससे क्षुब्ध था, तो ये सागर को ही पी गए और इस कारण पीताब्धि या समुद्रचुलुक कहलाए। बाद में इनकी घोषणा सप्तर्षियो मे होने लगी। पुराणों मे इन्हे पुलस्त्य का पुत्र कहा गया है। ये ब्रह्मपुराण के कहनेवालो मे से माने गए हैं। इन्होंने औषधियों पर भी लिखा है। महाभारत मे इनकी पत्नी के विषय मे यह कथा है कि इनके पूर्वज उल्टे टाँग दिए थे। उन्होंने इनसे कहा कि उनकी मुक्ति तभी होगी जब इनके पुत्र पैदा हो। तब इन्होने विभिन्न पशुओ के सुंदरतम अवयवों के सौंदर्य से एक कन्या की रचना की और उसे विदर्भराज के यहाँ चुपके से पहुँचा दिया जहाँ वह राजपुत्री की भाँति पाली पोसी गई। बड़ी हो जाने पर अगस्त्य ने राजा से इसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। इच्छा न रहते हुए भी राजा को व्याहना पड़ा। रामायण मे इनका महत्व बहुत बढ़ गया है। ये कुंजर पर्वत में एक कुटी में रहते थे जो विंध्य के दक्षिण बड़े रमणीक प्रदेश में थी। ये दक्षिण के साधुओ मे प्रमुख थे इनका राक्षसो पर इतना अधिकार था कि वे उत्तर की ओर आँख नही उठा सकते थे।

अग्नि

प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें। —मानस, सो०—१

अग्नि एक विशेष शक्ति के प्रतीक स्वरूप स्वीकृत देवता हैं। इनकी अभिव्यक्ति आकाश में सूर्य, बादलो में विद्युत् तथा पृथ्वी पर अग्नि साधारण रूप मे मानी गई है। वेदो मे इनके संबध में बहुत सी ऋचाएँ मिलती हैं। ऋग्वेद मे परम पुरुष के मुख से इनका जन्म माना गया है। यह भी कहा गया है कि प्रत्येक घर मे इनका निवास माना जाता है। अग्नि युवक हैं, बुद्धिमान् है, घर के स्वामी हैं तथा हमारे बहुत निकट सबंधी हैं साथ ही इन्हें विशेष कृपाशील तथा सभी का भाई, पुत्र, पिता तथा पालक कहा गया है। विवाह के अवसर पर इनका आवाहन संभवतः इन्ही कारणों से किया जाता था और आज भी हिंदू घरो में किया जाता है। इनकी गणना वायु अथवा इंद्र और सूर्य के साथ वैदिक त्रिदेवों मे भी होती थी। अग्नि पृथ्वी के अधिष्ठाता थे; वायु, हवा के तथा सूर्य आकाश के। आगे के साहित्य में इन्हें दक्षिणपूर्व

के कोणके दिक्पाल के रूप में भी चित्रित किया गया है। पूर्वकाल में अग्नि में लोककल्याण की भावना की प्रधानता स्वीकृत हुई थी, किंतु बाद की इनकी विनाशकारी प्रवृत्तियों को देखकर इनमे भयंकर भावना का भी विकास हो गया।

पुराणो के आधार पर अग्नि को शाडिल्य नाम के एक सप्तर्षि का प्रपौत्र तथा अग्निरस का पुत्र भी कहा जाता है। महाभारत मे अग्नि अपने प्रति समर्पित होनेवाली सामग्री को उदरस्थ करने के कारण अजीर्ण रोग से पीड़ित मिलते है और खांडव वन को औषधि स्वरूप ग्रहण करके अपने को निरोग करना चाहते है। इंद्र के विरोध के होते हुए भी कृष्ण तथा अर्जुन की सहायता से इन्हें अपने कार्य मे सफलता मिलती है। पूर्ण नीरोग होकर अपने सहायकों मे कृष्ण को इन्होने कौमोदकी गदा और एक शक्ति दी और अर्जुन को गांडीव धनुष दिया था। विष्णुपुराण मे इन्हें ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र और अभिमानी कहा गया है। इनकी स्त्री का नाम स्वाहा मिलता है जिससे इनके पावक, पवनमान तथा सुचि तीन पुत्र हुए और इनसे उनचास प्रपौत्र। वायुपुराण में उन्हे ही अग्नि के उनचास रूपों मे स्वीकार किया गया है। इनकी रूपरेखा के सबध मे कहा जाता है कि ये श्याम वस्त्रो से आवृत्त रहते है। ये चतुर्हस्त है और इनके एक हाथ मे जाज्वल्यमान माला रहती है। सप्त पवन इनके रथ के चक्रों मे स्थित माने जाते है तथा उसके अश्वों का वर्ण रक्तिम है। इनके वाहन के लिये अज का भी उल्लेख मिलता है।

अजामिल

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढे।

—कवितावली, २१५

अजामिल कन्नौज निवासी एक ब्राह्मण थे इन्होंने न तो आजीवन कोई पुण्य कार्य ही किया न ईश्वराराधन ही। इनके पुत्र का नाम नारायण था जो इनको बहुत प्रिय था। कहते है मृत्यु के समय इन्होंने अपने पुत्र का नाम लेकर बुलाया। 'नारायण' भगवान् के नाम का एक पर्याय है। इस तरह अंतिम समय मे नारायण नाम का उच्चारण करने से इनकी सद्‌गति हो गई। भक्तो ने भगवान् के नाम-माहात्म्य के सिलसिले मे अजामिल का प्रायः सर्वत्र उल्लेख किया है।

अतिकाय

कुमुख अकंपन कुलिसरद, धूमकेतु अतिकाय । मानस, सो०–६

अतिकाय रावण के पुत्रों में से एक था। अत्यंत स्थूल होने के कारण इसका नाम अतिकाय पड़ गया था। इसने घोर तपस्या करके ब्रह्म जी से दिव्य रथ तथा सुरों और असुरों द्वारा अवध्य होने का वर प्राप्त कर लिया था। इसका वध लक्ष्मण जी के हाथ हुआ था, जो न देवता थे न असुर।

अत्रि

अत्रि के आश्रम जब प्रभु गएऊ ।
सुनत महामुनि हरषित भयऊ ।। —मानस, सो० ३

अत्रि अनेक वैदिक ऋचाओं के कर्ता एक ऋषि। प्रायः अग्नि, इंद्र और विश्वदेव संबंधी श्रुतियों में इनका नाम मिलता है। पौराणिक काल तक आते आते इनकी गणना दस प्रजापतियों में होने लगी और ये ब्रह्मा के मानस पुत्र माने जाने लगे। दक्ष की पुत्री अनसूया इनकी पत्नी थी जिनने पति के साथ पुत्र की कामना से त्रिदेवों की बड़ी आराधना की थी। उनके वरदान के फलस्वरूप विष्णु के अंश से दत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो अपने ज्ञान के कारण 'दत्तात्रेय' नाम से अवतार पद को प्राप्त हुआ था। इसी प्रकार ब्रह्मा के अंश से चंद्रमा और रुद्र के अंश से दुर्वासा की उत्पत्ति हुई। रामायण के अनुसार इनका आश्रम चित्रकूट के दक्षिण में स्थित था जहाँ राम और सीता ने वनवास के समय इनका दर्शन किया था।

अनंग

अब ते रति तव नाथ कर होइहि नाम अनंग —मानस–१

अनंग का शाब्दिक अर्थ अंगरहित है। यह कामदेव का एक नाम है। कामदेव के अनंग नामकरण की कथा इस प्रकार है। एक बार तारक असुर के अत्याचारों से देवता बहुत भयभीत हो गए थे। देवराज इंद्र भी उसके सामने जाने का साहस नहीं कर सकते थे। अंत में ब्रह्मादि देवगणों ने विचार करके यह निश्चित किया कि शंकर का होनेवाला पुत्र कार्तिकेय ही देवसेना का नायक होकर तारक का संहार कर सकता है। किंतु महादेव जी उस समय सती की मृत्यु हो जाने के कारण हिमालय पर घोर तपस्या में लीन बैठे थे।

उनकी यह तपस्या बिना भंग हुए कार्तिकेय की उत्पत्ति किसी प्रकार संभव नहीं थी इसलिये देवताओं ने कामदेव से उनकी तपस्या भंग करने के लिये कहा। कामदेव को लोककल्याण के लिये उनकी आज्ञा का पालन करना पड़ा। उसने हिमालय पर पहुँचकर देवदारु की छाया मे लीन महादेव जी पर अपने पुष्पबाण का प्रहार किया। महादेव जी की तपस्या तो उससे भंग हो गई किंतु उनका तृतीय नेत्र खुल जाने के कारण कामदेव भस्म हो गए। देवता रहने के कारण जलने पर भी बचे रहे किंतु अनग रहकर।

अनंत

जय अनंत जय जगदाधारा। —मानस, सो०—६

अनंत शेषनाग का एक पर्याय है। ये अष्टकुली महासर्पों में से एक है जो नागों के राजा तथा पाताल के अधिपति थे। इनके शरीर को शय्या बनाकर विष्णु महाप्रलय के बाद सोते है। इसी से उन्हे अनंतशयन कहा जाता है। इनके फणों की संख्या एक सहस्र कही जाती है, जिनपर स्वर्ग, नर्क, सप्तपातालो सहित सारा ब्रह्माड टिका हुआ है। दशरथ के पुत्र लक्ष्मण तथा नंद के पुत्र बलराम इनके अवतार माने जाते है। बहुत से विद्वान् पौराणिक कथाओं के आधार पर अनत शेष को अनंत काल का प्रतीक मानते है। कहीं कही वासुकि और शेष दो भिन्न नाग माने गए है। कश्यप इनके पिता तथा और कद्रू इनकी माता थीं। इनकी स्त्री का नाम अनन्तशीर्पा था। 'अनंत चतुर्दशी' नामक त्योहार इन्ही के उपलक्ष्य में मनाया जाता है जो भादों महीने के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को पड़ता है। वासुकी, गोनस आदि इनके बहुत से पर्याय है। दे० 'वासुकी तथा शेष'।

अनसूया

अनसूया के पद गहि सीता। —मानस, सो० ३

अनसूया दक्ष की चौबीस कन्याओं मे से एक तथा अत्रि ऋषि की पतिव्रता पत्नी थी। मतातर से महर्षि कर्दम तथा देवहूति की एक कन्या की एक कन्या का नाम भी यही है। इनके पातिव्रत की अनेक कहानियाँ मिलती हैं। मानस में वनवास के प्रसंग में अनसूया द्वारा सीता को पातिव्रत का बड़ा शिक्षापूर्ण उपदेश दिलाया गया है।

अपर्णा

उमहिं नाम तब भएउ अपर्णा।

—मानस, सो०—१

अपर्णा—हिमालय की ज्येष्ठ कन्या तथा शिव की अर्द्धांगिनी हैं। शिव को वररूप में पाने के लिये इन्होंने इतना कठिन तप किया कि पेड़ की पत्तियों तक का आहार छोड़ दिया। इसी से इनका नाम अपर्णा था। इनकी उग्र को देखकर इनकी माता ने निवारणार्थ 'उ—मा' (ओ—मत) कहा था जिससे इनका एक नाम उमा भी पड़ गया। इनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने इन्हें अपनी अर्द्धांगिनी के रूप में स्वीकार किया।

अरुंधती

अरुंधती कर्दम मुनि की कन्या तथा वसिष्ठ की पत्नी। महाभारत में एक कथा आती है कि अत्यंत निष्ठावान् वसिष्ठ के प्रति भी अरुंधती के मन में सदैव उनके दुश्चरित्र होने की आशंका बनी रहती थी। इसी पाप से उनकी प्रभा धूमारुण की भाँति मलीन पड़ गई और ये कभी दृश्य तथा कभी अदृश्य रहने लगी। आकाशमंडल में सप्तर्षिमंडल में वसिष्ठ के निकट ही अरुंधती की स्थिति है। कहा जाता है कि मृत्यु आने पर लोगों को यह नक्षत्र दिखाई नहीं पड़ता। विवाह में सप्तपदी परिक्रमा के बाद वरवधू को अरुंधती नक्षत्र का दर्शन कराया जाता है। अरुंधती के ही आधार पर 'अरुंधती दर्शन न्याय' की भी कल्पना की गई है।

अर्जुन

अर्जुन पांडु के तृतीय क्षेत्रज पुत्र थे। प्रथम दो क्रमश: युधिष्ठिर और भीम थे। इनकी माता का नाम कुंती था जो पंच कन्याओं में से एक थीं। उसने दुर्वासा द्वारा विरचित मंत्र से इंद्र का आह्वान किया था और उन्हीं के सहवास से अर्जुन की उत्पत्ति हुई थी। अत: अर्जुन इंद्र के ही औरस पुत्र हुए। ये धनुर्वेद में पारंगत गुरु द्रोण के प्रधान एवं सर्वप्रिय शिष्य थे। बाणविद्या के क्षेत्र में महारथी कर्ण इनके एक मात्र प्रतिद्वंद्वी थे। इसी कला के बल से इन्होंने स्वयंवर में मत्स्यभेद करके द्रौपदी से विवाह किया जो नियति से पाँचो पांडवों की वधू बनी। परंतु अर्जुन से उसका प्रेम अधिक होना स्वाभाविक था। अपने बारह वर्ष के गुप्तवास में अर्जुन ने परशुराम से भी अस्त्र शिक्षा प्राप्त की। इसी बीच उलूपी नामक एक नागकन्या से उनका प्रेम हो गया जिससे इरावत नाम का

पुत्र उत्पन्न हुआ। मणिपुर के राज चित्रभानु की पुत्री चित्रागदा से भी उन्होने विवाह किया था, जिससे वभ्रुवाहन की उत्पत्ति हुई जो निस्संतान चित्रभानु के दिवंगत होने पर उनका उत्तराधिकारी बना। अर्जुन का विवाह श्रीकृष्ण की भगिनी सुभद्रा से भी हुआ था जिसका होनहार पुत्र अभिमन्यु चक्रव्यूह से अकेला सप्तमहारथियों के द्वारा निर्दयता से मारा गया था। द्रौपदी के गर्भ से जो पुत्र पैदा हुआ था वह अश्वत्थामा के द्वारा महाभारत के युद्ध मे अतिम दिन वीरगति को प्राप्त हुआ। अर्जुन के पराक्रम से प्रसन्न होकर कई देवताओ ने उन्हें दिव्य अस्त्र प्रदान किए थे। युधिष्ठिर के द्वारा जुए मे साम्राज्य गँवा देने पर अर्जुन तपस्या करने हिमालय पर चले गए जहाँ उन्हे किरातरूपधारी शिव से युद्ध करना पड़ा किंतु जब उनको उनके असली रूप का ज्ञान हुआ तो इन्होने शिवजी का अभिनंदन किया जिससे प्रसन्न होकर शिवजी ने इन्हे पाशुपत नामक अस्त्र प्रदान किया।

इसी प्रकार इंद्र से भी इन्हें कई युद्धास्त्र प्राप्त हुए थे। कृष्ण की सहायता से खांडव वन जलाकर अजीर्ण रोग से ग्रस्त अग्निदेव को भी इन्होने प्रसन्न किया था। उनकी कृपा से आग्नेयास्त्र और गांडीव की प्राप्ति हुई थी जिसकी टकार के श्रवणमात्र से शत्रुओं के छक्के छूट जाते थे। अमरावती मे इंद्र के साथ विहार करते हुए उर्वशी इन पर मोहित हो गई थी, किंतु उसकी कामवासना सतुष्ट करने में असमर्थता प्रकट करने के कारण उसने इनको नपुंसक होने तथा स्त्री के बीच नृत्य करने का शाप दे दिया था। फलस्वरूप अज्ञातवास के समय 'बृहन्नला' नाम से इन्हे विराट की राजकुमारी उत्तरा को नृत्य की शिक्षा भी देनी पड़ी थी। अत मे कौरवों के विरुद्ध कुरुक्षेत्र में पाडवों का कौरवों से घोर सग्राम हुआ जिसमे श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने। युद्ध में अर्जुन द्वारा मोह प्रकट करने पर कृष्ण ने उन्हे सुप्रसिद्ध भगवद्गीता का उपदेश दिया। युद्धपक्ष में इन्होंने शत्रुओ के सहस्रों योद्धाओ का वध किया, जिनमें भीष्म, सुशर्मन्, जयद्रथ, कर्ण तथा भगदत्त जैसे महारथी थे। युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर ने विराट् अश्वमेध यज्ञ किया जिसके उपलक्ष्य से अर्जुन ने दिग्विजय यात्रा करके अनेक राष्ट्रों को पराजित किया। अन मे श्रीकृष्ण द्वारा आमन्त्रित किए जाने पर वे द्वारिका गए। यादवो का नाश होने पर उन्होने हिमालय की ओर प्रस्थान किया और वहीं उनका स्वर्गवास हुआ। गुडाकेश, धनजय, विष्टु, किरीटिन्, पाकशासनि, फाल्गुन, सव्यसाचिन्, पार्थ, विभत्सु तथा श्वेतवाहन आदि उनके नाम हैं।

———

अहल्या

गौतम नारी स्राप बस उपलदेह धरि धीर।

—मानस, -सो०

अहल्या प्रसिद्ध पंचकन्याओं मे से पहली थीं। इसके पिता का नाम मुद्गल था। मतातर मे यह मेनका तथा वृद्धाश्व की पुत्री थी। अन्य मत मे यह ब्रह्मा की मानस पुत्री थीं। इनका विवाह गौतम ऋषि के साथ हुआ था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार ब्रह्मा ने अहल्या का निर्माण ससार की सुदरतम वस्तुओ का सार लेकर किया था और उसे महर्षि गौतम को सौप दिया था। देवराज इंद्र ने इनपर आसक्त हो चद्रमा की सहायता से छद्म वेश मे इनके साथ भोग किया। सारा भेद खुलने पर महर्षि ने दोनो को शाप दिया जिससे इद्र नपुसक और सहस्त्र योनि हुआ तथा अहल्या पाषाणमयी (मतांतर मे अदृश्य)। इंद्र के शाप का निराकरण देवताओ के यत्न से हुआ। उन्हे मेष का पुंसत्व प्राप्त हुआ और सहस्त्रयोनि सहस्त्रनेत्र मे परिवर्तित हो गए। अहल्या द्वारा वहुत पश्चात्ताप करने पर ऋषि ने उसके शाप का स्वय निराकरण किया कि त्रेता मे श्री विष्णु के अवतार राम के चरण-स्पर्श से उनका उद्धार होगा। समय आने पर जनक-पुर जाते समय राम की चरण-रज के स्पर्श से (मतातर से दर्शन प्राप्त कर) अहल्या पुन' अपना पूर्वरूप पाकर राम का यशोगान करती हुई पतिलोक में चली गई। कुमारिल भट्ट के अनुसार यह उपाख्यान एक रूपक मात्र है। अहल्या और इद्र क्रमश. रात्रि और सूर्य के प्रतीक है। मतांतर मे अहल्या अनुर्वरा भूमि अथवा जड़बुद्धि का प्रतीक है

आदित्य

आदित्य अदिति के पुत्र और एक प्रसिद्ध वैदिक देवता हैं। चाक्षुष मन्वंतर मे इनका नाम त्वष्टा था। वैवस्वत मन्वतर मे ये आदित्य कहलाए। कालातर में इन्हें सूर्य का पर्याय माना जाने लगा। पहले आदित्यो की संख्या ६ ही थी जो क्रमश. मित्र, अर्यमन्, भग, वरुण, दक्ष तथा अश के नाम

से प्रसिद्ध थे। वेदोत्तर काल में प्रत्येक मास के लिये एक एक आदित्य की कल्पना हुई। तैत्तिरीय ब्राह्मण मे भी आठ आदित्यों के नाम आते हैं। (१) अंश, (२) भग, (३) धातृ, (४) इंद्र, (५) विवस्वन्, (६) मित्र (७) वरुण तथा (८) अर्यमन्। मतांतर से आठवे आदित्य अदिति के पुत्र मार्तंड थे। आदित्य वास्तव में एक देववर्ग का नाम था जिसके प्रमुख विष्णु थे।

उच्चैःश्रवा

उच्चैःश्रवा इंद्र के एक श्वेत अश्व का नाम है जो समुद्रमंथन के १४ रत्नों में से एक था। इसकी कीर्ति तथा श्रुति के चारो दिशाओं में व्याप्त होने के कारण इसका नाम उच्चैःश्रवा पड़ा।

उत्तानपाद

नृप उत्तानपाद सुत तासू।
ध्रुव हरि भगत भएउ सुत जासू॥

—मानस, सो० १

ये स्वायंभुव मनु तथा सतरूपा के पुत्र थे। सुरुचि तथा सुनीति नाम की इनकी दो पत्नियाँ थीं जिनसे क्रमशः उत्तम और ध्रुव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। राजा सुरुचि को अधिक चाहते थे। इसी पक्षपात के कारण सुनीति के पुत्र ध्रुव की अकसर अवहेलना करते थे। एक वार उत्तम को पिता की गोद में बैठा देखकर उसे भी पिता की गोद में बैठने की स्पर्धा हुई किंतु सुरुचि की उपस्थिति मे राजा ने ध्रुव का तिरस्कार कर दिया। ध्रुव के कोमल हृदय को इस अपमान से बड़ी ठेस लगी और वे माता के पास जाकर फूट फूट कर रोने लगे। माता ने सदुपदेशों से उन्हें सांत्वना दी। कालांतर मे ध्रुव वन मे तप करने को चले गए और इन्हीं के प्रताप से अंत में उत्तानपाद को ज्ञान हुआ।

उद्धव

उद्धव श्रीकृष्ण के परामर्शदाता एवं सखा थे। कहा जाता है कि यह वसुदेव के भाई देवनाग के पुत्र तथा श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर ब्रज की गोपियाँ जब विरह मे व्याकुल रहती थीं तो कृष्ण ने उन्हे गोपियो को समझाने के लिये भेजा था। इन्होंने गोपियों को निराकार ब्रह्म की उपासना का उपदेश दिया था। श्रीमद्भागवत मे गोपियाँ उनके उपदेश को सुनकर निराकार ब्रह्म की उपासना में साकार कृष्ण को भूल गई थी। किंतु हिंदी कृष्णकाव्यो मे उद्धव स्वयं गोपियों के रंग मे रग जाते हैं और निराकार ब्रह्म को छोड़कर साकार ब्रह्म अपने सखा कृष्ण की उपासना करने लगते हैं।

उपनिषद

वेद पुरान उपनिषद गावा ॥

—मानस, सो०—१

उपनिषद् सस्कृत साहित्य के उन विशेष ग्रंथों का नाम है जिनमे तत्व-चिंतन का सर्वप्रथम प्रयास मिलता है। आत्मा, ब्रह्म, जीव, जगत् आदि गहन प्रश्नो की व्याख्या का मौलिक प्रयास इन्ही के ग्रंथो मे किया गया है और फिर इन्ही से साख्य, वेदात आदि प्रसिद्ध षड्दर्शनो का विकास हुआ है। इन दर्शनों मे जिन तत्वों का विकास किया गया है उनके बीज उपनिषदो मे वर्तमान है। प्राचीनता मे वेदो के बाद ही उपनिषदो का ही स्थान है। धार्मिक दृष्टि से भी इनकी मान्यता वेदो के समकक्ष मानी जाती है किंतु उपनिषदो की सख्या के सबध में बडा मतभेद है।

इनकी सख्या इस समय तक २०० से ऊपर पहुँच चुकी है जिनमे से कुछ लोग केवल चार को ही प्रामाणिक मानते है। विद्यारण्य स्वामी के अनुसार उपनिषदो की संख्या १२ है। सब मिलाकर तत्वचिंतन के कुल चार ही प्रसग ही उपनिषदों मे मिलते है—(१) आत्मा की व्यापकता, (२) आत्मा का देहातरण या पुनर्जन्म ग्रहण (३) सृष्टि तत्व और (४) प्रलय तत्व। छादोग्य, केन ईश, कठ तथा बृहदारण्यक मुख्य उपनिषद माने जाते है।

ऋग्वेद

चार वेदों मे प्रथम तथा मुख्य, वेद का नाम है। यह १० मंडलों मे विभक्त है। इन मंडलो मे ८५ अनुवाक् है। जिनमे एक हजार अट्ठाईस सूक्त है। प्रत्येक मडल के अनुवाक् तथा सूक्तो का विवरण नीचे दिया जा रहा है।—

मंडल सं०	अनुवाक स०	सूक्त स०
१	२४	१९१
२	४	४३
३	५	६२
४	५	५८
५	६	८७
६	६	७५
७	६	१०४
८	१०	१०३
९	७	११४
१०	१२	१९१
—	—	—
कुल १०	८५	१०२८

शौनक के चरणव्यूह के अनुसार ऋग्वेद मे ८ स्थान या भेद है जिनके नाम है : चर्चा, (श्रावक-चर्चक) श्रवणीय, पार, क्रमपाठ, क्रमजटा, क्रमरथ, क्रमशर एवं क्रमदंड। ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ है–आश्वलायनी, सांखायनी, शाकल्या, वास्कला और माडुका। ऋग्वेद की बहुत सी शाखाएँ चरणव्यूह के मत से अप्राप्य हो गई है। इसकी कुल २१ शाखाएँ थी। यज्ञ की विधि और नियमावली के पश्चात् ऋग्वेद के मुख्य दो भाग है जो ऐतरेय ब्राह्मण तथा कौशीतकी या सांख्यायन ब्राह्मण कहे जाते है। पहली शाखा के प्रणेता ऐतरेय तथा दूसरे के कुषीतक ऋषि थे। वेदव्यास ने सर्वप्रथम वेदों का विभाग करके अपने शिष्य पैल को उसकी शिक्षा दी थी। इन्होने उसे दो भागों मे विभक्त करके अपने शिष्य इंद्र प्रमिति तथा वाष्कलि को दे दिया था। वाष्कलि ने अपना भाग चार भागो में करके अपने चार शिष्यो में बाँट दिया था। इस प्रकार ऋग्वेद अनेक शाखा तथा उपशाखा मे विभक्त हुआ जिनमे से

अधिकांश का पता इस समय नहीं है। प्रत्येक वेद ब्राह्मण तथा मंत्र नामक दो मुख्य भागो मे विभक्त है, जिनमे मुख्य भाग मन्त्रो का ही है। इस विभाग मे अग्नि, जल, इंद्र, उषा, सूर्य आदि वैदिक देवताओं को छंदोबद्ध स्तुतियाँ हैं। ब्राह्मणभाग गद्य मे है तथा अपेक्षाकृत बाद का है। इसमें मन्त्रो की व्याख्या, फलमहिमा, दार्शनिक विश्लेषण तथा दृष्टांत के रूप में उपाख्यानों का वर्णन है। ब्राह्मणभाग मे उपनिषद् तथा आरण्यक और जोड़ दिया गया है। भारतीय दर्शनशास्त्र के बीज इन्ही उपनिषदों मे मिलते हैं। इनमे अध्यात्म विद्या तथा आत्मा परमात्मा आदि चिरंतन तात्विक विषयों का निरूपण है।

समस्त वैदिक साहित्य स्थूल रूप मे दो खंडो मे विभक्त किया जा सकता है; १—कर्मकाड और २—ज्ञानकांड। मंत्र तथा सूक्त इत्यादि कर्मकांड और तात्विक विवेचन ज्ञानकाड के अंतर्गत आते है। ब्राह्मण तथा उपनिषदों, का सबंध ज्ञानकाड से ही है। समष्टि रूप से समूचा वैदिक साहित्य 'श्रुति' नाम से प्रसिद्ध है। श्रुति का अर्थ है 'सुना हुआ' अर्थात् जो कुछ ज्ञान ऋषियों से सुना गया वही श्रुति है। मुख्य वेद ऋग्वेद ही है और इसी के आधारभूत यजुष् और साम है। ऋग्वेद के भी मौलिक सूक्त १०१७ ही है जिनमें वालखिल्यो के ११ मत्र और जोड़ने पर १०२८ होते हैं। इनका दूसरा विभाजन अष्टकों के अनुसार है। ये समस्त सूक्त आठ अष्टको तथा उतने ही अध्यायो में उपविभक्त है जिनमे २००६ वर्ग १०,४१७ ऋचाएँ तथा १५३,८२६ पद हैं। मडलो के अनुसार ऋगवेद का विभाजन पहले दिया जा चुका है। कुछ विद्वान् दसवें मंडल को अपेक्षाकृत बाद का मानते है। ऋग्वेद के कुछ मंत्रों मे मुख्यतः दसवें मंडल की कुछ ऋचाओं मे, एक परम आत्मा की सत्ता का धुंधला निरूपण मिलता है। शेष मत्रों मे अग्नि, सूर्य, जल, वायु आदि प्राकृतिक देवताओ की प्रार्थना की गई है। इनमे ऋषियो ने जनसमूह के शुभ, कल्याण तथा उन्नति की प्रार्थना की है और अपने गोधन तथा स्वास्थ्य की वृद्धि तथा रक्षा के लिये प्रार्थनाएँ की है। मुख्य वैदिक देवता अग्नि, सूर्य और इद्र हैं। वस्तुतः अग्नि की उपासना अधिक प्रधान है जिनकी उपासना यज्ञ के रूप में शारीरिक रक्षा, कृषि, वनस्पति, फल तथा गोधन की रक्षा और वृद्धि के लिये होती थी। इद्र की उपासना वर्षा के देवता के रूप मे की गई थी जिससे कृषि की उन्नति होती थी। अन्य आराध्य देवताओं में प्रकाश तथा उष्णता प्रदान

करनेवाले सूर्य, पितृ, वरुण, उषा, अश्विनीकुमार, मरुत, पृथ्वी आदि मुख्य है। प्रत्येक मत्र का एक ऋषि होता था। वशिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज आदि ऐसे ही ऋषि थे। यह कहना बड़ा कठिन है कि ये मंत्र पहले पहल कब लिपिबद्ध किए गए थे। शताब्दियों से इनका पाठ मौखिक ही चलता रहा--पिता पुत्र को कठस्थ करा देता था और वह पुत्र अपने पुत्र को। प्रत्येक हिंदू के लिये तीन जन्मऋण माने गए है। देवऋण, पितृऋण तथा ऋपिऋण। ऋपि-ऋण से उद्धार पाने के लिये यह आवश्यक था कि सूक्तद्रष्टा ऋपियों की रचना अर्थात् वेदो का अध्ययन किया जाय और सतान को भी करा दिया जाय। इसी विधि से प्राचीन आर्यो ने दीर्घ काल तक वेदो की रक्षा की थी। मूलरूप की रक्षा के लिये उच्चारण की जो परिपाटी निर्धारित की गई थी वह आश्चर्यजनक और असाधारण है। इसी सावधानी के कारण वेदो का पाठ सहस्रों वर्षो तक शुद्ध रखा गया। पर प्रत्येक शाखा के आचार्य ने अपनी विशिष्ट परिपाटी से अपने शिष्यो को पाठ कठस्थ कराया अत: स्वाभाविक रूप से वेद कई शाखाओ और स्कूलो मे विभक्त हो गया। अंत मे कृष्णद्वैपायन व्यास ने पाठों का मिलान करके उसे सुव्यवस्थित तथा सुशृंखलित रूप मे प्रकट किया। वेदों को कुछ लोग अपौरुषेय तथा अनादि मानते है परतु अर्वाचीन पुरावेत्ताओं के अनुसार इनकी रचना १५०० से १००० ई० पू० के बीच हुई थी।

कद्रू

कद्रू विनतहिं दीन्ह दुख।

—मानस, सो० २

दक्ष प्रजापति की कन्या तथा कश्यप की पत्नी का नाम कद्रू था। ये अत्यत सुंदरी तथा गुणवती थी। पुराणों के अनुसार इन्होने एक सहस्र नागों को जन्म दिया था जिनमे वासुकि तथा शेष मुख्य थे।

कपिल

आदि देव प्रभु दीनदयाला। जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला।

—मानस, सो०-१

विष्णु के अवतारों मे से एक (पाँचवे) जिनकी उत्पत्ति कर्दम मुनि की स्त्री देवहूति के गर्भ से हुई थी। देवहूति ने भगवान् की तपस्या करके उनसे विष्णु के समान पुत्रप्राप्ति की इच्छा प्रकट की। भगवान् ने अपने समान केवल अपने को ही पाकर स्वयं उनके गर्भ से जन्म लेने का वचन दिया। फलतः देवहूति के गर्भ से कपिल भगवान् की उत्पत्ति हुई। दीर्घकाल तक सासारिक सुख भोगते रहने पर अंत में जब कर्दम और देवहूति को इस जीवन से विरक्ति हुई तो उन्होने भगवान् से ज्ञान प्राप्ति की प्रार्थना की।

देवहूति के ज्ञान और भक्तिसबधी प्रश्नो के उत्तर के रूप में जो कुछ कपिल मुनि ने कहा वही आगे चलकर सांख्य दर्शन के रूप में प्रसिद्ध हुआ। हरिवंश पुराण के अनुसार वे वितथ के और श्वेताश्वतर के अनुसार ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। कपिल के नाम पर निम्नलिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं--१-साख्य सूत्र, २-तत्व समास, ३-व्यास प्रभाकर, ४-कपिलगीता, ५-कपिल पचरात्र, ६-कपिल संहिता, ७-कपिल स्मृति, और ८-कपिल स्त्रोत।

कुंभज और समुद्र

कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा।
सोखेउ सुजस सकल संसारा॥

—मानस, सो०-१

एक समय समुद्र किसी चिडिया के तीन बच्चों को बहा ले गया। चिड़िया बड़ी दुखी हुई और वह मारे क्रोध के, समुद्र को उलीच डालने के संकल्प से, प्रतिदिन अपनी चोच से पानी भर भर कर बाहर फेकने लगी। अगस्त्य ऋषि ने यह देखकर उससे पूछा। उसने अपना दुखडा रो सुनाया। ऋषिराज को बड़ी दया आई और उन्होने उस चिड़िया से कहा कि यह समुद्र बड़ा दुष्ट है तू इसे रहने दे, मैं कभी इसका बदला लूंगा। कुछ काल पीछे एक दिन अगस्त्यजी समुद्र के किनारे बैठे पूजा कर रहे थे। एक लहर ने इनकी पूजा की सामग्री नष्ट कर दी। इसपर अगस्त्य जी को बड़ा क्रोध आया और साथ ही उन्हे उस चिड़िया की बात भी याद आ गई। वे मारे क्रोध के तीन अंजुली में सारा समुद्र पी गए। बहुत दिनो तक वह सूखा पड़ा रहा। अंत में देवताओं के बहुत कहने सुनने पर अगस्त्यजी ने लघुशंका करके फिर सारा समुद्र भर दिया।

अजामिल

कान्यकुब्ज देश मे एक दासीपति ब्राह्मण अजामिल था जो दासी के संबंध से दूषित और आचारभ्रष्ट हो गया था। कैदी पकड़ता, जूआ खेलता, चोरी तथा ठगी आदि निंदित कर्मों से अपनी जीविका निर्वाह करता और प्राणियों को पीडा दिया करता था। इसी प्रकार के कुकर्मों से अट्ठासी बरस का बूढा हुआ। इसके दस बेटे थे। सबसे छोटे का नाम नारायण था। यह माता-पिता को बडा प्यारा था। मूर्ख बुड्ढा अजामिल उस बेटे मे ऐसा अनुरक्त था कि मृत्यु को भी भूल गया। मरने के समय भी उसका ध्यान उसी पुत्र मे था। यहाँ तक कि इसके प्राण लेने को यम के तीन दूत आए और उन्हे सामने देख बड़े व्याकुलेंद्रिय अजामिल ने दूर खेल में आसक्त पुत्र नारायण को मरते मरते जोर से पुकारा। भगवान् के पार्षद वहाँ तुरंत आए और उसके प्राणों को हृदय से खीचते हुए यमदूतों को जबरदस्ती रोकने लगे। तब यमदूतो ने विष्णु के पार्षदो से कहा कि यमराज की आज्ञा को रोकनेवाले तुम कौन हो। यह आजीवन महापातकी जीव अपने अत्याचारो और दुराचारो का फल भोगने यमालय में जा रहा है। पार्षद बोले कि यह अजामिल करोड़ो जन्म के प्रायश्चित्त कर चुका। यद्यपि इसने परवश होकर ही भगवान् का नामोच्चारण किया तो भी इसका प्रायश्चित्त हो गया क्योंकि शास्त्रविहित प्रायश्चित्तो से तो छोटे बडे पाप नष्ट होते है, परंतु भगवन्नामस्मरण मात्र से ब्रह्महत्यादि महापाप भी नष्ट हो जाते और प्राणी, जानकर वा बिना जाने, किसी प्रकार से भी नामस्मरण करते ही शुद्ध हो जाता है, जैसे अग्नि में जाने वा बिना जाने छोटा वा बडा कोई भी काष्ट फेंक दो तो वह भस्म हो ही जायगा।

इस प्रकार भगवद्धर्म समझाकर विष्णुदूतों ने अजामिल को यमदूतों के पाश से निकाल, मृत्यु से छुड़ा दिया। अजामिल विष्णुपार्षदो से कुछ बोलने की चेष्टा करता था कि वे अंतर्धान हो गए। इस व्यवहार को देख अजामिल को पश्चात्ताप हुआ। वह सबको छोड़ गंगातट पर आकर भगवद्धर्म मे प्रवृत्त हुआ। अपनी शेष आयु जब अजामिल भोग चुका तब फिर वही चतुर्भुज चार विष्णुपार्षद उसे देख पड़े और वह शरीर छोड़ तद्रूप हो विमान पर चढ़कर वैकुंठ गया।

अंबरीष और दुर्वासा

सुधि करि अंबरीष दुर्वासा। भे सुर सुरपति सकल निरासा॥

—मानस, सो० २

राजा नाभाग का पुत्र अंबरीस परम वैष्णव और बड़ा धर्मात्मा हुआ जिसको ब्राह्मणो का शाप भी न छू सका। इस हरिभक्त राजा ने ज्ञानदृष्टि से संपूर्ण वैभव को नश्वर जान स्वप्नवत् मान रखा था। जो कुछ कर्म करता सब ईश्वर को अर्पण कर देता था। राजा की इस एकांत भक्ति से प्रसन्न हो भगवान् ने अपने दास की रक्षा के लिये शत्रुओ को भय देनेवाला सुदर्शन चक्र दे दिया। फिर इस राजा ने रानी के साथ एक वर्ष भर अखंड एकादशी व्रत धारण किया। व्रत के अंत मे कार्तिक मास मे विरान्न व्रत नियमानुसार करके भगवान् का पूजन कर ब्राह्मणों को लाखो गौएँ दान की। फिर अच्छे स्वादिष्ट भोजन से ब्राह्मणों को तृप्तकर आज्ञा ले पारण की ज्यो ही तैयारी की उसी समय अतिथिरूप भगवान् दुर्वासा मुनि आ पहुँचे। राजा ने उनकी पूजाकर भोजन के लिये प्रार्थना की और मुनि ने स्वीकार कर लिया मध्याह्न का नित्यकृत्य करने वे यमुना तट पर गए। वहाँ यमुनाजल में पैठ भगवद्ध्यान मे लगे तो इतना विलंब हुआ कि पारण की द्वादशी एक घड़ी ही रह गई और मुनि न लौटे। राजा ने इस धर्म-संकट में पड़ ब्राह्मणो के साथ विचार किया कि यदि मुनि के आए विना पारण करता हूँ तो भी दोष और द्वादशी मे पारण नही करता तो भी दोष होता है। ऐसी दशा मे क्या करना चाहिए। अंत में निश्चय हुआ कि जल से ही पारण कर लें। अतः जल पानकर भगवान् का ध्यान करते हुए राजा दुर्वासा मुनि के आने की बाट जोहने लगे। मुनि भी अपने कृत्य से निवृत्त हो राजा के पास आ पहुँचे और राजा ने यद्यपि उनका सत्कार किया तो भी दुर्वासा मुनि ने सब जान लिया और क्रोध से काँपने लगे। हाथ जोड़े खड़े राजा से दुर्वासा मुनि बोले, 'अहो! इस अभिमानी अंबरीष ने जो निमंत्रित कर आतिथ्य किए विना भोजन किया है इस अपराध का फल मैं अभी देता हूँ।' यह कहते हुए अपनी एक जटा को नोच उससे एक कालानल के समान कृत्या उत्पन्न की जो हाथ मे खड्ग लिए अंबरीष की ओर झपटी परंतु अंबरीष निश्चल खड़े रहे। तब तो सुदर्शन चक्र से न सहा गया। कृत्या तो जलकर भस्म हो गई अब दुर्वासा पर ही सुदर्शन झपटा। दुर्वासा डर के मारे इधर उधर भागने लगे, परंतु वे जहाँ जहाँ छिपने के लिये भागे वही वही चक्र को अपने पीछे लगा पाया। जब कही शरण न मिली तो घबराकर ब्रह्माजी की शरण गए। कोरा जवाब मिला। शिवजी

ने भगवान् विष्णु के पास भेजा। दुर्वासा के दीन वचन सुन भगवान् बोले कि हे मुनि! मैं तो भक्तो के अधीन हूँ और उनका प्यारा हूँ। जिनको मै ही परम गति हूँ उनको छोड़कर मैं अपने शरीर तथा लक्ष्मी को भी नही चाहता। जो अपने प्राण, धन, जन संपूर्ण से ममता छोड़ मेरे शरण आए है उनको मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। मेरे मे मन लगा देनेवाले भक्त मोक्ष की भी परवाह नही करते, तव नश्वर पदार्थ उनके आगे कौन वस्तु है? साधु मेरे हृदय है और मैं उनका। इसलिये हे मुनि! मैं एक उपाय यही बताता हूँ कि तुमको जिससे यह दु:ख उत्पन्न हुआ है उसी के पास जाओ। यद्यपि तप और विद्या ब्राह्मणो के लिये कल्याणकर है तथापि क्रोधित ब्राह्मणों को वे ही अकल्याणकारी होते है। अत: हे ब्रह्मन्! आप उसी महाभाग राजा से क्षमा माँगो तव शांति होगी। निदान, सब जगह से लौटकर मुनि ने दु:खित हो अंबरीष के पैर पकड़ लिए। मुनि के चरण पकड़ने से लज्जित, दया से पीड़ित राजा ने भगवान् से प्रार्थना की जिससे सुदर्शन चक्र शांत हो गया और दुर्वासा की प्राणरक्षा हो सकी।

इंद्र, अहल्या और गौतम

पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी।
सकल कथा मुनि कही बिसेखी॥

गौतम नारी श्राप बस, उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर॥

श्रीरामचंद्र जी जब मिथिलापुरी के समीप पहुँचे थे तो उपवन में एक प्राचीन और निर्जन परंतु रमणीय आश्रम देखकर मुनि से पूछा—भगवन् यह निर्जन आश्रम किसका है? विश्वामित्र जी बोले, हे राम, पूर्व में यह आश्रम महात्मा गौतम का था, इसमे अपनी पत्नी अहल्या के साथ रहकर मुनि ने बहुत काल तक तपस्या की। गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या अत्यंत सुंदर रमणी थी। इंद्र उसके सौंदर्य पर मुग्ध था और उसके साथ रमण करना चाहता था। एक समय मुनिरहित आश्रम

देख उन्हीं मुनि का भेष धारणकर इंद्र आया और अहल्या को छलकर उसका सतीत्व नष्ट किया। अहल्या में भी उस समय पाप बुद्धि समाई और रतिकाल में यह जान जाने पर भी कि यह ऋषि गौतम नहीं हैं, यह देवराज इंद्र है, उसने छद्मवेशी इंद्र का तिरस्कार नहीं किया। उसी समय गौतम की आहट पाकर बोली कि 'हे इंद्र, महर्षि आ रहे हैं अतः तुम यहाँ से जल्दी जाओ और मेरी और अपनी रक्षा करो।' जब इंद्र उस कुटी से निकल रहा था तभी तपोधन तेजस्वी मुनि हाथ में काठ और कुश लिए स्नान करके आ पहुँचे। मुनि ने मुनिवेषधारी इंद्र को देख सारा वृत्त समझ लिया और क्रोध से कहा दुर्मते तूने मेरा रूप धरकर यह दुराचार किया, इसीलिये तू नपुंसक हो जायगा , तू ऐसा कामी है, तेरे सहस्र भग हो जायँगे। फिर अपनी स्त्री को शाप दिया कि तू इसी स्थान में सहस्र वर्ष तक केवल वायु पीकर अदृश्य रहेगी। जब दशरथ के पुत्र राम यहाँ आएँगे तब तू लोभ-मोह से रहित हो उनका सत्कार करेगी, तब इस दुष्कर्म से पवित्र हो अपना रूप पाकर हर्षित हो मेरे पास आवेगी। इंद्र की प्रार्थना पर ऋषि ने कहा कि श्रीरामचंद्र जी के अवतार लेने पर यही भग सहस्र आँखें हो जाएँगी। ऐसा कहकर गौतम मुनि हिमाचल पर जाकर एक रमणीय शिखर पर तपस्या करने लगे। और वहीं शिलारूपिणी महाभागा अहल्या भगवान् राम की बाट जोह रही है। दे० मानस, प्रथम सोपान—

रामहि चितव सुरसु सुजाना।
गौतम श्रापु परम हित माना॥

कश्यप, अदिति, वामन और बलि

कश्यप अदिति तहाँ पितु माता।

—मानस, सो०-१

ब्रह्मा के एक पुत्र मरीचि हुए। मरीचि के कश्यप। महर्षि कश्यप ने दक्ष की तेरह कन्याओं से विवाह किया। इनके ही गर्भ से असंख्य और

अगणित प्रकार के प्राणियो की उत्पत्ति हुई। नाग, व्याल, कीट, पक्षी, दैत्य, दानव, मानव, देवता, पशु, निदान सारे प्राणियो के पिता कश्यप भगवान् हैं। वैवस्वत मन्वंतर के यही प्रजापति हैं। गरुड़ इन्हीं के पुत्र है। वामन भगवान् इनके ही पुत्र अदिति के गर्भ से हुए। इन दोनो ने पुनः तपस्या की कि भगवान् फिर फिर उनके पुत्र हो। भगवान् ने इन्हें इस संबध मे वर दिए। एक कल्प मे इसी वरदान के अनुसार कश्यप और अदिति दशरथ और कौशल्या हुए।

दिति के वंशज दैत्यों में हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद हुए। महादानी और महा बलशाली बलि इनके पौत्र थे।

जब इंद्र ने प्रह्लाद के पौत्र बलि की सब संपत्ति छीन ली और प्राण भी ले लिए तब भृगुवशी ब्राह्मणो ने उसे पुनः जीवित किया, इस पर बलि शिष्यभाव से उनकी सेवा करने लगा और उसकी इच्छा स्वर्ग जीतने की हुई। तब भृगुवंशी ब्राह्मणो ने प्रसन्न हो उससे विश्वजित् नाम का यज्ञ कराया। जिससे प्रसन्न हो अग्नि ने उसे इंद्र के समान दिव्य शस्त्रास्त्र इत्यादि दिए और प्रह्लाद ने एक पुष्पमाला भी दी जो कभी न सूखे। तदनतर उसने सुसज्जित हो इद्र पर चढाई की और पुरी को घेरकर शुक्राचार्य के दिए हुए 'महास्वन' शंख को बजाया। बलि का ऐसा भारी उद्यम देख भयभीत हो अपने गुरु बृहस्पति से इंद्र ने सब वृत्त कहा, तब बृहस्पति बोले, हे सुरेंद्र, बलि को ब्रह्मवादी भृगुवंशियो ने अपना तेज दिया है। इस समय सिवा परमेश्वर के इसके सामने कोई भी नही ठहर सकेगा। सो तुम स्वर्ग छोड़ सब देवताओ के संग भाग जाओ। जब यह उन्ही ब्राह्मणों का अपमान करेगा, स्वय श्रीहत हो जायगा। यह सुन सब देवता छिपकर भाग गए और राजा बलि ने इंद्र की पुरी मे रहकर त्रिलोकी को वश कर लिया। इस घटना से इंद्रादि देवताओ की माता अदिति अति पीड़ित और उद्विग्न हो गई। कश्यप मुनि के कहने से उसने भगवान् विष्णु का पयोव्रत किया जिससे प्रसन्न हो भगवान् ने अदिति का पुत्र होकर देवताओं का आदर करना स्वीकार किया। भादो सुदी द्वादशी को कश्यप अदिति को पहले चतुर्भुज दर्शन हुआ और फिर वही रूप बटु वामन का हो गया जिसे देख सब ऋषि प्रसन्न हुए और कश्यप ने जातकर्म किया। समय पर वामन

को यज्ञोपवीत दिया गया जिससे सूर्य ने गायत्री का उपदेश, वृहस्पति ने उपवीत, कश्यप ने मेखला, भूमि ने कृष्णाजिन, चंद्रमा ने दड तथा अन्नपूर्णा ने भिक्षा दी। इस प्रकार सबसे आदर पाकर वामन वटु ने हवन किया। पीछे उन्होंने सुना कि भृगुवंशी ब्राह्मण वलि को एक सौ अश्वमेध यज्ञ कराते हैं यह सुन वामन वलि के यज्ञ मे पधारे। यजमान प्रसन्न हो आप आसन लाया और चरण धोकर वामन भगवान् की पूजा की और बोला, 'हे वटु ! पृथ्वी, धन, कन्या, भूमि अथवा जो आप को वांछित हो मांगो और लो"। इसपर भगवान् उसकी प्रशसा कर बोले, 'हे राजा, तुम्हारा सत्य वचन तुम्हारे कुल के योग्य है और तुम्हे धर्मयुक्त यशस्वी होना ही चाहिए, क्योंकि आपके प्रवर्त्तक भृगुवंशी ब्राह्मण और पितामह प्रह्लाद प्रमाणभूत है। आप भी अपने पूर्वज तथा और भी उदारकीर्त्ति जनों का अनुसरण करते हैं। अत. मैं थोड़ी पृथ्वी मांगता हूं, सो भी कितनी कि अपने पैर से तीन पैर। सो हे दैत्येंद्र, चाहे आप जगत् के स्वामी बड़े उदार है परन्तु मै इससे अधिक कुछ नहीं चाहता'। वलि बोले कि 'हे ब्राह्मण के बालक, तेरी बाते तो बड़े बड़े वृद्धो के समान है, परंतु अब तक तू अज्ञान ही है। जो मेरे पास आया वह फिर याचना के योग्य नही रहता। इसलिये हे वटु, जिसमे तेरा काम चले उतनी पृथ्वी तूं इच्छानुसार मांग ले'। इसपर भगवान् बोले, 'हे देव, जिसे तीन पैर पृथ्वी में सतोष नही उसे त्रैलोक्य मिलने से भी तृप्ति न होगी। जो इच्छा से मिल जाय उसी में संतोष करने से ब्राह्मण का तेज बढता है। अतः आप से मैं तीन ही पैर पृथ्वी मांगता हूँ।' तब वलि ने कहा, 'अच्छा जैसी आप की इच्छा, जितना चाहिए उतना ही लीजिए।' यह कहकर उसने दान करने के लिये जलपात्र हाथ में लिया। भगवान् का अभिप्राय जान अपने शिष्य वलि से शुक्राचार्य बोले, 'हे राजा, यह वटु नही किंतु भगवान् ने माया करके अदिति के गर्भ से उत्पन्न होकर रूप रचा है। यह तेरा सब राज्य लेकर इंद्र को दे देवताओं का कार्यसाधन करेंगे और तेरी प्रतिज्ञा भी पूरी न होगी। ये विश्वरूप एक पैर से पृथ्वी और दूसरे से आकाश नाप लेगे फिर तीसरा पैर कहाँ से आवेगा ? फिर तू प्रतिज्ञाभ्रष्ट हो नरक का अधिकारी होगा।' वलि थोड़ी देर तक चुप रहा। फिर कुछ विचारकर बोला, 'मैं प्रह्लाद का पौत्र होकर धन के लोभ से ब्राह्मण से प्रतिज्ञा करके नही कर जाऊं, यह न होगा। किंतु मै दूंगा, मैं अपने सर्वस्व के जाने या नरक से या किसी और हानि से नही डरता जैसा कि मै ब्राह्मण से ठगी करते डरता हूँ।

अनादि सब पदार्थ अनित्य है, न देने से भी यह सब मर जाने पर छूट ही जाएँगे, तो इससे अपने हाथ से ही क्यों न दे दें। अतः ये चाहे विष्णु हों अथवा कोई हों, मैं तो इनको मनवांछित दूँगा।' बलि ने गुरु का कहना न माना। शुक्राचार्य ने शाप दिया कि 'तू बडा मूर्ख है, तूने मेरी आज्ञा नहीं मानी इसलिये तुरंत ही लक्ष्मी से भ्रष्ट हो जायगा।' इसपर भी वह महात्मा सत्य से न डिगा और पूजन करके वामन भगवान् को पृथ्वी संकल्प करके देने लगा। उसकी स्त्री विंध्यावली सोने की झारी में जल लेकर आई और राजा ने वामन के पैर धो वह जल अपने माथे पर छिड़का। उस समय देवताओं ने दुंदुभि बजाकर फूल बरसाए और प्रशंसा करने लगे कि इसने जानकर भी यह दुष्कर कर्म किया। तदनंतर बलि ने संकल्प कर दिया और वामन भगवान् बढने लगे। उनके शरीर में संपूर्ण जगत् समाया हुआ देख पड़ने लगा। सब चराचर जीव, देवता, दैत्य, उस रूप में ही देख पडे। भगवान् ने एक पैर से पृथ्वी तथा दूसरे पैर मे स्वर्गादि लोक नाप लिया, तीसरे पैर के लिये कुछ भी न बचा। उस समय सब देवता पूजा और स्तुति करने लगे और ऋक्षराज जाम्बवान् भेरी का शब्दकर परिक्रमा करने लगे। बलि छले गए यह देख उसके अनुचर शस्त्र लिए भगवान् को मारने दौडे और पार्षद उनका मुकाबला करने लगे। बलि ने अपने अनुचरों को तुरंत रोका। गरुडजी ने भगवान् का अभिप्राय जान वरुणपाश से बलि को बाँध लिया। सब दिशाओं और सब लोकों में हाहार मच गया। भगवान् ने कहा, 'हे दैत्य! तूने मुझे तीन पैर पृथ्वी दी है, सो दो पैर में तो मैंने सब नाप ली, अब तीसरा दे। जो प्रतिज्ञा करके न देगा नरक में पडेगा, इसमें तेरे गुरु की भी संमति है। तूने मुझे धन के अभिमान से 'हाँ दूँगा' कह कर ठगा है।' बलि ने इसपर भी धैर्य न छोड़ा और दृढ़तापूर्वक बोला 'सुरवर्य! यद्यपि मैंने आपको नहीं किंतु आपने ही मुझे ठगा है क्योंकि जिस रूप से आपने मुझसे पृथ्वी ली उससे नहीं किंतु दूसरे रूप से नापी है, तथापि मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ता। तीसरा पैर आप मेरे सिर पर धरिए। मैं पदच्युत होने पर भी जैसा झूठ से डरता हूँ वैसा अपनी मानहानि या नरक से भी नहीं डरता। निस्संदेह आप परोक्ष रूप से हम मदांध दैत्यों के गुरु है और पदभ्रष्ट करके दंड देकर हमारी आँखें खोलते हैं। आपने मुझे बाँधा यह परम अनुग्रह किया। मैं तो इसका पात्र न था परंतु मेरे दादा प्रह्लाद जो आप के अनन्योपासक

थे, उन्हीं का महाभाग्य मुझे आप के चरणों में लाया है, यह मेरे पुण्य का प्रताप नहीं किंतु प्रह्लाद ही के पुण्य का प्रताप है।' ऐसा बलि कह रहा था उसी समय परम भक्त प्रह्लाद भी वहाँ आए जिन्हें देख बलि ने प्रणाम किया, परंतु पूर्वकृत अभिमान से लज्जित हो सिर झुका लिया। यह देखकर प्रह्लाद की आँखों में जल भर आए और उन्होंने भगवान् को प्रणाम कर स्तुति की कि 'हे भगवन्! आपने मेरे पौत्र को बाँधा नहीं किंतु उसपर अनुग्रह किया कि इतना ऐश्वर्य देकर लौटा लिया, हाँ मानो मोह से छुड़ा लिया।' भगवान् बोले कि 'मैं जिस पर अनुग्रह करता हूँ उसका साभिमान ऐश्वर्य हर लेता हूँ और फिर अपनी इच्छा से उसे संपत्ति देता भी हूँ। यह बलि मेरी माया को जीत गया है। यह इतनी आपत्ति आने पर भी नहीं घबराया, न तो गुरु के झिड़कने और शाप देने और न मेरे छलयुक्त वचनों पर ही इसने सत्यधर्म छोड़ा। अतएव देवदुर्लभ पद इसे मिल चुका है। सावर्णि मन्वंतर में यह इंद्र होगा और अबतक यह सुतललोक में रहे जहाँ आधिव्याधि किसी प्रकार का उपद्रव नहीं है। भावी इंद्र! तुम अपने जातिवालों को ले सुतल लोक में जाओ जहाँ लोकपाल भी तुम्हारा पराभव न कर सकेंगे और जो दैत्य तुम्हारी आज्ञा न मानेगा उसे मेरा सुदर्शन चक्र मार डालेगा और मैं स्वयं सदा तुम्हारी रक्षा करूँगा। हे वीर! मैं सदा तेरे द्वार पर रहूँगा और तुझे सर्वदा मेरे दर्शन हुआ करेंगे जिससे तेरा आसुर भाव भी धीरे धीरे सब मिट जायगा।' ऐसा कहकर भगवान् ने बलि को बंधनमुक्त किया और बलि तथा प्रह्लाद भगवान् की स्तुति और परिक्रमा कर दंडवत करके सुतल लोक को चले गए। बलि ने सर्वस्व खो दिया पर अपने वचन पर दृढ़ रहा।

कबंध

आवत पथ कबंध निपाता। —मानस, सो–३

वाल्मीकि रामायण के अनुसार दण्डकारण्य में रहनेवाले एक भयानक दैत्य का नाम, जिसके मस्तकविहीन शरीर में केवल कबंध (धड़) था। इसी से इसका नाम कबंध पड़ा। इसके पेट में विकराल दाँत थे, वक्षःस्थल में एक भयानक आँख थी, इसका आकार पर्वत के समान था और भुजाएँ एक एक योजन लंबी थीं।

यह पहले गंधर्व था किंतु इसने इंद्र से झगडा कर लिया जिससे उन्होंने वज्र से इसके शिर और जंघाएँ इसके पेट मे घुसेड़ दी। मतातंर से किसी ऋषि के शाप के कारण वह इस प्रकार कुरूप हो गया था। जटायुवध के अनतर सीता की खोज करते हुए राम और लक्ष्मण के ऊपर क्रौच वन मे मतग मुनि के आश्रम के पास कवध ने आक्रमण किया। राम ने उसकी भुजाएँ काट डालीं जिससे मुमूर्ष अवस्था मे उसने राम से अपना शरीर जला डालने की प्रार्थना की। भस्मीभूत होने पर यह सद्गति को प्राप्त हुआ और विश्वावसु नामक दिव्य शरीरधारी गंधर्व के रूप मे परिणत हो गया। राम को सीता का पता वताते हुए सुग्रीव से उनकी मैत्री करवाकर वह रावण के विरुद्ध जययात्रा में राम का वड़ा सहायक सिद्ध हुआ।

कमठ

विष्णु के कच्छपावतार का एक नाम।

--०--

कलि

कलि कर एक पुनीत प्रतापा।
मानस पुन्य होहि नहि पापा॥

—मानस, सो०-७

एक युगप्रवर्तक देवता का नाम। इन्ही के नामानुसार चौथे युग का नाम कलियुग हुआ। कलि पुराण के अनुसार द्वापर के अंत में ब्रह्मा ने अपनी पीठ से अधर्म की उत्पत्ति की। अधर्म की स्त्री का नाम मिथ्या था जिससे दभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। दंभ ने अपनी भगिनी माया से विवाह किया जिससे क्रोध नाम का पुत्र और हिसा नामक पुत्री उत्पन्न हुई। अत मे क्रोध और हिसा का विवाह हुआ, जिससे कलि नामक पुत्र और दुरुक्ति नामक कन्या उत्पन्न हुई। कलि और दुरुक्ति के विवाह से मय नामक पुत्र और मृत्यु नामक कन्या उत्पन्न हुई। इनके परस्पर विवाह से नित्य नामक पुत्र और यातना नाम की कन्या उत्पन्न हुई। कलि का आयुकाल ४३२००० वर्ष माना गया है, जिसके अत मे कल्कि अवतार होगा। आर्यभट के मत से कलि १५७७६१७५०

दिन रहता है। दमयंती के विवाह में देवताओं से अपना बदला लेने के लिये कलि ने राजा नल को अनेक क्लेश दिए थे।

कल्पतरु

कैवल्य कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस।

—क०, ७।११५

कल्पवृक्ष का पर्याय। देवलोक का एक वृक्ष जो समुद्रमंथन में प्राप्त चौदह रत्नों मे माना जाता है। यह इंद्र को मिला था। पुराणों के आधार पर लोगों का कहना है कि यह मनोवाछित फल देनेवाला है। एक कल्प तक इसकी आयु मानी गई है।

—०—

कश्यप

ब्रह्मा के मानस पुत्र, मरीचि के पुत्र तथा सप्तर्पियों में से एक। ये सृष्टि-कर्ता प्रजापतियों मे प्रधान माने जाते है। इनकी सात स्त्रियाँ थीं जिनसे दैवी, आसुरो, मानवी आदि अनेक प्रकार की सृष्टियाँ उत्पन्न हुई। इनकी दिति नामक स्त्री से दैत्य, अदिति से देवता (आदित्यगण), विनता से खेचर जीव (पक्षी आदि), कद्रू से सरीसृप वर्ग, सुरभि से गो, महिप आदि दनु से दानव तथा सरमा से श्वान आदि पशु उत्पन्न हुए। मार्कंडेय तथा हरिवंश पुराणों के अनुसार कश्यप के दिति अदिति, दनु, विनता, कद्रू, स्वप्ता, मुनि, क्रोधा, अरिष्टा, इरा, ताम्र, इला तथा प्रभा नामकी १३ स्त्रियाँ थी। कश्यप का शब्दार्थ कच्छप अथवा कछुआ होता है। शतप्रथ ब्राह्मण मे कहा गया है कि प्रजापति ने कच्छप का रूप धारण करके सारी सृष्टि का निर्माण किया। विष्णु पुराण के अनुसार भी विष्णु की उत्पत्ति वामन रूप में कश्यप और अदिति से हुई थी।

काकभुशुंडि

भगवान् के एक भक्त जिन्होंने गरुड़ के पूछने पर अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाई थी। ये कौए के रूप मे रहते थे। ये पूर्व जन्म के

ब्राह्मण थे किंतु लोमश मुनि के शाप से ये कौए की योनि में आ गए और अकाड ज्ञानी हुए। ये राम के बालरूप के उपासक थे। विशेष रूप से मानस के सप्तम सोपान, दो० ५३–८६ तक इनका चरित्र प्राप्त होता है।

काम, कामदेव

पठवहु कामु जाइ शिव पाहीं।

—मानस, सो०—१

प्रेम के देवता। ऋग्वेद में सर्वप्रथम इच्छा की उत्पत्ति मानी गई है। यही इच्छा आगे चलकर प्रेम के देवता के प्रतीक स्वरूप कामदेव के नाम से स्वीकृत हुई। अथर्ववेद में इनकी उत्पत्ति के संबंध में लिखा है—'काम की उत्पत्ति ही सर्वप्रथम हुई थी। उनका समानता देवता, प्रजापति और मनुष्य कोई नही कर सकता। इसके अतिरिक्त कामदेव को इन सबसे महान् भी कहा गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार इनकी न्याय के अधिष्ठाता धर्म-राज तथा विश्वास के प्रतीक के स्वरूप में स्वीकृति हुई देवी श्रद्धा का पुत्र कहा जा सकता है। हरिवंश पुराण मे इन्हे लक्ष्मी का पुत्र कहा गया है। कुछ स्थानों पर इनके संबंध में ब्रह्मा के पुत्र होने के उल्लेख भी मिलते है। इन्हें आत्मभू, अज तथा अनन्यज भी कहा जाता है जिससे ज्ञात होता है कि इनका जन्म स्वयं ही बिना माता–पिता के हो गया था। पुराणों में इनकी स्त्री का नाम रति अथवा रेवा मिलता है। एक बार शंकर का ध्यान भंग करने के कारण इनके भसम होने की कथा भी मिलती है। इस प्रकार अपने पति का सर्व-नाश देखकर इनकी स्त्री रति के विलाप करने पर शंकर ने कामदेव के अंगहीन होकर जीवित रहने तथा कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप मे जन्म लेने की बात कही थी। रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म हुआ था और रती मायावती के रूप में उत्पन्न हुई थी। प्रद्युम्न के पुत्र का नाम अनिरुद्ध तथा पुत्री का नाम तृषा मिलता है। इनका वाहन कोकिल अथवा शुक है और अस्त्र फूलों का धनुष एवं बाण कहा जाता है। इनकी ध्वजा मे मकर का चिह्न है।

कामधेनु

सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी ।

—विनय०, २२

चौदह रत्नो मे से प्राप्त एक रत्न का नाम जिसे सुरधेनु भी कहा गया है। इससे यथेप्ट वर की प्राप्ति हो सकती है ।

कालनेमि

पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना ।

—मानस, सो०–६

लका का एक राक्षस जो लक्ष्मण को शक्ति लगने पर औपधि के लिये जाते हुए हनुमान् के कार्य मे विघ्न उपस्थित करने के लिये रावण के द्वारा भेजा गया था । वह ऋपि वेप मे उस स्थान पर वैठा था जहाँ हनुमान् जलपान के निमित्त रुके थे । ज्ञानी हनुमान् को इसका कपट ज्ञात हो गया और उन्होने वही उसका काम तमाम कर दिया ।

कालभैरव

भैरव तथा रुद्र का नामातर । ये संभवत: अनार्यो के देवता थे, काशी मे इनका मदिर है ।

कालमान

एक दिनरात के चक्र को ही स्वभावत: ससार मे कालमान मानते आए हैं । दिनरात साठ घडी का और एक घड़ी साठ पलों की मानते है । वर्प में छह ऋतुएँ होती हैं । चैत्र, वैशाख वसन्त, ज्येप्ठ, आपाढ ग्रीप्म, श्रावण, भाद्रपद

वर्षा, आश्विन, कार्तिक, शरद्, मार्गशीर्ष, पौष हेमंत और माघ, फाल्गुन शिशिर ऋतु समझे जाते है। वैद्यों का क्रम कुछ भिन्न होता है। प्रत्येक ऋतु दो मास वा साठ दिनों की और वर्ष ६ × ६० = ३६० दिनो का मानते है। इस गणना में प्रायः ५ दिनों की कमी पड जाती है। परंतु जहाँ लाखो बरसो की गणना होती है, वहाँ इस अंतर पर विशेष विचार न करने से कोई हानि नहीं होती। मोटे तौर से चार लाख बत्तीस हजार बरसो का कलियुग, इससे दूने समय का द्वापर, तिगुने समय का त्रेता और चौगुने समय का सतयुग माना जाता है। चार युगों की एक चतुर्युगी होती है। एक हजार चतुर्युगियो का एक कल्प माना जाता है।

प्रत्येक कल्प के आरंभ मे ब्रह्मांड की सृष्टि का आरभ भी माना जाता है। कल्प के अंत मे सृष्टि का क्षय होता है, जिसे महाप्रलय कहते है। एक एक कल्प महाब्रह्मा का एक एक दिन माना जाता है। इस हिसाब से महा-ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष की मानी जाती है। महाविष्णु और महाशिव की आयु अमरिमित है। ब्रह्मांडो का प्रलय भिन्न भिन्न समयों पर होता है और सृष्टि के काल भी भिन्न है। उनकी स्थिति का काल उनकी ही गणना के अनुसार एक कल्प अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ बरस होते है। ऋषियो ने मानवी सृष्टि को कल्प के भीतर भी चौदह भागों मे बाँटा है। प्रत्येक को मन्वंतर कहते है। इस तरह मन्वतर लगभग साढे इकहत्तर चतुर्युगियो का होता है। वर्तमान मन्वंतर हमारे सौर ब्रह्मांड के लिये वैवस्वत नाम का है। कल्प का नाम श्वेत वाराह कल्प है जो महाब्रह्मा के दूसरे पहर के पहले आधे में परिगणित है। सत्ताईस चतुर्युगियाँ इस कल्प की बीत चुकी है। यह अट्ठाईसवाँ कलियुग है। इसके पहले चरण मे जब ४६७५ वर्ष बीते थे तब गोस्वामीजी ने रामचरितमानस का लिखना आरंभ किया था।

कालयवन

एक प्राचीन राजा का नाम जिसके पिता गार्ग्य तथा माता गोपाली अप्सरा थी। इसकी उत्पत्ति के विषय मे यह कथा है कि एक बार भरी

सभा में यादवों ने गार्ग्य (महर्षि गर्ग के पुत्र) को नपुसक कहकर उनकी बड़ी हँसी उड़ाई इससे क्षुब्ध होकर इन्होंने बारह वर्ष तक लौहचूर्ण खाकर पुत्र पाने की कामना से शिव की घोर तपस्या की। कालयवन इसी तपस्या का फल था जो अंधकों तथा वृष्णियों का घोर शत्रु हुआ। शैशव मे इसका पालन एक निःसंतान यवन (यूनानी) राजा ने किया था। इसी से इसका नाम कालयवन पड़ गया। कालयवन बड़ा पराक्रमी हुआ। इसने जरासंध के साथ यादवो पर चढ़ाई की जिससे भयभीत होकर श्रीकृष्ण के परामर्श से सारे यादव द्वारका भाग गए। युद्ध में पराजित हो कृष्ण स्वय हिमालय की एक गुफा मे भाग गए जहाँ माधाता के पुत्र मुचकुद शयन कर रहे थे। कालयवन भी इनका पीछा करता हुआ वहाँ पहुँचा और मुचकुंद को ही कृष्ण समझकर उन्हें पाँव के ठोकरो से उठाने लगा। निद्राभंग होने पर ज्यों ही मुचकुंद ने नेत्र उठाकर कालयवन की ओर देखा वह भस्म हो गया।

काली

देवी का एक रूपविशेष। कालिका पुराण के अनुसार इनके चार हाथ है। दाहिने हाथो में खट्वाग और चद्रहास तथा बाएँ हाथो में ढाल तथा पाश है। इनके गले मे नरमुड की माला है। व्याघ्रचर्म इनका परिधान तथा शीशरहित शव इनका वाहन है।

काशी

जाचिए गिरिजापति कासी।

—विनय, ६

भारतवर्ष के एक नगर का नाम जो प्राचीन काल से ही संस्कृति तथा धर्म का केंद्र रहा है। वाराणसी इसका नामांतर का जिससे इसका आधुनिक नाम बनारस निकला है।

कुंभकर्ण

पुनि प्रभु कुंभकरन पहिं गयऊ।

——मानस, सो०-१

पुलस्त्य ऋषि के पौत्र तथा विश्रवा के पुत्र का नाम। सुमाली की कन्या केकसी से उत्पन्न यह रावण का भाई था। उत्पन्न होते ही यह हजारों लोगों को खा गया। सब लोगो का हाहाकार सुनकर इंद्र ने इसपर वज्र चलाया किंतु घोर घोषकरके इसने ऐरावत का एक दाँत उखाड़ लिया और उसे इंद्र के ऊपर चलाया। इसपर लोगो की प्रार्थना से ब्रह्मा ने इसे शाप दिया की यह सदैव निद्रित रहे। रावण के वहुत विनती करने पर उन्होने कहा कि छह महीने पर इसकी नीद टूटती रहेगी। कुवेर की वरावरी करने के लिये इसने ब्रह्मा की घोर तपस्या की। जब ब्रह्मा वर देने के लिये आए तव लोग हाहाकार करने लगे। सरस्वती इसके कंठ में जा वैठी। परिणामतः इसने शयन करते रहने का ही वरदान मांगा। राम रावण के युद्ध के समय रावण ने इसे जगाने का वहुत प्रयत्न किया। कहा जाता है कि १ हजार हाथियो ने वह रस्सी खीची थी जो इसके गले मे वँधी थी। कर्णरंध्र और नासारंध्र में जलस्रोत वहाए गए थे। खीझकर रावण प्रहार करने लगा। वड़ी कठिनाई से जागने पर इसने सीताहरण के लिये रावण की निंदा की और सीता को उसी प्रकार लौटा देने को कहा। रावण ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया और इसे युद्ध के लिये उत्तेजित किया। युद्ध करते समय इसने राम दल में हाहाकार मचा दिया। हनुमान् को मीज दिया। सुग्रीव को लंका की ओर फेंक दिया। अंत में रामचंद्र ने इसका वध किया।

कुब्जा

कंस की एक दासी का नाम। इसका शरीर तीन जगह से टेढा था। कंस द्वारा आमन्त्रित जव कृष्ण और वलराम मथुरा गए उसी अवसर पर कृष्ण की कृपा से इसका शरीर सीधा हो गया। हिंदी कृष्ण साहित्य, मुख्यतः भ्रमर गीत संवंधी पदावली मे इसका उल्लेख वार वार मिलता है। मानस मे कैकेयी की दासी मंथरा के नाम का उल्लेख कुब्जा और कुवरी नाम से मिलता है।

कुमुद

राम की सेना के एक वानर वीर का नाम जो गोमती के तट पर स्थित रम्यक नामक पर्वत पर रहता था। नाभादासजी के अनुसार यह राम की वानर सेना का एक प्रमुख सेनापति तथा सहचर था जिसने युद्ध मे अतुल शौर्य का प्रदर्शन किया था। नाभाजी ने भगवान् के १६ पार्षदों मे कुमुद तथा कुमुदाक्ष को जय और विजय के समकक्ष माना है।

कुश

दुइ सुत सुंदर सीता जाए। लव कुश वेद पुराननि गाए।

—मानस, सो०-७

राम के एक पुत्र का नाम। इनकी माता वैदेही तथा छोटे भाई लव थे। रावण को जीतने के बाद अग्निपरीक्षा लेकर राम ने सीता को स्वीकार किया था किंतु बाद मे लोकापवाद के भय से त्याग दिया। यद्यपि वे उस समय गर्भवती थी। लक्ष्मण उन्हे तमसा नदी के किनारे वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़ आए। आश्रम मे जैसे अन्य ऋषिपत्नियाँ रहती थीं वैसे इनके भी रहने की व्यवस्था हो गई। श्रावण मास की मध्य रात्रि में इनके कुश और लव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। वाल्मीकि ने उनके सब संस्कार किए तथा शस्त्र, शास्त्र की भी शिक्षा दी। वे दोनों सभी विद्याओं में पारगत हो गए। इसी बीच राम ने अश्वमेध यज्ञ किया। इनका छोड़ा हुआ यज्ञाश्व वाल्मीकि के आश्रम से निकला। घोड़े के मस्तक पर तिलक लगा हुआ था और साथ मे एक पत्र भी लिखा हुआ था। घोड़े को देखकर लव ने कौतूहलवश घोडे को पकड़ लिया और उस पत्र को पढा। उसमें लिखा था—'''कौशल्या तस्या पुत्रो। रघुद्वहः। तेन रामेण मुक्तोसौ वाजी गृह्णात्विम बली॥' यह पढकर इनकी क्षात्रवृत्ति जागृत हो उठी और इन्होंने अश्व को रोक लिया। उसकी रक्षक सेना के सेनापति शत्रुघ्न थे।

दोनो मे युद्ध हुआ। शत्रुघ्न के आहत होने पर लक्ष्मण, लक्ष्मण के आहत होने पर भरत, फिर भरत के आहत होने पर राम आए। किशोर बालको के अद्भुत पराक्रम को देखकर राम के हृदय मे वात्सल्य प्रेम उमड़ आया। अग प्रत्यग शिथिल हो गए। धनुप नही उठा। उन्होने इन्हे प्रेम से बुलाकर पूछा—'तुम किसके लड़के हो। धनुर्विद्या तुम्हे किससे प्राप्त हुई?' लड़कों ने तो कहा कि पहले युद्ध करो, इन प्रश्नों से क्या मतलब? किंतु बाद में अपना नाम बता दिया। फिर वाल्मीकि की आज्ञा से स्वय सीता ने कुमारों को बताया कि यही तुम्हारे पिता है। इस तरह सब लोगो का मिलन हुआ। सीता ने राम को क्षमा कर दिया। सभी लोग अयोध्या गए। कुश और लव की अध्यक्षता मे अश्वमेध यज्ञ पूरा किया गया।

वाल्मीकि रामायण मे यह प्रसग कुछ दूसरे प्रकार से वर्णित है। राम के अश्वमध यज्ञ मे वाल्मीकि ऋषि कुश और लव के साथ समिलित हुए थे। कुश और लव ने बड़े ही राग के साथ रामायण गाकर सबको मुग्ध कर लिया। परिचय पूछे जाने पर इन्होंने केवल इतना ही कहा कि हम वाल्मीकि के शिष्य है। किंतु राम ने यह समझ लिया कि ये मेरे आत्मज है। राम ने लव को कोसल तथा कुश को उत्तरी कोसल दे दिया। कुश ने कुशस्थली नामक नगर बसाया।

कृष्ण

आज इस नाम मे वैदिक, वैदिक-पौराणिक और ऐतिहासिक कृष्ण के व्यक्तित्व निहित हैं। अतएव कृष्ण अब भाव जगत् के व्यक्ति रह गए है। ऋग्वेद मे इस नाम का उल्लेख हुआ है। कृष्ण आंगिरस एक मंत्रद्रष्टा थे किंतु संहिता साहित्य से स्पष्ट है कि कृष्ण आंगिरस तथा कृष्ण एक ही व्यक्ति के नाम नही हैं। छांदोग्य उपनिषद् में सर्वप्रथम देवकीपुत्र कृष्ण का वर्णन एक आचार्य के रूप में हुआ है। विष्वक के पुत्र एक ऋषि का नाम भी कृष्ण था। कृष्ण नाम का एक असुर भी हुआ है जिसने दस सहस्र सेना के साथ त्रिलोक

में हाहाकार मचा रखा था। अंत मे इंद्र ने इसे परास्त करके इसका नाश किया। एक अन्य वैदिक मंत्र मे ५०००० कृष्णों के वध का उल्लेख है। संभवतः श्वेतवर्ण आदिम आर्यो और कृष्ण (काला) वर्ण अनार्यो के युद्ध की ओर इस वर्णन का संकेत है। पुराणो के अनुसार कृष्ण विष्णु की पूर्ण कला से संपन्न उनके आठवे अवतार थे। महाभारत मे स्पष्टतः परमदेव के रूप मे तो नही, किंतु कुछ रहस्यात्मकता से युक्त राजा कृष्ण को देखते है। सर्वशक्तिमान् ईश्वर के रूप मे कृष्ण का वर्णन भगवत्गीता मे मिलता है जो निर्विवाद रूप से महाभारत मे बाद को जोड़ी गई है। महाभारत के द्वितीय और तृतीय संस्करणों के प्रक्षिप्त अंशों मे इनकी ईश्वरीय सत्ता उत्तरोत्तर परिवर्धित होती चली गई। हरिवंश पुराण मे जो बहुत बाद मे महाभारत में जोड़ा गया तथा भागवत पुराण मे इनकी ईश्वरीय सत्ता पूर्णता को प्राप्त हुई। उपर्युक्त दोनो ग्रंथो के आधार पर इनकी कथा संक्षेप मे निम्नलिखित है--

इनके पिता वसुदेव तथा माता देवकी थी। देवकी कंस की बहन थी और वसुदेव से उसके विवाह के समय यह आकाशवाणी हुई कि देवकी के आठवें गर्भ से जो संतान होगी वही कंस का वध करेगी। इसी कारण से कंस ने देवकी और वसुदेव को कारागार मे डाल रखा था और जो संतान उससे होती थी उसे पटककर मार डालता था। भाद्रपद कृष्णाष्टमी को अर्धरात्रि के समय कारागार मे ही श्रीकृष्ण का जन्म हुआ। उस समय दैवयोग से सभी पहरेदार सो गए। मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। पूर्व निश्चय के अनुसार वसुदेव सद्योजात कृष्ण को लेकर बढ़ी हुई यमुना को पार करके वृंदावन मे यशोदा के पास रख आए और यशोदा की नवजात कन्या को लेकर देवकी की गोद मे डाल दिया। प्रातःकाल कंस ने ज्यों ही चट्टान पर पटककर उसको मारना चाहा त्योंही वह कन्या यह कहती हुई आकाश में उड़ गई—'अरे दुर्मति कंस! तेरा मारनेवाला प्रकट हो गया है।' यह कन्या योगमाया थी। इसके अनंतर कंस को शिशु कृष्ण का पता चला और उसके वध के लिये उसने अनेकानेक प्रयत्न किए। सर्वप्रथम पूतना नामकी राक्षसी भेजी गई कि वह विषाक्त स्तन्यपान कराकर कृष्ण को समाप्त कर दे किंतु वह खुद ही मारी गई। इसी प्रकार अघासुर, बकासुर, वृषासुर आदि राक्षस छद्म वेश मे भेजे गए किंतु सभी कृष्ण के द्वारा मार डाले गए। कालीनाग तथा कुवलयापीड़ नामक मदोद्धत हाथी आदि का भी कृष्ण ने वध किया। कंस के द्वारा भेजे गए

प्रलंब, नरक, जंभ, पीड़ तथा मर नामक अन्य राक्षस भी मारे गए। वड़े होने पर कृष्ण ने अपने वड़े भाई वलराम की सहायता से कंस के भाई सुनामन् को मारा और जरासंध जैसे पराक्रमी राजा के सहायक होने पर भी कंस का वध किया। तत्पश्चात् जरासंध और शिशुपाल जैसे अन्य अत्याचारी राजाओं को मारा। अग, वंग आदि देशों को जीतकर पाताल लोक में पंचानन नामक राक्षस को भी मारा और पांचजन्य नामक दिव्य शंख प्राप्त किया। अर्जुन की सहायता से इन्होंने खाडव वन जलाने में अग्नि की सहायता की जिससे प्रसन्न होकर अग्नि ने कृष्ण को सुदर्शन-चक्र और कौमोदकी गदा तथा अर्जुन को गांडीव धनुप दिया। इन्होने गाधार नरेश की कन्या का स्वयवरसभा से अपहरण किया और राजा को रथ के पहिए से वाँधकर अपने यहाँ ले गए। विदर्भराज भीष्मक के पुत्र रुक्म के घोर विरोध करने पर भी उसकी वहन रुक्मिणी के साथ इन्होने विवाह किया, जिससे प्रद्युम्न, चारुदेष्ण आदि दस पुत्र तथा चारुमती नाम की कन्या उत्पन्न हुई। रुक्मिणी को लक्ष्मी का अवतार माना गया है। सत्यभामा, जाववती, सुशीला तथा लक्ष्मणा इनकी प्रधान महिपियाँ थी। कहा जाता है कि इनके १६००० स्त्रियाँ थी। पाडवों के साथ इनका घनिष्ठ संवंध था। द्रौपदी के स्वयवर में संमिलित होकर मत्स्य-वेध- प्रतियोगिता मे इन्होंने अर्जुन के पक्ष मे अपना निर्णय दिया। पांडवो के हस्तिनापुर मे राज्य करते समय ये अतिथि के रूप मे वहाँ गए। कुछ दिन वाद अर्जुन द्वारका गए। कृष्ण ने उनका वड़ा स्वागत किया। वही कृष्ण की वहन सुभद्रा से अर्जुन का प्रेम हो गया और वलराम की असहमति होने पर भी कृष्ण की सहायता से अर्जुन सुभद्रा को लेकर निकल गए। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय कृष्ण ने जरासंध के वध की सलाह दी, क्योकि जरासंध के कारण ही कृष्ण को मथुरा छोड़कर द्वारका जाना पड़ा था। भीम के द्वारा जरासंध का वध हुआ। राजसूय यज्ञ मे कृष्ण को संमिलित होते देख शिशुपाल ने उनका अपमान किया। इसपर कृष्ण ने चक्र से उसका शिर छेदन कर दिया। कौरवो-पांडवों की द्यूत क्रीड़ा के अवसर पर भी कृष्ण वर्तमान थे। जव सर्वस्व हारने पर युधिष्ठिर द्रौपदी को भी दाँव पर लगाकर हार गए तव दुःशासन द्रौपदी को उसके केश पकडकर खीच लाया और नग्न करने लगा किंतु कृष्ण की कृपा से उसकी साड़ी इतनी वढ गई कि उसे यह नग्न न कर सका। पांडवो के अज्ञातवास के वाद और पारस्परिक

महायुद्ध के पूर्व कृष्ण ने दुर्योधन की सभा मे जाकर युद्ध न करने की सम्मति दी थी किंतु दुर्योधन ने इनकी बात न मानी । युद्ध में इनकी सहायता लेने के लिये दुर्योधन और अर्जुन एक ही समय पहुँचे । कृष्ण ने एक को तटस्थ व्यक्तिगत तथा एक को अपनी सेना लेने को कहा । दुर्योधन ने इनकी सेना को लेना स्वीकार किया । कृष्ण ने तब अर्जुन के आग्रह से उसका सारथी होना स्वीकार किया । युद्धारंभ के समय युद्धक्षेत्र मे अर्जुन को मोह उत्पन्न हुआ और उन्होंने युद्ध करना अस्वीकार कर दिया । वही पर कृष्ण ने अर्जुन को विश्वप्रसिद्ध भगवद्गीता का उपदेश दिया और उनको कर्तव्य का ज्ञान कराया । सारथी रूप में कृष्ण अर्जुन की आद्यत सहायता करते रहे । दो एक स्थानो पर अर्जुन की अनुचित रूप से सहायता भी की । जैसे (१) गुरु-द्रोण को युद्ध विरत करने के लिये 'अश्वत्थामा हतो' वाले अर्धसत्य के प्रयोग में और (२) भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध में दुर्योधन के मर्मस्थल पर आघात करने के लिये संकेत करने में । युद्धोपरांत ये विजयी पांडवों के साथ हस्तिनापुर गए और उनके अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित हुए । तदनंतर ये द्वारका लौट गए । वहाँ इन्होंने मद्यपान का निषेध कर दिया । इसके बाद द्वारका में बहुत से अपशकुन होने लगे । कृष्ण ने समस्त यादवों को समुद्र तट पर जाकर देवताओं को प्रसन्न करने की आज्ञा दी । इन्होंने मद्यपान करने का एक दिन निश्चित कर दिया था । इसके फलस्वरुप मदोन्मत्त यादवो मे भयानक युद्ध हुआ, जिसमें समस्त यादवगण इनके पुत्र प्रद्युम्न के साथ मारे गए । बलराम इस युद्ध मे अलग रहे और उन्होने एक वृक्ष के नीचे शरीर त्याग दिया । कृष्ण स्वयं जरस नामक व्याध के तीर से आहत होकर दिवंगत हुए, क्योंकि भूल से इन्हें हरिण समझकर उसने इनपर तीर चला दिया था । यह सुनकर अर्जुन द्वारका गए और कृष्ण का अंत्येष्टि संस्कार किया । पाँच मुख्य रानियाँ इनके साथ सती हो गईं और द्वारका समुद्र में जलमग्न हो गई ।

भागवत आदि पुराणों में कृष्ण के बाल्य तथा शैशव की कथाओं का विशेष रूप से वर्णन किया गया है । हिंदी के प्रधान कवि विद्यापति, सूर, तुलसी आदि ने कृष्णचरित संबंधी कथावस्तु भागवत आदि पुराणो से ही प्रधान रूप से ली है । काव्योचित रूप देने के लिये तथा धार्मिक महत्व की स्थापना के लिये कृष्ण के महत्व का अतिरंजित वर्णन भी इन कवियों द्वारा किया गया है । सूरसागर, प्रेम सागर आदि पुस्तकों में कृष्ण का अतिरंजित रूप हमें

मिलता है। काले बादल के रंग का होने के कारण इनका एक नाम घनश्याम हो गया। इसी प्रकार ऊखलबंधन के समय यशोदा ने इनके पेट में रस्सी बाँधी थी जिससे इनका एक नाम दामोदर भी पड़ा। गोवर्धन धारण करने के कारण एक नाम गिरिधारी या तुंगीश हुआ। मथुरा निवास के समय जरासंध और कालयवन नामक एक विदेशी के आक्रमण का वर्णन भी मिलता है। कालयवन की कल्पना पौराणिको ने संभवत: कृष्ण की गौरव रक्षा के लिये की है। कृष्ण के साथ संमिलित होनेवाली घटनाओं मे राधा की उद्भावना अत्यंत महत्वपूर्ण एवं मौलिक है। भागवत में राधा का उल्लेख नही है। राधा सभवत: आभीरो की वनदेवी और गोपाल बालदेव थे। राधा का उल्लेख सर्वप्रथम ब्रह्मवैवर्त पुराण में हुआ है। यही भावना विद्यापति, जयदेव से आती हुई पल्लवित हुई। भागवत मे गोपी कृष्ण के प्रेम का उल्लेख है। साथ ही उसमें एक प्रधान गोपी की आराधना का भी उल्लेख है। 'भ्रमर गीत' की निर्गुण-सगुण-विवाद की उद्भावना हिंदी साहित्य के कवियों की मौलिकता है।

विष्णु पुराण के अनुसार विष्णु ने अपने दो केश उत्पन्न किए। एक सफेद और दूसरा काला। ये दोनो केश क्रम से रोहिणी तथा देवकी के गर्भ में स्थापित हुए। श्वेत केश से बलराम और काले से कृष्ण की उत्पत्ति हुई। केश से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम 'केशव' पड़ा। कृष्ण पांडवो के फुफेरे भाई भी कहे गए हैं। मतांतर से कृष्ण और अर्जुन नारायण के अवतार माने गए है। जैकोबी तथा भंडारकर आदि विद्वानों की धारणा है कि कृष्ण नाम 'क्राइस्ट' के आधार पर रखा गया है, किंतु यह धारणा अब असत्य सिद्ध हो चुकी है।

केकय

एक प्राचीन राज्य तथा उसके राजा का नाम। रामायण के अनुसार इस राज्य की राजधानी गिरिव्रज अथवा राजगृह थी। इनका वास्तविक नाम विवादास्पद है। एक मत के अनुसार इनका नाम धृष्ट्रकेतु था और यह कृष्ण के श्वशुर थे। इनके पाँच पुत्रों ने महाभारत युद्ध मे भाग लिया था। दशरथ

की प्रिय पत्नी तथा भरत की माता कैकेयी का संबंध इसी राज्य से था। कैकेयी अश्वकेतु की पुत्री थी। इसका एक नाम सुमना भी था।

केतु

नवग्रहों में से एक ग्रह। इसके रथ को लाख के रंग के आठ घोड़े खींचते हैं। प्रति संक्रांति को यह सूर्य को ग्रस्त करता है। मतांतर से यह एक दैत्य का नाम है, जिसको धड़ मात्र है। समुद्रमथन के बाद सब देवता अमृतपान करने के लिये बैठे। यह भी अमरत्व की इच्छा से देवताओं की पंक्ति में देवता वेष में बैठ गया पर सूर्य और चंद्र ने इसे पहचान लिया और इसके रहस्य को खोल दिया। तत्काल विष्णु ने इसका सिर काट दिया, किंतु अमृत इसके गले में जा चुका था, फलस्वरूप कटे होने पर भी इसके सिर और धड़ अलग अलग अमर हो गए। मस्तक का नाम राहु पड़ा और धड़ का नाम केतु। सूर्य और चंद्र से अपना बैर चुकाने के लिये राहु और केतु सूर्य और चंद्रमा को ग्रसित करते हैं। ज्योतिष में ये पापग्रह माने गए हैं। विंशोत्तरी गणना के अनुसार केतु की दशा का फल सात वर्ष तक रहता है। केतु की दशा के पहिले बुध और उसके बाद शुक्र की दशा आती है। केतु की माता का नाम सिंहिका था। मतांतर से यह कश्यप दनु का पुत्र था।

केशरी

एक वीर वानर का नाम जो अंजनी के पति थे और गोकर्ण नामक पर्वत पर रहते थे। शंबसादन नामक एक असुर ऋषियों को सताया करता था। इन्होंने ऋषि की आज्ञा से युद्ध करके उसका वध किया। इससे संतुष्ट हो

ऋषि ने आशीर्वाद दिया कि तुम्हें एक भगवद्भक्त तथा अति पराक्रमी पुत्र होगा। फलत. मारुति (हनुमान्) की उत्पत्ति हुई।

कैकय

कैकय सुता सुमित्रा दोऊ।

—मानस, सो०–१

केकय देश (वर्तमान काश्मीर) के एक प्राचीन राजा जो कोसलेश दशरथ के समकालीन थे। उनकी कन्या कैकेयी (जो सुंदरता मे अद्वितीय थी) का विवाह दशरथ के साथ हुआ था। यह उनकी प्रिय महिषी और भरत की जननी थी। पूर्वकाल मे एक बार देवासुर संग्राम में इंद्र ने सहायता के लिये महाराज दशरथ से प्रार्थना की। राजा ने स्वीकार कर लिया और कैकेयी सहित सेना को साथ ले राक्षसो से युद्ध करने गए। युद्ध के अवसर पर दशरथजी के रथ के धुरे की कील टूटकर गिर पड़ी, पर राजा को यह विदित न हुआ। रानी कैकेयी ने अति धैर्य से स्वामी की जीवरक्षा के लिये कील के छिद्र में अपना हाथ डाल दिया और नेत्रो मे स्वाभाविक श्यामता तक न देख पडी। राजा ने राक्षसों को पराजित किया तथा पीछे कैकेयी को उस प्रकार वैठे देखा तो आश्चर्ययुक्त हो उसके साहस से वडे प्रसन्न हुए और बोले कि जो तुम्हारी अभिलाषा हो वर माँग लो। मै तुम्हे वर देता हूँ। कैकेयी ने कहा कि यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते है तो ये दोनों वर हमारी धरोहर की भाँति अपने पास रहने दे। जब समय होगा तब इसे माँग लूँगी। महाराज ने कैकेयी तथास्तु कहा।

कैकयी, कैकेयी

कीन्ह कैकयी सब कर काजू।

—मानस, सो०–२

कैकेयी हरखित एहि भाँती।

—मानस, सो०–२

महाराज कैकय की पुत्री तथा दशरथ की तृतीय रानी का नाम। वाल्मीकि रामायण के अनुसार यह अपने समय में सुंदरता में अद्वितीय थी। इनके गर्भ से

भरत की उत्पत्ति हुई थी। एक बार देवासुर संग्राम में आहत हुए दशरथ की इन्होंने बड़ी सेवा शुश्रूषा की थी जिससे प्रसन्न होकर दशरथ ने इन्हें दो वरदान देने का वचन दिया था। राम के राज्याभिषेक का अवसर निकट आने पर इन्होंने अपनी मंथरा नामक एक दासी के बहकावे में आकर राम के लिये चौदह वर्ष का वनवास और भरत के लिये राज्य का उत्तराधिकार वरदान रूप में माँग लिया। दशरथ ने प्राण देकर वचन पूरा किया। राम स्वयं सहर्ष वन चले गए और भरत ने भी चौदह वर्ष राम की उपासना में बिताकर उनके लौटने पर राज्य पुनः उन्हीं को सौंप दिया।

कैटभ

अति बल मधु कैटभ जेहि मारे।

—मानस, सो०—६

मधु नामक दैत्य के अनुज का नाम, जिसका वध विष्णु ने किया था। यह विष्णु के कान के मैल से पैदा हुआ था। मार्कंडेय पुराण के देवी महात्म्य में इसकी कथा है।

कोसल, कोसला

रघुनंद आनंद कंद कोसल चंद दसरथ नंदनं।

—मानस, सोपान—२

प्राननाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ।

—मानस, सोपान–२

भारतवर्ष का एक प्राचीन विस्तृत जनपद। वाल्मीकि रामायण के अनुसार इसकी स्थिति सरयू नदी के तट पर थी और अयोध्या इसकी राजधानी थी। इससे वर्तमान अवध प्रदेश का बोध होता है। महाभारत तथा रघुवंश में इसे 'उत्तर कोसल' कहा गया है। सुप्रसिद्ध चीनी परिव्राजक ह्वेनच्वांग के अनुसार कोसल राज्य कलिंग के उत्तरपश्चिम लगभग १८०० 'लि' (डेढ़ सौ कोस) के अंतर पर था। इसका परिमाण ५,००० लि० और राजधानी का परिमाण लगभग ४० लि० था। यह चारों ओर पहाड़ और जंगलों से घिरा था और इसके दक्षिण में लगभग ६०० 'लि०' पर आंध्र राज्य था। इसके दर्शनों से

यह भी विदित होता है कि उक्त प्रदेश के तत्कालीन राजा का नाम सदवह (सातवाहन ?) था। उसके पीछे यह विस्तृत जनपद हैहयवंशी क्षत्रियों के हाथ में चला गया। विष्णुपुराण के अनुसार प्राचीनकाल मे देवरक्षित नाम का कोई वीर राजा इसपर शासन करता था। सूर्यवंशियों का यह प्रधान केंद्र था।

कौरव

कुरु के वंशजो की संमिलित संज्ञा। किंतु वास्तव मे धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों के लिये ही इस शब्द का प्रयोग होता है। धृतराष्ट्र और पांडु क्रमशः अंबिका और अंबालिका के गर्भ से उत्पन्न हुए थे जो विचित्रवीर्य की पत्नियाँ थी। इन दोनों को सत्यवतीपुत्र व्यास का औरस पुत्र माना जाता है। धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि सौ पुत्र हुए, जो कौरव कहलाए और पाँडु के युधिष्ठिर आदि पाँच पुत्र हुए, जो पांडव कहलाए। इनमे परस्पर कुरुक्षेत्र का प्रसिद्ध महाभारत युद्ध हुआ।

कौसल्या

कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥

—मानस, सो०-१

कोसल देश के राजा भानुमान् की कन्या तथा दशरथ की पटरानी का नाम। स्त्री धन के रूप मे एक सहस्र गाँव इन्हे मिले थे। रामचंद्र इन्हीं के पुत्र थे। इनकी सपत्नी भरत की माता कैकेयी को राजा अधिक प्यार करते थे। उन्ही के कहने से राज्याधिकारी राम को चौदह वर्ष का वनवास हुआ था। कौशल्या आदर्श पत्नी तथा आदर्श माता थी। कैकेयी से कई बार अपमानित होने पर

भी इन्होंने उसके प्रति कोई प्रतिहिंसा का भाव नहीं रखा था और कैकेयी के प्रति वचनबद्ध पति के प्रति भी उदासीन नहीं हुईं।

खर

खर दूषन त्रिशिरा कर घाता।

—मानस, सो०—३

एक राक्षस का नाम। यह रावण और शूर्पणखा का भाई कहा जाता है। सुमाली राक्षस की कन्या राका तथा विश्ववसु मुनि का यह पुत्र था। वनवास के समय पंचवटी में जब लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक कान काट लिए थे तब अपनी बहन के लिये यह रामचंद्रजी से युद्ध करने के लिये आया था। उसी समय राम ने इसका वध किया।

गंगा

एक अत्यंत पुण्यसलिला नदी, जो पुराणों में देवीरूप में वर्णित है। ऋग्वेद में भी दो स्थानों पर इनका उल्लेख मिलता है। इनकी स्थिति के संबंध में दो प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं—

१—विष्णु के चरणों से इनकी उत्पत्ति हुई थी और ब्रह्मा ने इन्हें अपने कमंडल में भर लिया था। कहा जाता है कि विराट् अवतार के आकाशस्थित तीसरे चरण को धोकर ब्रह्मा ने अपने कमंडलु में रख लिया था। कुछ लोग अन्य प्रकार से इसकी व्याख्या करते हैं। उनके अनुसार समस्त आकाशमंडल में स्थित मेघ का ही पौराणिकगण विष्णु जैसा वर्णन करते हैं। मेघ से वृष्टि होती है और उसी से गंगा की उत्पत्ति है।

२—इनका जन्म हिमालय की कन्या के रूप में सुमेरुतनया मनोरमा अथवा मैना के गर्भ से हुआ था। देवतागण किसी कारण इन्हें हिमालय से माँग लाए थे। किसी विशेष कारण से वे ब्रह्मा के कमंडलु में जा

छिपी थी। देवी भागवत के अनुसार लक्ष्मी, सरस्वती और गंगा, तीनों नारायण की स्त्रियाँ हैं। पारस्परिक कलह के कारण तीनों ने एक दूसरे को नदी रूप में अवतरित होकर मृत्युलोक मे निवास करने का शाप दिया, जिससे तीनो पृथ्वी पर अवतरित हुईं। पुराणो मे गंगा, शांतनु की पत्नी और भीष्म की माँ कही गई हैं। पृथ्वी पर गंगावतरण की कथा इस प्रकार है—

कपिल मुनि के शाप से सगर के साठ सहस्र पुत्र भस्म हो गए। उनके वशजो ने गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिये घोर तपस्या आरभ की। अंत मे भगीरथ की घोर तपस्या से ब्रह्मा प्रसन्न हुए और उन्होने गंगा को पृथ्वी पर भेजने की अनुमति दे दी। किंतु ब्रह्मलोक से आनेवाली गगा का भार सहन करने मे पृथ्वी असमर्थ थी। भगीरथ ने अपनी तपस्या से महादेवजी से गंगा को धारण करने की प्रार्थना की। ब्रह्मा के कमडलु से निकल कर गगा महादेव की जटाओं में खो गई। भगीरथ के तपस्या करने पर गगाजी को शंकरजी ने निचोड़ दिया। मार्ग में जह्नु ऋषि अपने यज्ञ की सामग्री नष्ट हो जाने के कारण गंगा को पान कर गए। भगीरथ के प्रार्थना करने पर फिर उन्होंने गंगा को अपने कर्णरध्र से निकाल दिया। तभी से गंगा का नाम जाह्नवी पड़ा। भगीरथ ने आगे आगे चलकर अपने पूर्वजों की मातृभूमि तक उन्हे ले जाकर उनको मुक्ति दिलाई। भगीरथ के प्रयत्न से प्रवाहित होने के कारण गगा को भागीरथी भी कहते है। इनके अन्य पर्याय निम्नलिखित है—विष्णुपदी, मदाकिनी, सुरसरि, देवापगा, हरिनदी तथा ध्रुवनंदा आदि।

गधर्व

सुनु गंधर्व कहौ मै तोही।

—मानस, सो०—३

वेदों में गंधर्व एक देवता का नाम है जिन्होंने स्वर्ग तथा विश्व के रहस्य को जानकर सर्वसाधारण के लिये व्यक्त किया।

गज

गनिका अजामिल गीध व्याध
गजादि खल तारे घना ।

—मानस, सो०-७

किसी प्राचीन सतयुग मे क्षीरसागर के मध्य में चित्रकूट पर्वत था, जिसकी एक कंदरा में वरुण भगवान् का 'ऋतुमत' नाम बगीचा था। उसमे एक बड़ा भारी सरोवर था । इसी सरोवर पर किसी समय एक गजयूथपति अपनी हथिनियो के झुंड सहित झाड़ियों को तोड़ता और पेड़ों को गिराता आया, जिसकी गंध से वन के सब पशु भाग गए। गजराज के मस्तक से मद चू रहा था। आँखे विघूर्णित थी । वह घाम से तपा हुआ और प्यास से व्याकुल था। आते ही सरोवर मे धँसा और सूँड़ में भरकर इसने खूब जल पिया और स्नान किया जिससे उसको शांति मिली। फिर वह दयालु गजराज अपनी सूँड से बच्चो और हथिनियो को भी जल पिला और नहला रहा था कि उसी समय एक बलवान् ग्राह (मकर) ने आकर उसका पैर पकड लिया । जहाँ तक गजराज का बल था, वहाँ तक उसने खूब पराक्रम किया और उसके सहायको ने भी उसे निकालने का बहुत उद्यम किया, पर कोई उसे जल से निकाल न सका । इन महाव्यालो की खीचाखीची में हजारो बरस बीत गए । जब वह अपने जीवन से हताश हो गया और देखा कि मेरे साथी हाथी भी मुझे नही उबार सकते, तब उसने अंत मे यही निश्चय किया कि सिवाय परमात्मा के कोई शरण नही है। ऐसा मन में दृढ कर भगवान् का ध्यान हृदय में करके वह गज, जो पूर्व जन्म मे इंद्रद्युम्न राजा था, भगवान् की स्तुति करने लगा । इस प्रकार आर्त्तनाद सुन हाथ मे चक्र ले गरुण तक को छोड़ भगवान् तुरंत गजेंद्र के सामने आए । आकाश से चक्रधारी भगवान् को आते देख, गजेंद्र सूड से कमल उठाकर दीन वचनो से पुकारने लगा, "हे नारायण, मैं आपकी शरण हूँ।" इतने मे भगवान् ने गजराज की सूँड थाम उसे ग्राह के सहित जल से बाहर खीच चक्र से ग्राह का मुख फाड़ गजराज को छुड़ा लिया। वह ग्राह "हू हू" नाम का गंधर्व था जो देवल

ऋषि के शाप से ग्राह हो गया था। वह भी अपने पूर्वरूप को पा अपने लोक को चला गया और गजराज को भगवान् अपना पार्षद बनाकर अपने संग ले गए।

गणिका

राम बिहाय मरा जपते बिगरी सुधरी कवि कोकिल हू की।
नामहि तें गज की गनिका की, अजामिल की चलिगै चल चूकी।
नाम प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पाडुवधू की।
ताको भलो अजहूँ तुलसी जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की।।

—कवितावली, ७/८९

जीवती नाम की एक वेश्या थी जो अपने तोते को बहुत प्यार करती थी। एक दिन उसी रास्ते से एक महात्मा निकले। उन्हें मालूम न था कि यह वेश्या का घर है। वे वहाँ भिक्षा के लिये चले गए। जब उन्हें वास्तविकता मालूम हुई और साथ ही उन्होंने यह भी जाना कि यह वेश्या अपने तोते से बहुत प्रेम करती है, तब उन्होंने वेश्या से कहा कि तुम इसे राम नाम पढाया करो। उसी दिन से वेश्या तोते को रामनाम पढाने लगी। यद्यपि उसे मालूम न था कि रामनाम का क्या प्रभाव है तथापि उसकी जीभ रामनाम के उच्चारण मे इतनी अभ्यस्त हो गई थी कि मृत्यु के समय भी अनजान में ही उसके मुख से रामनाम निकलता रहा और वह भवसागर पार हो गई।

गणेश

महिमा जासु जान गनराऊ।
प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ ॥

—मानस, सो०–१

गणेशजी आदिदेव है। पार्वतीजी से इनका अवतार हुआ। पार्वतीजी ने शृंगार के समय इनको मंदिर के द्वार पर तैनात कर दिया कि किसी को मेरी आज्ञा बिना मत आने देना। उसी समय दैवयोग से शिवजी आए। माता की आज्ञा के दृढव्रती गणेशजी ने शिवजी को रोका। शिवजी ने क्रुद्ध होकर गणेशजी का सिर अपने त्रिशूल से उडा दिया। जब भीतर गए तब पार्वतीजी ने स्वागत किया, परंतु आश्चर्य से पूछा कि हमारे नवनिर्मित पुत्र ने आपको कैसे आने दिया। शिवजी बोले कि हमने उसकी धृष्ठता पर उसका सिर उड़ा दिया। इसपर पार्वती जी विलाप करने लगी। शिवजी ने उनके परितोष के लिये गण भेजे कि तत्काल ही किसी ऐसे बच्चे का सिर ले आओ जिसकी माता ने उसकी उपेक्षा की हो। गण एक हाथी के बच्चे का सिर लाए। उसे लगाकर गणेशजी को शिवजी ने पुनरुज्जीवित कर दिया।

गणेशजी के सिवा शिवजी के पुत्र स्वामि कार्त्तिकेय भी हुए। स्वामि कार्त्तिकेय गणेशजी से जेठे है। यह देवताओ के सेनापति हुए। इन्होंने तारक असुर का वध किया। गणेशजी बुद्धि के देवता प्रसिद्ध हुए। एक बार ब्रह्माजी ने देवताओ से पूछा कि तुम लोगों मे प्रथम पूजने योग्य कौन है। इसपर देवता आपस मे लडने लगे। अंत मे ब्रह्माजी ने कहा कि जो सबके पहिले विश्व की परिक्रमा कर आएगा, उसी को हम स्थान देंगे। सब देवता अपने अपने वाहनों पर चढकर दौडे, पर गणेशजी सबसे पीछे रह गए, क्योंकि उनका वाहन चूहा शीघ्र नही चल सकता था। इस पर वे बड़े व्याकुल हुए। उसी समय नारदजी वहाँ आ गए। उन्होने

गणेशजी को संमति दी कि पृथ्वी पर रामनाम लिखकर और उसकी परिक्रमा करके तुम ब्रह्मा जी के पास चले जाओ। उन्होने वैसा ही किया और अंत में राम नाम का प्रभाव समझकर ब्रह्माजी ने उन्ही को प्रथम पूज्य पद दिया। गणेशजी के संबंध में कथातर है कि वे शिव के गणो के अधिपति थे। इन्हे शिव तथा पार्वती का पुत्र कहा जाता है। इनका समस्त शरीर मनुष्य का और मुख हाथी का है। कहा जाता है कि इनके जन्म के समय शनि भी इन्हे देखने आए थे। शनि जिसे देख लेते थे, उसका सिर धड़ से अलग हो जाता था। शनि के देखते ही गणेश का सिर अलग हो गया। उस समय विष्णु के कहने पर उत्तर दिशा मे सिर किए हुए इंद्र के हाथी ऐरावत का सिर काटकर गणेश को लगा दिया गया। इनके एकदत होने के विषय में यह प्रसिद्ध है कि एक बार शंकर और पार्वती निद्रामग्न थे। गणेश उस समय द्वारपाल थे। परशुराम शंकर से मिलने आए। गणेश ने उन्हे रोका जिससे क्रुद्ध होकर परशु से उन्होने इनका एक दाँत काट डाला। कहा जाता है कि एक बार देवताओ ने पृथ्वी की परिक्रमा करनी चाही। सभी लोग पृथ्वी के चारों ओर गए। गणेश ने सर्वव्यापी रामनाम लिखकर उसी की परिक्रमा कर डाली, जिससे देवताओं मे सर्वप्रथम उन्ही की वंदना या पूजा होती है। कहा जाता है कि व्यास के बोलने पर गणेश ने ही महाभारत को लिपिबद्ध किया था। गणेशजी ने यह शर्त रखी थी कि बोलते हुए यदि आप रुकेंगे तो मै नही लिखूँगा। व्यास जी ने कहा कि ठीक है पर आप अर्थ समझते हुए ही लिखना। इस प्रकार बीच बीच मे वे ऐसे पद बोलते थे कि गणेश को उसे समझने के लिये रुकना पड़ता था। और व्यास जी आगे का कथन सोच लेते थे। इनका वाहन मूषक है। लबोदर, हेरब, द्वैमातुर, एकदंत, मूषकवाहन, गजवदन, गणपति, विनायक आदि इनके अन्य नाम हैं।

गरुड और भुशुंडि का युद्ध

होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना॥

—मानस, ७/६२

एक समय जब दशरथ के आँगन मे श्रीरामचंद्रजी बाललीला कर रहे थे, कागभुशुंडि के मन मे मोह उत्पन्न हुआ तब वे रामजी के हाथ से पूरी

का टुकड़ा लेकर उड़ गए। राम ने यह ढिठाई देख गरुड़ को स्मरण किया जिसपर गरुड़ और कागभुशुंडि में घोर युद्ध हुआ। अंत में कागभुशुंडि घायल होकर तीनो लोक में भागा, पर गरुड़ ने कही भी उसका पीछा नही छोड़ा। अंत मे वह फिर राम की शरण आया तव उन्होने गरड़ को निवारण कर उसकी रक्षा की। इसपर गरुड़ को अभिमान हुआ कि कागभुशुंडि से मेरी भक्ति वढ़ी चढ़ी है

गर्ग

यदुवंश के पुरोहित। इन्हे कृष्ण का नामकरण करने के लिये वसुदेव ने गोकुल भेजा था। नंद ने इनका विशेष आदर-सत्कार किया था। सर्वप्रथम इन्होंने रोहिणीपुत्र का नाम 'संकर्षण' रखा था। फिर राम की परम अभिरामता वताकर, अति वलयुक्त होने के कारण उनका नामकरण 'वलराम' भी किया था। देवकीपुत्र का नाम इन्होने ही 'कृष्ण' रखा था तथा वसुदेव का पुत्र होने के कारण उन्होंने उन्हे 'वासुदेव' भी कहा था एवं उनमें नारायण से अधिक गुण वताए थे। इस प्रकार नामकरण के वाद वे मथुरा वापस चले गए थे।

गाधि

गाधिसूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरिअरेइ सूझ।
अयमय खाँड़ न ऊखमय, अजहुँ न वूझ अवूझ॥

—मानस, सो–१

विश्वामित्र के पिता का एक नाम। वायुपुराण के अनुसार ये कुशाश्व के पुत्र थे। इनकी माता पुरुकुत्स की कन्या थी। ऋचीक ऋषि के दिए हुए चरु के

प्रभाव से इनको विश्वामित्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस बालक में क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों के गुण विद्यमान थे। इनकी कन्या का नाम सत्यवती था। ये कान्यकुब्ज देश के राजा थे। नाभाजी के अनुसार परशुराम इन्ही के नाती (कन्या के पुत्र) थे और प्रसिद्ध यमदग्नि मुनि के आत्मज थे।

गायत्री

ब्रह्मा की स्त्री का नाम। कहा जाता है कि एक बार ब्रह्मा ने एक यज्ञ आरंभ किया। यज्ञ में अर्धांगिनी का होना परमावश्यक है। अतः ब्रह्मा ने अपनी प्रथम पत्नी सावित्री को बुला भेजा, किंतु सावित्री ने कहा कि अभी हमारी सहेलियाँ नही आई है। अतः इद्र मृत्युलोक से एक ग्वालिन लाए जिसके साथ ब्रह्मा ने गाधर्व विवाह किया। इसी का नाम गायत्री पड़ा। गायत्री के एक हाथ मे मृगशृंग और दूसरे में पद्म है। वस्त्र लाल रंग का है। गले मे मुक्ताहार और सिरपर मुकुट है। एक बार बृहस्पति ने पादप्रहार द्वारा इसका सिर तोड़ दिया। इससे इनकी मृत्यु नही हुई बल्कि देवों की उत्पत्ति हुई। गायत्री मत्र वेद का सबसे प्रचलित मंत्र और गायत्री छद सबसे प्रसिद्ध छद है। गायत्री को वेदमाता भी कहा गया है। यह मंत्र सबसे अधिक पुनीत तथा पावन माना गया है। प्रत्येक ब्राह्मण के लिये त्रिसध्या मे इसका जप करना अनिवार्य माना गया है। गायत्री मत्र इस प्रकार है :—"ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गोदेवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।" मत्र का मौलिक आशय इस भाँति है— हम उस परम तेजमय सूर्य (सविता) के उस तेज की उपासना करते है कि वह हमारे मन और बुद्धि को प्रकाशित करे।'

गालव

गुर श्रुति संमत धरम फलु, पाइअ बिनहिं कलेस।
हठबस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस॥

—मानस, सो०-२

ये विश्वामित्र के प्रिय शिष्य, एक प्रसिद्ध ऋषि थे। शिक्षा समाप्त होने पर विश्वामित्र इनसे गुरुदक्षिणा लिए बिना ही प्रसन्न थे, किंतु इन्होंने दक्षिणा देने का आग्रह किया, अतएव रुष्ट होकर उन्होंने ८०० श्यामकर्ण घोड़े माँगे। इसे अपनी शक्ति से बाहर की बात समझकर इन्होंने विष्णु की आराधना की। प्रसन्न होकर विष्णु ने इनकी सहायता के लिये गरुड़ को भेजा। सब दिशाओं में घुमाकर गरुड़ इन्हें राजा ययाति के यहाँ ले गए और उन्हें अपनी समस्या बताई। ययाति भी असमर्थ हो रहे थे। उन्होंने अपनी परम सुंदरी कन्या माधवी गालव को सौंपकर कहा कि इसे योग्य वर को सौंपकर उनसे घोड़े प्राप्त कर सकते हो। माधवी को यह वर प्राप्त था कि पति समागम होने पर भी उसका कौमार्य नष्ट नहीं होगा। इसे लेकर ये हर्यश्व, दिवोदास और उशीनर तीन राजाओं के पास गए। इन तीनों ने बारी बारी से माधवी से विवाह करके पुत्र प्राप्त किया और उसके बदले दो दो सौ घोड़े दिए। इस प्रकार गालव ऋषि ने ६०० घोड़े विश्वामित्र को दे दिए और २०० के लिये उस कन्या को ही विश्वामित्र को सौंप दिया। उसे पाकर गुरु संतुष्ट हुए और उनसे भी माधवी को अष्टक नामक एक पुत्र हुआ।

ययाति

लेइ उसास सोच एहि भाँती।
सुरपुर ते जनु खसेउ जजाती॥

—मानस, सो०-२

जब गालव मुनि ने माधवी को राजा के पास पहुँचा दिया, तब राजा

याति ने फिर से उसका स्वयंवर करना चाहा। पुरु और यदु भाइयों के साथ माधवी बहुत घूमी। अंत मे 'वन' को वरण कर तपस्या करने लगी। इधर राजा ययाति ने कई हजार वर्ष अपनी आयु भोग पहले राजाओं की तरह वन में जाकर शरीर छोड़ा। फिर स्वर्ग जाकर कई हजार वर्ष वहाँ के उत्तम सुख भोगे, परंतु अंत को मोह मे पड़, अभिमान से मत्त हो वे सहवासी पुण्यात्मा राजर्षियों, महर्षियों, देवों और मनुष्यों का मन ही मन अनादर करने लगे। इंद्र ने उनका अभिप्राय जान लिया और सब राजर्षि उन्हे धिक्कारने लगे। उनकी ओर देख स्वर्गीय यह तर्क करने लगे कि 'यह पुरुष कौन है ? किस राजा का पुत्र है ? किस कर्म से सिद्ध हुआ है ? कहाँ तपस्या की थी ? कैसे स्वर्ग पाया ? इसे कौन जानता है' ? स्वर्गवासी आपस में यों तर्क करने लगे और द्वारपाल से भी पूछने लगे, पर सबने उत्तर दिया कि हम इसे नही जानते।

अब राजा ययाति का सिर घूमने लगा. आसन से भ्रष्ट हो गिरने लगे। अत्यंत शोक और दुःख से पीड़ित होने से उनका ज्ञान नष्ट और उज्ज्वल माला मलिन हो गई। सिर के मुकुट और विचित्र भूषणादि सब गिर पड़े। सब अंग शिथिल हो गए। उस समय उन्हे कोई भी नही पहचानता था। सब विषयो से रहित हो वे अपने मन मे चिंता करने लगे कि हाय ! यह क्या और क्यों हो रहा है ? पुण्यहीनों को स्वर्ग से गिरानेवाले पुरुष ने इंद्र की आज्ञा से ययाति से जाकर कहा कि 'हे राजन्, तुमने अभिमान से सबका अनादर किया है, तुम्हें कोई नही जान सकता, सो जाओ जल्दी गिरो'। यह सुन नहुष के पुत्र ययाति ने कहा, 'साधुओ के बीच गिरूँगा'। वे तीन बार यही कहकर वहाँ गिरे जहाँ उसी समय वसुमना, प्रतर्दन शिवि और अष्टक ये चारों राजा नैमिषारण्य में वाजपेय यज्ञ से इंद्र को तृप्त कर रहे थे। राजपुत्रों ने पूछा कि आप कौन है ? यहाँ क्यो आए है ? और क्या चाहते हैं ? राजा बोले, मैं राजर्षि ययाति हूँ। पुण्यक्षीण होने से स्वर्ग से गिरा हूँ। लोग बोले, हे पुरुषर्षभ ! आप की अभिलाषा पूरी हो। आप हमारे पुण्य का फल लें फिर स्वर्ग जायें। ययाति बोले मैं क्षत्रिय हूँ, प्रतिग्राही ब्राह्मण नही हूँ। विशेष करके दूसरों का पुण्य क्षय करने मे मेरी प्रवृत्ति नही होती। उसी समय ब्रह्मचर्यपरायणा, वनवासिनी माधवी भी आ पहुँची।

चारो पुत्रों ने प्रणामकर विनती की कि हे तपोधने ! हम तुम्हारे पुत्र हैं, सो कहो तुम्हारी क्या आज्ञा करें ? यह सुन माधवी ने हर्ष से गद्‌गद हो पिता के पास जा उन्हें प्रणाम कर और पुत्रों के मस्तक को स्पर्श कर कहा कि हे राजेंद्र, ये पुत्र तुम्हारे दौहित्र हैं सो यही तुम्हारा उद्धार करेंगे । हे राजन् ! मैं तुम्हारी पुत्री माधवी हूँ, इससे मेरे संचित पुण्य का भी आधा भाग ग्रहण कीजिए । मुझे गालव मुनि को समर्पण करते समय जो आपने दौहित्र की इच्छा की थी उसका भी यही प्रयोजन है । उस समय गालव मुनि भी वन से आए और ययाति से बोले—हे राजन् ! मेरी तपस्या के अष्टम भाग से तुम फिर स्वर्ग को चले जाओ ।

प्रतर्दनादि सब साधु पुरुषों को जान कर उनके वचन सुनते ही मोह और शोक से रहित हो दिव्य शरीर, माला और भूषण धारण करके ययाति का फिर स्वर्गारोहण हुआ ।

गोवर्धन

टेरी कान्ह गोवर्धन चढ़ि गैया।
मथि मथि पियो बारि चारिक मैं भूख न जाति अघाति न धैया ।।

—कृष्णगीतावली, १६

गोवर्धन व्रज मे स्थित गोकुल के समीप के एक प्रसिद्ध पहाड़ का नाम है । व्रजवासी पहले इंद्र की पूजा करते थे । कृष्ण ने इंद्र की पूजा छोड़ गोवर्धन की पूजा करने की सलाह दी । इससे अप्रसन्न हो इंद्र ने व्रज को डुबाने के लिये मूसलाधार वर्षा की । गोकुल में त्राहि त्राहि मच गई । तब भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को अपने बाएँ हाथ की छिगुनी पर उठा लिया, जिससे एक भी बूँद पानी व्रजवासियो के ऊपर नहीं पड़ा । अंत में इंद्र को हार मान लेनी पड़ी । इसी से कृष्ण का एक नाम 'गिरिधर' पड़ा ।

घटयोनि अगस्त्य ऋषि

वालमीकि नारद घट जोनी । निज निज मुखनि कही निज होनी ।।

—मानस, सो०–१

कुसमउ देखि सनेह सँभारा । वढ़त विंधि जिमि घटज निवारा ।

—मानस, सो०–२

एक वार अगस्त्य ऋषि ने शिव जी से कहा कि मेरे पिता मित्रावरुण जी तप कर रहे थे। आकाश मार्ग से रंभा शृगार किए जा रही थी। अचानक पिता जी की दृष्टि उसपर पड़ी, जिससे उन्हे कामवासना उत्पन्न हुई और उन्होंने अपने वीर्य को एक घड़े मे रख दिया। उसी से मेरी उत्पत्ति हुई और इसी लिये मै 'घटज' या 'घटयोनि' भी कहलाया। ऐसे नीच स्थान से उत्पन्न होने पर भी मै इस पदवी को प्राप्त हुआ, जिसका मुख्य कारण सत्सग ही है।

हिमालय की स्पर्धा में एक युग में विंध्याचल वढ़ कर ऊँचा होने लगा। वह इतना ऊँचा हो गया कि उसके भय से देवता तक चिंतित हुए। उन्होंने अगस्त्य-जी से अपना भय कहा। अगस्त्य जी ने दक्षिण की ओर यात्रा की। जव विंध्य के पास गए तो अपने गुरु अगस्त्य जी को साष्टांग प्रणाम करने को विंध्य लेट गया। अगस्त्य जी ने आशीर्वाद दिया और आदेश किया कि वेटा, जव तक मै दक्षिण से न लौटूँ इसी तरह पड़े रहो। विंध्य आज तक वैसे ही पड़ा हुआ है, क्योकि अगस्त्य जी दक्षिण से अव तक लौटे ही नहीं।

चंद्रमा और वुध

उपमा वहुरि कहउँ जिय जोही । जनु वुध विधु विच रोहिनि सोही ।।

—मानस, सो०–२

चंद्रहास

चंद्रहास केरल देश के राजा सुधार्मिक के पुत्र थे। इनका जन्म मूल नक्षत्र में हुआ था। इनके हाथ में दरिद्रतासूचक छह अंगुलियाँ थीं। शत्रुओं ने इनके पिता को मारकर इनकी माता के साथ सहवास किया। ये अनाथ हो गए। छिपाकर एक दाई इनको वन में ले गई। पर वह वहाँ स्वयं मर गई। वन में ये अकेले पड़े थे। संयोग से राजमंत्री उधर से जा निकले। शत्रुतावश मंत्री ने इन्हें मारना चाहा किंतु उसी का पुत्र मारा गया और ये बच गए। बड़े होने पर मंत्री की कन्या ने इन्हें देखा और इनके सुंदर स्वरूप पर मुग्ध होकर इनके साथ विवाह कर लिया।

चक्र सुदर्शन

इंद्र कुलिश मम सूलबिसाला। काल दंड हरि चक्र कराला॥

—मानस, सो०-७

भगवान् श्री कृष्ण के हाथ का अस्त्र। यह फेंककर चलाया जाता था। श्रीकृष्ण ने इसी चक्र से शिशुपाल का वध किया था।

चित्रकेतु

चित्रकेतु कर घर उन्ह घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला॥

—मानस, सो०-१

शूरसेन देश मे चित्रकेतु नाम का चक्रवर्ती राजा था। इसके अनेक रानियाँ थी। कोई पुत्र न था। महर्षि अगिरा ने त्वष्टा देवता का चरु बनवाकर यज्ञ किया और उसकी बड़ी तथा सर्वश्रेष्ठ पटरानी कृतद्युति को उस चरु का अवशिष्ट अन्न दिया और कहा—हे रानी, इसके खाने से तुमको एक पुत्र होगा वह तुमको हर्ष और शोक देनेवाला होगा। काल पाकर उस चरु के प्रभाव से कृतद्युति ने अति सुदर बालक जना। राजा ने जातक कर्म कर प्रसन्न हो लाखों गाएँ, हाथी, घोड़े, सुवर्ण इत्यादि का दान दिया। राजा को कुमार से अत्यत प्रीति बढी, परतु रानी की सौतो को संतान न होने के कारण भारी परिताप हुआ। कुमार को उन्होंने विष दे दिया। पुत्र को जब मरा देखा तो राजा और रानी मूर्च्छित हो गिर पड़े।

रोने-पीटने का शब्द सुन सब सौते भी बनावटी शोक करने लगी। नारद जी के संग वही अगिरामुनि फिर उस समय आए। राजा को मुर्दे की नाईं और शोक से थकित देख दोनों ऋषियों ने अनेक उपदेश दिए। अंगिरा ऋषि बोले—हे राजा, जब तुमको पुत्र की इच्छा थी उस समय पुत्र के देनेवाले अगिरा हम है और यह नारद जी है। पहले मै जब आया था, ससार मे तुम्हारी आसक्ति देख तुमको पुत्र दिया। अब तुम जान गए कि पुत्रवालो को कैसा दुःख होता है। इसी प्रकार स्त्री, घर, धन और अनेक ऐश्वर्य सभी दु:खदायी है। नारद जी बोले कि हे राजा, हम तुम्हें शेष भगवान् की विद्या देते है। सात रात्रि अखंड चिंतन से तुम्हे शेष भगवान् के दर्शन होंगे। फिर नारद जी ने सबके देखते उस मरे बालक से कहा—हे जीवात्मा, अपने शरीर में प्रवेशकर और शोकपीड़ित माता, पिता, बंधु आदि को देख तथा अपनी शेष आयु को इनके साथ भोग और राज्य को अंगिकार कर। तब शरीर मे प्रवेशकर जीव बोला—मैं जो कर्मो के वश हो देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि अनेक योनियों में भटकता फिरता हूँ सो मेरे कौन से जन्म में यह मेरे माता पिता हुए थे? मेरे मरने से जो पुत्र जानकर शोक हुआ है तो शत्रु जान अब हर्ष क्यो नही करते? क्योकि सब संबधी अनुक्रम से आपस मे शत्रु-मित्र-भाव को प्राप्त हुआ करते हैं। मेरे पीछे अब इस देह से मेरा कुछ भी सबंध नही रहा। अतः इन माता पिता से भी मेरा कोई संबध नही है। इस लिये मेरे हेतु शोक न करना चाहिए। इतना कह जीव फिर उस शरीर से

निकल गया। राजा का शोक दूर हुआ। हत्यारी स्त्रियो ने भी लज्जित हो यमुना पर प्रायश्चित्त किया और ज्ञानप्राप्त चित्रकेतु को नारदजी संकर्पण मंत्र देकर चले गए। राजा तप करके संकर्पण भगवान् से वर पाकर कृतार्थ हो गया। नारद के उपदेश से राजा अंत को राज्यादि छोड़ विद्याधर हो विमान पर वैठ आकाश मार्ग मे घूमने लगा। यही पार्वती के शाप से वृत्रासुर हुआ जिसे दधीचि की अस्थि का वज्र वनाकर इंद्र ने मारा।

छाया

छाया सूर्य की दूसरी स्त्री का नाम है। सूर्य की पहली पत्नी का नाम संज्ञा था। उससे सूर्य को यम नामक एक पुत्र और यमुना नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। सूर्य के तेज को सहने मे असमर्थ हो सज्ञा उन्हे छोड़कर चली गई और अपनी छाया से एक स्त्री वनाकर सूर्य के पास रख गई। अपनी संतति की देखरेख का भार भी वह उसी पर छोड गई थी। सूर्य को छोड़कर वह अपने पिता विश्वकर्मा के यहाँ गई किंतु पति का त्याग करने के कारण पिता ने उसकी भर्त्सना की और पुनः पति के पास जाने की आज्ञा दी। इसपर वह कुरुवर्ष में चली गई और वहाँ अश्विनी के रूप मे इधर उधर विचरण करने लगी। इधर सूर्य को छाया से सावर्णि और शनैश्चर नामक दो पुत्र हुए। इसके वाद स्वभावतः छाया अपनी सतानो के सामने सपत्नी की सतानों की अवहेलना करने लगी। अप्रसन्न हो छाया ने यम को यह शाप दिया कि तुम्हारे पाँव गिर पड़े। इसपर सूर्य ने छाया की वहुत भर्त्सना की। यम से कहा कि तुम्हारे पाँव का मांस कीड़े पृथ्वी पर ले जाएँगे। आवेश में आकर छाया ने अपनी सारी कथा कह सुनाई। संज्ञा के लुप्त होने से सूर्य वहुत दुखी हुए और विश्वकर्मा के पास गए। दिव्य चक्षु से यह जानकर कि वह अश्विनी के रूप मे इधर उधर विचरण कर रही है, सूर्य स्वयं अश्व के रूप में उसके पास गए और उसके साथ

संभोग किया, जिससे अश्विनीकुमारो की उत्पत्ति हुई। जब सूर्य ने अपना तेज कम करने का वचन दिया तब फिर संज्ञा उनके पास गई।

जटायु

जाना जरठ जटायू एहा।
मम कर तीरथ छाड़िहि देहा।

—मानस, सो०–३

एक प्रसिद्ध गृद्धराज। ये दशरथ के मित्र थे। इनके पिता विनतानंदन सूर्य के सारथी अरुण थे। इनके भाई का नाम संपाती था। दोनों प्रबल पराक्रमी थे। एक बार इन्होंने आकाशमार्ग में उड़कर सूर्य का रथ रोकने का दुस्साहस किया था। जटायु पंचवटी में निवास करते थे। सीता का अपहरण कर आकाशमार्ग से जाते हुए रावण से इन्होंने युद्ध किया और प्रारंभ में रावण को पछाड़ भी दिया; किंतु अंत में रावण ने इनके पंख काट डाले और मुमूर्ष अवस्था में छोड़कर भाग गया। सीता को खोजते हुए राम ने मूर्छितावस्था में इन्हें देखा। इन्होंने राम के सामने ही प्राण त्याग दिए। राम ने अपने हाथों से इनकी अंत्येष्टि क्रिया की।

जनक

नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने।
बोले बचन क्रोध जनु साने॥

—मानस, सो०-१

अपने अध्यात्म तथा तत्व ज्ञान के लिये प्रसिद्ध एक विख्यात पौराणिक राजा, जो राजा निमि के पुत्र थे। एक समय निमि ने कई सौ वर्षों में समाप्त होनेवाले एक महायज्ञ की तैयारी की और उसका पौरोहित्य करने के लिये वशिष्ठ से अनुरोध किया, परंतु उस समय वे इंद्र के यज्ञ में व्यस्त थे। वशिष्ठ ने उनसे इंद्र का यज्ञ पूरा हो जाने तक के लिये रुक जाने को कहा। निमि मौन रहे और वहाँ से चले आए। वशिष्ठ ने समझा कि निमि ने सुझाव मान लिया; पर निमि ने गौतम आदि ऋषियों की सहायता से यज्ञ आरंभ कर दिया। जिससे रुष्ट हो वशिष्ठ ने इन्हें शाप दिया, प्रत्युत्तर में निमि ने भी शाप दिया। दोनों के शरीर भस्म हो गए। ऋषियों ने एक विशेष उपचार से निमि का शरीर यज्ञसमाप्ति तक सुरक्षित रखा। निमि निस्संतान थे। अतएव ऋषियों ने अरणि से इनके शरीर का मथन किया जिससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। मृत देह से उत्पन्न होने के कारण यही पुत्र जनक कहलाया। शरीरमंथन से उत्पन्न होने के कारण इनका एक नाम मिथि भी पड़ा। इन्होंने ही मिथिलापुरी बसाई। इनकी सत्ताइसवीं पीढ़ी में सीरध्वज जनक उत्पन्न हुए। जिनकी कन्या सीता थी, जो रामचंद्र की स्त्री हुईं। राजा निमि का वास सबकी पलकों पर माना जाता है।

जमदग्नि

एक प्रसिद्ध महर्षि। ऋग्वेद में इनका कई बार उल्लेख हुआ है। ये महर्षि ऋचीक के पुत्र थे। इनका विवाह राजा प्रसेनजित् की कन्या रेणुका के साथ हुआ

था। एक दिन इनकी स्त्री गंगास्नान करने गईं। वहाँ उन्होंने राजा चित्ररथ को अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीडा करते देखा, जिससे उनका मन विचलित हो गया और चित्ररथ के साथ व्यभिचार में प्रवृत्त हुईं। जब ये लौटीं तो ज्ञान-बल से जमदग्नि सब जान गए। एक एक करके पुत्रों को उनका वध करने को कहा, किंतु पिता के क्रोध से सब जड हो गए। अंत में पिता की आज्ञा से परशुराम ने माता का वध कर डाला। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने वर माँगने को कहा। परशुराम ने माता को पुनर्जीवित करने का वर माँगा। जमदग्नि ने ऐसा ही कर दिया। जमदग्नि की मृत्यु कार्तवीर्य के द्वारा हुई जब कि ये ध्यानमग्न अवस्था में थे। ये भी विश्वामित्र के विरोधी थे।

जम, (यमराज)

रवि ससि पवन वरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी।।

—मानस, सो०-१

सूर्य के पुत्र तथा यमुना के भाई थे। ऋग्वेद में इन्हें पितृ-लोक में जानेवाला प्रथम पिता कहा गया है। एक स्थान पर यम तथा यमी (यमुना) से पारस्परिक बातचीत भी है। यमी इनसे अपने साथ संभोग करने के लिये कह रही है। ऋग्वेद में यम के पाप तथा पुण्य के निर्णायक का भयंकर रूप कहीं भी नहीं है, फिर भी भयकरता है। उनके साथ दो भीषण कुत्तों का वर्णन मिलता है जिनके चार आँखें हैं तथा चौड़ी सी नाक है। ये यम के निवास-स्थान के द्वार पर खडे रहते हैं और पथचारियों के हृदय में भय उत्पन्न करते हैं। मनुष्यों के बीच भी ये अपने स्वामी के संदेशवाहकों के रूप में देखे जाते हैं। महाकाव्यों में इनको संज्ञा के गर्भ से उत्पन्न सूर्य का पुत्र कहा गया है। पुराणों में इनका मृत आत्माओं के पाप पुण्य के निर्णायकों के रूप में वर्णन है। मृत्युलोक में अपने शरीररूपी परिधान को छोड़कर आत्मा यमलोक जाती

है और वहाँ यम अपने लेखक चित्रगुप्त की सहायता से उनके जीवन का विवरण ज्ञात कर उसके संबंध में अपना निर्णय सुनाते हैं। यम के दूत जो आत्माओं को मृत्युलोक से ले जाते हैं, बड़े भयंकर बताए गए हैं। यम की पत्नियों का नाम हेममाला, सुशीला तथा विजया मिलता है। इनका निवास स्थान पाताल में स्थित यमपुर कहा जाता है। इनके दो मुख्य अनुचरों के नाम चंड अथवा महाचंड तथा कालपुरुष हैं। यम दक्षिण के दिक्‌पाल भी कहे जाते हैं। कुंती के गर्भ से उत्पन्न युधिष्ठिर इन्हीं के पुत्र थे।

जय

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोई।।

—मानस, सो०-१

यह विजय का भाई है। ये दोनों भाई विष्णु के द्वारपाल थे। एक बार इन्होंने सनकादिकों को विष्णु के पास जाने से रोका जिससे क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दे दिया। बहुत प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा कि विष्णु से या तो शत्रु भाव या मित्र भाव करके ही तुम लोग मुक्त हो सकते हो। वीरगति पाने के लिये इन्होंने शत्रुता को ही श्रेयस्कर समझा। अतः सतयुग में हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु और त्रेता में रावण तथा कुंभकर्ण के रूप में प्रकट हुए। वायु-मत से जय विजय का पुत्र था।

जह्नु

जह्नु कन्या धन्य, पुन्यकृत सगरसुत,

भूधर-द्रोनि विद्दरनि, बहुनामिनी।

—विनय०—१८

पुरूरवा के वंश में उत्पन्न एक प्रसिद्ध राजर्षि। इनके पिता का नाम अजमीढ तथा माता का नाम केशिनी था। एक बार ये यज्ञ कर रहे थे। उसी समय भगीरथ गंगा को लेकर उसी मार्ग से निकले। इनका सारा आश्रम जलमग्न हो गया। क्षुब्ध हो इन्होंने गंगा को पी लिया। भगीरथ आदि के बहुत प्रार्थना करने पर इन्होंने अपनी जांघ से गंगा को निकाल दिया। इसी कारण गंगा का एक नाम जाह्नवी पड़ा। गंगा इनसे विवाह करना चाहती थी किंतु इन्होंने युवनाश्व की कन्या कावेरी का पाणिग्रहण किया। इनके पुत्र का नाम पुरु था।

जावालि

·········वालमीकि जावालि।

आए मुनिवर निकर सब कौसिकादि तपसालि॥

—मानस

एक प्रसिद्ध ऋषि जो महाराजा दशरथ के मंत्री और पुरोहित। ये एक महान दार्शनिक थे। इन्होंने राम को निज मतावलंबी बनाने की चेष्टा की किंतु राम ने इनके मत का विरोध किया। ये एक नैयायिक थे। किसी विशेष कारण से इन्होंने अनीश्वरवाद संबंधी अपने मत प्रकट किए। वास्तव में ये एक बड़े हरिभक्त थे। नाभादास जी ने इन्हें प्रमुख हरिभक्तों की श्रेणी में रखा है।

जलंधर, जालंधर

एक बार सुर देखि दुखारे।
समर जलंधर सन सब हारे ।।

—मानस, सो–१

शिव के तृतीय नेत्र की अग्नि से उत्पन्न एक अति पराक्रमी राक्षस। एक समय इंद्र शिव के दर्शन के लिये कैलास गए। वहाँ उन्होंने एक भयंकर पुरुष को बैठे देखा। उससे उन्होने पूछा कि तू कौन है। कुछ भी उत्तर न मिलने पर देवराज ने अपना वज्रप्रहार किया जिस कारण उस पुरुष का कंठ नीलवर्ण हो गया और भाल स्थित तृतीय नेत्र खुल गया। अग्नि की ज्वाला निकल कर इंद्र को भस्म करने लगी। इंद्र की समझ में अब आ गया कि वे साक्षात् शिव है। इंद्र प्रार्थना करने लगे। शंकर ने वह अग्नि समुद्र में फेंक दी, जिससे एक बालक उत्पन्न हुआ और घोर रव के साथ रोने लगा। वह रव इतना भयानक था कि सारा संसार बहरा हो गया। ब्रह्मा के आने पर समुद्र ने उन्हे बालक को सौपकर उसकी रक्षा करने के लिये कहा। ब्रह्मा ने उसे अपने गोद मे ले लिया पर गोद में लेते ही उसने इतने जोर से ब्रह्मा की दाढ़ी नोचनी शुरू की कि उनके नेत्रों से जल बहने लगा। तब ब्रह्मा ने उसका नाम जालधर रख दिया और वर दिया कि शिव के सिवाय उसे कोई मार न सकेगा।

मतांतर से इसकी उत्पत्ति स्वर्ग नदी गंगा तथा समुद्र के संयोग से हुई। पैदा होते ही यह त्रैलोक्यभेदी भयानक स्वर से रोने लगा। संसार काँपने लगा। ब्रह्मा स्वयं आए और उसे असुरो का राज्य दिया। उसे वर दिया कि वह स्वर्ग और पाताल का राजा हो। इसने इंद्र को परास्त किया। मय दैत्य ने इसकी राजधानी की रचना की। शुक्राचार्य ने इसे संजीवनी विद्या दी। इसने वृंदा नामक कन्या से विवाह किया था। देवताओ ने इसके अत्याचारों से तंग आकर विष्णु से प्रार्थना की। लक्ष्मी के रोकने पर भी विष्णु गए। बहुत दिनो तक युद्ध होता रहा। अंत में प्रसन्न हो विष्णु वरदान देकर

चले गए। कालांतर में इसने नारद से पार्वती की सुंदरता सुनी। पार्वती को स्त्रीरूप में ग्रहण करने की इसमें इच्छा उत्पन्न हुई। निशुंभ शुंभ, कालनेमि आदि राक्षसों को साथ ले इसने कैलास पर आक्रमण किया। शंकर की सेना से पार न पाकर गान्धर्वी विद्या से शिव को मोहित कर यह स्वयं शिवरूप धारण कर पार्वती के पास गया। पार्वती को जब यह ज्ञात हुआ कि यह राक्षस है तब वह गुप्त हो गई और विष्णु की शरण में गईं। जालंधर को यह वर था कि जब तक उसकी पत्नी का सतीत्व धर्म नष्ट नहीं होगा, तब तक कोई उसे मार न सकेगा विष्णु ने जालंधर का रूप धारण करके उसका सतीत्व नष्ट किया। ज्ञात होने पर वृंदा ने विष्णु को शाप दिया कि त्रेतायुग में उनकी पत्नी राक्षस के द्वारा अपहृत होगी और वह वन वन भटकते फिरेंगे। वृंदा ने अपने पति को प्राप्त करने के लिये घोर तपस्या की। जिस स्थान पर उसने तपस्या की थी उसका नाम वृंदावन हो गया। एक बार फिर उसे पति के दर्शन हुए और अंत में विष्णु ने चक्र से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। इसके शव के स्थान पर एक अपूर्व तेज निःसृत हुआ जो शिव के तेज से मिल गया। वृंदा ने अग्नि में प्रवेश किया।

तक्षक

अष्टकुली महासर्पों मे एक प्रसिद्ध सर्पराज। इसकी माता का नाम कद्रू तथा पिता का नाम कश्यप था। शृंगी ऋषि के शाप से इसने ही राजा परीक्षित को काटा था। अन्य सर्पों के साथ तक्षक भी वैकुंठ के द्वारपाल माने गए हैं। इसी लिये हरिदर्शन की इच्छा रखनेवालो के लिये इन्हे प्रसन्न रखना अनिवार्य है।

ताड़का

चले जात मुनि दीन्ह देखाई।
सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥

—मानस, सो०-१

सरयू और गंगा के पास पूर्व युग में देवताओं के बनाए 'मलद' और 'करुष' दो देश थे। वे देश सुंद के अधिकार में थे। उस समय सुकेतु नाम का एक वीर्यवान् और संतानहीन यक्ष था। उसने संतति के लिये महातप किया। ब्रह्मा ने उसे ताड़का नाम की अति रूपवती कन्या दी और उस कन्या को सहस्र हाथी का बल दिया। जब वह युवती हुई तब सुकेतु ने सुंद से उसे व्याह दिया। जब अगस्त्य मुनि के शाप से सुंद मारा गया तब ताड़का अपने पुत्र मारीच को साथ ले क्रोध से मुनि को खाने दौड़ी। मुनि ने पुत्र के साथ अपने ऊपर उसे दौड़ते देख मारीच से कहा, 'तू राक्षस हो,' और ताड़का से कहा, 'तू पुरुष को खानेवाली हो' और इस रूप को छोड़ भयंकर रूप धारण करो'। इस शाप से क्रोधित हो ताड़का अगस्त्य मुनि की तपोभूमि को उच्छिन्न कर डालती थी। विश्वामित्र जी के बहुत समझाने पर ही श्रीरामचंद्र जी ने ताड़का स्त्री को मारकर मुनि की रक्षा की।

अन्य मत

ताड़का (ताटका)

अन्य मतानुसार ताड़का यक्ष सुकेतु की कन्या (मतांतर से सुंद नामक दैत्य की कन्या) थी। यह मारीच और सुबाहु की माता और एक प्रसिद्ध राक्षसी थी। रामचरित मानस के प्रथम सोपान में इसका संक्षिप्त वर्णन है। यह अगस्त्य ऋषि

के शाप से राक्षसी हो गई थी और सरयू के किनारे ताड़क नामक वन में निवास करती थी। उस प्रदेश में इसके उत्पात से त्राहि त्राहि मची थी। यह विश्वामित्र के दैनिक यज्ञ विधान में बाधा डालती थी। अत इसका वध करने के लिये वह दशरथ के किशोर राम और लक्ष्मण को ले आए। पहले तो स्त्री जानकर उसका वध राम को अनुचित प्रतीत हुआ, किंतु माया के बल से जब वह उपलवृष्टि करने लगी तब विश्वामित्र की आज्ञा से राम ने उसका वध कर डाला।

तारक

तारक असुर भएउ तेहि काला।
भुज प्रताप बल तेज बिसाला॥
—मानस, सो०-१

एक प्रसिद्ध असुर। इसने पारियात्र पर्वत पर बड़ा उग्र तप किया और ब्रह्मा से अमरत्व का वर माँगा, पर वह संभव नही था। अंत मे उसे यह वर मिला कि सात दिन के बच्चे के हाथ से उसकी मृत्यु होगी। दस सहस्र वर्ष तप करके त्रैलोक्य मे वह अजेय हो गया। उसने इंद्रादि देवताओं को परास्त कर त्रैलोक्य में अपना वैभवविस्तार किया। देवताओ ने शिव से यह प्रार्थना की कि आपके नवजात शिशु के द्वारा ही राक्षस का वध होगा। देवताओ की रक्षा के विचार से शंकर ने पार्वती से विवाह किया जिसके फलस्वरूप देवसेनापति स्कंद का जन्म हुआ। जन्म के सातवे दिन इन्होने राक्षस का वध किया। त्रिपुर के जन्मदाता तारकाक्ष (ताराक्ष), कमसाक्ष तथा विद्युन्माली इसके पुत्र थे।

तारा

तारा विकल देखि रघुराया ।
दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया ॥

—मानस, सो०-४

तारा वानरराज वालि की स्त्री थी । यह सुषेण नामक वानर की पुत्री थी । यह पंचकन्याओ मे से एक गिनी जाती है। अगद इसी के पुत्र थे । वालि की मृत्यु के बाद तारा अपने देवर सुग्रीव के साथ पत्नी रूप मे रहने लगी थी।

तुंबरु

मिला असुर विराध मग जाता ।
आवत ही रघुबीर निपाता ।।

—मानस, सो०-३

ब्रह्मा की सभा मे, नारद के साथ ईश्वर का गुणगान करनेवाले संगीत विद्या मे विशारद एक ऋषि। ये कश्यप तथा प्राधा के पुत्रों मे से एक थे । इनकी स्त्री रभा थी । यह रंभा पर आसक्त हुए जिससे कुबेर ने इन्हें शाप देकर विराध नामक राक्षस मे परिवर्तित कर दिया था । त्रेता मे राम से युद्ध करने पर इसकी मृत्यु हुई और यह अपने पूर्व रूप को प्राप्त हुआ । तबूरा नामक वाद्यमत्र के आविष्कारक यही थे । अतएव इन्ही के नाम पर इस वाद्ययंत्र का तंबूरा नाम पड़ा ।

तुलसीदास

नाम राम को कल्पतरु कलि कल्यान निवास ।
जो सुमिरत भए भाँग ते तुलसी तुलसीदास ।।
—मानस, सो०–१

हिंदी के सुप्रसिद्ध भक्त कवि, राम के अनन्य उपासक और रामकाव्य के सर्वश्रेष्ठ स्रष्टा । अशुभ मुहूर्त मे जन्म लेने और असाधारण शिशु होने के कारण पिता ने इनका परित्याग कर दिया और माँ मर गई । वचपन घोर दरिद्रता और तज्जन्य कष्टो में वीता । छोटी अवस्था मे ही साधुओं की संगति मिल जाने से रामकथा पर इनकी अनन्य आस्था हो गई । योग्य गुरु ने इन्हें प्रकाड पंडित वना दिया । फिर ये एक योग्य कथावाचक के रूप में प्रसिद्ध हुए । शादी हुई और पत्नी मे एकात आसक्ति । एक वार जव वह इनसे विना वताए अपने पितृगृह चली गई तो भरी चढी यमुना को मुर्दे के सहारे पार करके घर की छत से लटकते साँप को रस्सी समझ कर उसके सहारे ऊपर चढकर ये पत्नी के पास जा पहुँचे । तभी पत्नी ने व्यंग्य कर दिया जिसने इन्हें इतना आहत किया कि ये उल्टे पाँव लौट पड़े । घर बार त्याग दिया । तीर्थयात्राएँ की । भगवान् राम के दर्शन प्राप्त किए । घूम-घूम कर रामभक्ति का प्रचार किया । हिंदू जाति और हिंदी साहित्य के अमूल्य रत्न 'रामचरितमानस के प्रणेता ये ही है। विनयपत्रिका इनकी दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक है । इनके अतिरिक्त कवितावली, गीतावली, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल आदि दस काव्यग्रंथ भी इन्ही के लिखे हुए है । इनके जीवन के सभी वातों के संवंध में केवल रामभक्ति को छोड़कर वहुत मतभेद है । जनश्रुतियो और चमत्कारो ने मिलकर वास्तविकता को वहुत छिपा लिया है ।

तृणावर्त

एक राक्षस जो कंस का एक अनुचर था। कंस ने इसे भी कृष्ण का वध करने के लिये गोकुल भेजा था। दशम स्कंध में इसकी कथा इस प्रकार कही गई है--एक बार यशोदा कृष्ण को गोद में लेकर खिला रही थीं। इसी समय तृणावर्त वातचक्र का रूप धारण कर वहाँ आया। कृष्ण उसे देखते ही पहचान गए और यह सोचकर कि यदि मैं माता की गोद में रहूँगा, तो यह उन्हें भी मेरे साथ ही उड़ा ले जायगा, जिससे उन्हें विशेष कष्ट होगा। उन्होंने अपने शरीर का भार बढ़ा लिया। यशोदा ने उन्हें गोद से उतार दिया। तृणावर्त क्रोध से भरा हुआ तथा गोकुल के गोप-गोपियों की आँखों में धूल और कंकड़ मारता हुआ आया और कृष्ण को आकाश में उड़ा ले गया। यशोदा यह देखकर बहुत घबरा गईं। गोकुल के गोप गोपी भी कृष्ण के लिये रोने-धोने लगे। कृष्ण ने तीनों भुवनों का भार अपने उदर में धारण कर लिया जिससे तृणावर्त ने समझा कि संभवतः उसने कोई पहाड़ धोखे में उठा लिया है और डगमगाने लगा। उसने कृष्ण को गिराने का प्रयत्न किया और कृष्ण ने उसका गला पकड़ लिया और अपनी विपुल शक्ति से उसे इतना दबाया कि दृगों के मार्ग से उसके प्राण निकल गए। उसका शरीर व्रज की एक शिला पर गिरा और कृष्ण उसकी छाती पर खेलने लगे। इस प्रकार कृष्ण के द्वारा तृणावर्त का अंत हुआ।

त्रिकूट

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी।
विधि निर्मित दुर्गम अति भारी॥

—मानस, सो०-१

तीन चोटी वाले एक पर्वत का नाम। इसी के एक शिखर पर लंकेश रावण की पुरी लंका बसी हुई थी।

त्रिगुण

तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास ते काढ़ि ।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, वाती करै सुगाढ़ि ॥

—मानस, सो०–७

हिंदू शास्त्र के अनुसार सत्, रज और तम—तीन गुण माने गए हैं। देवताओं मे सत्, मनुष्यों मे रज तथा राक्षसों में तम प्रधान रहता है। ये तीनों गुण चराचर सभी प्राणियों मे पाए जाते हैं।

त्रिजटा

त्रिजटा नाम राछसी एका ।
राम चरन रति निपुन विवेका ॥

—मानस; सो०–५

लंका की एक राक्षसी जो अशोक वाटिका में सीता की देखभाल के लिये रखी गई थी। इसने स्वप्न में देखा कि रावण का नाश होगा। इसने ही व्यवस्था की थी कि सीता को कोई कष्ट न हो। इसका नमांतर 'धर्मज्ञा' था।

त्रिपुर

काल अतिकाल कलिकाल-व्यालाद-खग,
त्रिपुर-मर्दन भीम कर्म भारी।
सकल लोकांत-कल्पांत शूलाग्रकृत,
दिग्गजाव्यक्त-गुण नृत्यकारी ॥

—विनय, ११

तारकासुर के तीन पुत्रों ने मय दानव द्वारा तीन मायामय नगर बनवाए थे। इन्हीं तीनों को त्रिपुर कहते हैं। तारकासुर के तीनों पुत्र तारकाक्ष, कमलाक्ष तथा विद्युन्माली—ने घोर तप किया। उन्हें ब्रह्मा द्वारा यह वर मिला कि तीनों भाई तीन स्वतंत्र नगर बसाएँगे। एक सहस्र वर्षों के बाद ये तीनों नगर एक में मिल जाएँगे। इन तीनों पुरों को जो एक ही बाण से नष्ट कर देगा वही इनका संहार कर सकेगा। तीनों भाइयों ने मिलकर सुवर्णमय, रजतमय तथा लौहमय नगर बसाए। ब्रह्मा की घोर तपस्या करके तारकाक्ष ने हरि नामक एक पुत्र प्राप्त किया। इन वरदानों से निर्भय हो ये राक्षस मनमाने अत्याचार करने लगे। सब देवता ब्रह्मा के पास गए। इंद्रादिक के प्रार्थना करने पर शिव चले। ब्रह्मा उनके सारथी बने। तीनों पुरों के मिलने पर शिव ने एक ही बाण से त्रिपुर को नष्ट कर दिया। तभी से शिव का एक नाम 'त्रिपुरारि' भी पड़ा।

त्रिविक्रम

जबहिं त्रिविक्रम भएउ खरारी।
तब मैं तरुन रहेउँ बलभारी ॥

——मानस, सो०-४

विष्णु का एक पर्याय है। विष्णु के वामन अवतार के लिये यह नाम आता है जिसमें उन्होंने तीन पग मे स्वर्ग, मृत्य और पाताल लोक नाप लिए थे। मतांतर से विष्णु के ये तीन पग उदय, मध्य और अस्तकाल के प्रतीक है। एक अन्य मत से ये अग्नि, वायु तथा सूर्य तत्व के द्योतक है।

त्रिशंकु

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू ।
केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ।।

—मानस, सो०–२

जब महर्षि विश्वामित्र ब्रह्मर्षि पद के लिये स्त्री सहित वन मे जाकर उग्र तपस्या कर रहे थे, उसी समय इक्ष्वाकुवंश के राजा त्रिशंकु ने अपने पुरोहित महात्मा वशिष्ठ मुनि को बुलाकर कहा, 'महाराज मैं ऐसा उपाय करना चाहता हूँ कि इसी देह से स्वर्ग चला जाऊँ।' वशिष्ठ मुनि बोले कि 'यह बात अशक्य है।' तब राजा ने गुरु पुत्रों के पास जाकर अभिलाषा प्रकट की। गुरु पुत्रो ने यह जानकर कि हमारे पिता वशिष्ठ ने स्वयं अशक्यता मानी है, गुरुपुत्रों ने राजा का तिरस्कार किया और बोले कि 'जो वशिष्ठ नही करा सके, हमसे कब हो सकता है।' इसपर राजा ने कहा 'अच्छा अब हम तीसरे के पास जाते है, आप को स्वस्ति हो।' राजा का यह अनादर वचन सुन ऋषिपुत्रों ने शाप दिया कि 'तू चांडाल हो जायगा।'

रात बीतने पर राजा के वस्त्र और शरीर नीले हो गए, शिखा झड़ गई। देह में भस्म लिपट गया। गले में हड्डियों की माला पड गई और सब आभूषण लोहे के हो गए। राजा का यह रूप देख उसके सब अनुचर भाग गए।

राजा दु:खित हो धीरजधर विश्वामित्र के पास आया। ऋषि ने पहचान लिया और उनका सत्कार किया। सारे समाचार सुने। राजा को पूर्ण आश्वासन दिया। उन्हे सदेह स्वर्ग भेजने के लिये यज्ञ आरभ किया। ऋषियों और देवताओ को निमंत्रण भेजा, परइस यज्ञ के निमत्रण पर वशिष्ठ और उनके पुत्रों ने दुर्वचन कहे। इसपर विश्वामित्र जी ने उन्हें शाप दिया। अन्य ऋषियो ने विश्वामित्र के डर से यज्ञ का विधिवत् अनुष्ठान किया। परतु जब देवगण न आए तो क्रुद्ध हो विश्वामित्र ने अपने तपोदल से त्रिशंकु को स्वर्ग भेजा। परंतु वहाँ पहुंचते ही इद्र ने उन्हे लौटा दिया। गिरते हुए त्रिशकु ने विश्वामित्र की दुहाई दी। राजा की यह दशा देख विश्वामित्र क्रुद्ध हो बोले, 'तिष्ठ तिष्ठ' (ठहर ठहर) और ऋषियो के मध्य मे दक्षिण मार्ग में दूसरे सप्तर्षिमडल और नक्षत्रमाला वनाने लगे। फिर दूसरा इद्र अथवा विना इंद्र का ही लोक वनाने लगे। देवगणों का वनाना भी आरंभ किया। तव तो देवता ऋषि और दैत्य, सव घवराए और विश्वामित्र के पास आकर विनयपूर्वक वोले, 'हे तपोधन! यह राजा गुरु के शाप से पतित है, इसलिये सदेह स्वर्ग नही जा सकता।' विश्वामित्र जी ने उत्तर दिया 'हे देवताओ! मैने इसे सदेह स्वर्ग पहु-चाने की प्रतिज्ञा की है। वह अवश्य होगा। इसके लिये स्वर्ग वना रहेगा। और मेरे वनाए ध्रुव सहित नक्षत्र भी स्थिर रहेगे, इसमे आप लोग भी सम्मत हों।' देवता वोले 'ऐसा ही होगा।' देवता इस प्रकार आश्वासन दे और उनकी स्तुति कर चले गए।

विश्वामित्र और राजा हरिश्चंद्र

सिवि, दधीचि, हरिचंद नरेसा।
सहे धरम हित कोटि कलेसा॥
—मानस, सो०-२

अयोध्या के राजा हरिश्चंद्र वड़े धर्मात्मा और सत्यव्रत थे। इंद्र उसका

यश सह न सका और किसी तरह उन्हें नीचा दिखलाने का विचार किया। उसने विश्वामित्र को परीक्षा के लिये उभाड़ा। एक रात स्वप्न में विश्वामित्र ने सारी पृथ्वी राजा हरिश्चंद्र से दान ले ली और दूसरे दिन सवेरे जाकर उसकी दक्षिणा माँगी। राजा ने सारा राज्य उन्हें सौंप दिया और दक्षिणा चुकाने के लिये कुछ काल की अवधि माँगी। विश्वामित्र ने मान लिया और राजा सकुटुंब काशी की ओर चल पड़ा। मार्ग मे अनेक प्रकार के कष्ट सहते हुए जब काशी पहुँचे तो ऋषि ने उन्हे आ घेरा और दक्षिणा के तकाजे शुरू कर दिए। अत मे राजा ने अपने को और अपनी पत्नी को भी बेच दक्षिणा चुकाई। अपने को डोम के चौधरियों के हाथ बेचा और उसने उन्हे यह काम सौंपा कि श्मशान पर जितने लोग मुर्दा जलाने आवें सभी से कफन का टुकड़ा लेकर तब जलाने देना। इंद्र की कुटिलता और नीचता का अब भी अत न हुआ। राजा का एक मात्रपुत्र रोहित मर गया और रानी उसे जलाने के लिये मरघट पर ले गई, पर सत्यव्रत हरिश्चंद्र ने बिना कर लिए जलाने न दिया। यह जानकर भी कि मेरा ही पुत्र मर गया है, और मेरी ही पत्नी विलाप कर रही है, दृढ राजा हरिश्चद्र सत्य और धर्ममार्ग से विचलित न हुए। अत मे रानी ने चाहा कि अपने शरीर का वस्त्र आधा फाड़कर दूँ और वह ऐसा किया ही चाहती थी कि पृथ्वी काँपने लगी और देवताओं ने हाहाकर मचाया। उसी समय शिवजी ने प्रकट हो सबको समझाया और इंद्र, विश्वामित्रादि सबने राजा की प्रशसा की और अपना छल एवं परीक्षा स्वीकार कर राज्य लौटा दिया। पुत्र रोहिताश्व भी जी उठा।

त्रेता

त्रेता बिस्नु मनुज तनु धरिही।
तासु नारि निसिचरपति हरिही।

—मानस, सो०-४

त्रेता--सतयुग के बाद और द्वापर के पूर्व आनेवाले एक युग का नाम। इसी युग मे राम का अवतार हुआ। इसका काल १,२९६,००० वर्ष माना गया है।

दंडपाणि

भागवत के अनुसार उशीनर के पुत्र। वायु पुराण के अनुसार ये मेधावी के पुत्र थे। काशी खड मे कथा है कि पूर्णभद्र नामक एक यक्ष को हरिकेश नाम का एक पुत्र था जो महादेव का वडा भक्त था। एक वार जव उसने घोर तप किया तव महादेव पार्वती सहित इसके पास आए और बोले तुम काशी के दडधर हो। वहाँ के दुष्टो का शासन और साधुओ का पालन करो। संभ्रम और उद्भ्रम के मेरे दो गण तुम्हारी सहायता के लिये सदा तुम्हारे पास रहेंगे। विना तुम्हारी पूजा किए कोई काशी मे मुक्ति नही पा सकेगा।

दधिमुख

द्विविद मयंद नील नल अंगद गद विकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवंत वलरासि॥

—मानस, सो०-५

राम की सेना का एक वीर वानर। यह सोम के पुत्र और गंभीर प्रकृति के योद्धा थे। जिस समय ये राम की सेना मे आए, उस समय वृद्ध हो चुके थे। राम के अश्वमेधयज्ञ मे शत्रुघ्न के साथ अश्वरक्षा की करनेवाली सेना के साथ यह भी थे।

दधीचि

सिवि दधीचि बलि जो कछु भाषा।
तन धन तजेउ बचन पन राखा।

—मानस, सो०-२

जब वृत्तासुर इंद्रादि देवताओ पर दौड़ा, तब देवता अपने अस्त्रशस्त्र से युद्ध करने लगे। वह देवताओं के सब अस्त्रशस्त्र लील गया। देवता घबराकर इधर उधर भागे और फिर सब इकट्ठा हो नारायण की स्तुति करने लगे। भगवान् से दर्शन दिया और कहा, 'तुम लोग मत घबराओ, यह तुम्हे मार न सकेगा। मै जो युक्ति बताता हूँ उससे तुम इसे मारो। दधीचि मुनि बड़े तपस्वी और धर्म के जाननेवाले है, तुम उनके पास जाओ और विद्या, व्रत और तप से दृढ़ हुए उनका शरीर माँगो, देर मत करो। वे तुमको अपनी अस्थि दे देंगे, और उनसे विश्वकर्मा तुमको वज्र नामक शस्त्र बना देंगे, उससे तुम वृत्रासुर का सिर उड़ा दोगे।' इतना कह नारायण तो अतर्धान हो गए और देवताओं ने ऋषि से प्रार्थना की। दधीचि मुनि प्रसन्न हो बोले कि 'हे देवताओ, क्या तुम नही जानते कि संसार मे सबको अपना जीवन और देह सबसे अधिक प्यारा है? फिर कौन अपनी देह स्वय देने को तैयार होगा?' देवता बोले कि 'आप जैसे माहात्मा जो प्राणियो पर दया करनेवाले परोपकाररत हैं उनको क्या परित्याग करना अशक्य है? जो माँगनेवालो के संकट को जानते है वे समर्थ होने पर 'नाही' नही करते।' मुनि बोले कि 'मैने केवल तुम्हारे मुख से धर्म की बात सुनते ही को इतना कहा था। अस्तु यह देह जो एक दिन मुझे छोड़ देगी उसे मैं तुम्हारी प्रसन्नता के लिये स्वयं छोड़ता हूँ; पराये दु ख से दु.खी और सुख मे सुखी होना यही महात्माओ का कर्तव्य है।' इतना कह भगवान् के स्वरूप मे लीन हो मुनि ने देह त्याग दिया। इनकी हड्डियों से विश्वकर्मा ने वज्र बनाया, जिससे इंद्र ने वृत्रासुर को मारा।

———

दनु

दक्ष प्रजापति तथा आसक्ति की कन्या कश्यप की स्त्री तथा दानवों की माता, वृत्रासुर इन्ही का पुत्र था जिसे दधीचि की हड्डियों से निर्मित वज्र से इंद्र ने मारा था। मतांतर से विप्रचित्ति, बल, वीर और वृत्र नामक दानवों की माता दनायु थी। एक दूसरे मत से दनु ने शंबर, नरक, वृषपर्वा, निकुंभ, प्रलंब तथा दनायु आदि ४० दानवों को जन्म दिया। वास्तव मे दिति (दैत्यों की माता), दनु और दनायु ये तीनो ही कश्यप की स्त्री और यावत् दैत्य, दानवों की जन्मदात्री थी, जिन्होंने देवताओं से बराबर युद्ध किया। कई हार जीत के बाद अंत मे ये मारे गए।

दुंदुभि

दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए।।

—मानस, सो०-४

एक राक्षस। मयासुर और हेमा नाम की अप्सरा के दो पुत्रों से एक। दुंदुभि दीर्घ काल तक तपस्या करके सहस्र हाथियों के बल का वरदान पाकर भैंसे के रूप मे स्वतंत्र विचरण करने लगा। वानरराज वाली ने इसे मारकर मतंग ऋषि के आश्रम मे फेंक दिया। मृत दुंदुभि के रक्त से आश्रम गंदा हो गया। इससे क्रुद्ध हो मतंग ने वाली को शाप दिया कि इस आश्रम मे आते ही तेरी मृत्यु हो जायगी। इस कारण वह आश्रम वाली के लिये अगम्य और सुग्रीव, जो वाली से डरता था, के लिये सुगम हो गया। कालांतर मे वहीं पर वनवासी राम से सुग्रीव ने मित्रता की। राम ने अपनी शक्ति का परिचय देने के लिये इसकी हड्डियों को अपने पैर के एक अँगूठे के धक्के से १६ योजन दूर

फेंक दिया। कहा जाता है कि इसने १६ हजार स्त्रियों को बंदिनी बनाया था। इसने एक लाख स्त्रियों से विवाह करने की प्रतिज्ञा की थी।

देवहूति

देवहूति पुनि तासु कुमारी।
जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥

—मानस, सो०–१

स्वायंभुव मनु की कन्या तथा कर्दम प्रजापति की स्त्री। इनके कपिल नामक पुत्र तथा नौ कन्याएँ थी। महर्षि कपिल ने इन्हें सांख्य की शिक्षा दी थी। इसके बाद शरीर त्यागकर इन्होंने नदी का रूप धारण किया।

द्विविद

द्विविद मयंद नील नल अंगद गद विकटासि।

—मानस, सो०– ५

एक प्रसिद्ध वानर वीर। यह सुषेण का पुत्र, मयंद का भाई, सुग्रीव का मंत्री, किष्किधा का राजा और नरकासुर का मित्र था। कृष्ण द्वारा नरक के

मारे जाने पर यह कृष्ण और बलराम दोनों को त्रास देने लगा। अंत में बलराम के हाथ से मारा गया।

धर्म

धर्म सकल सरसीरुह वृंदा।
होइ हिम तिन्हहिं दहइ सुख मंदा॥
—मानस, सो०-३

ब्रह्मा के एक मानस पुत्र। मतांतर से इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के दक्षिणअंग से अंग से हुई। उत्पन्न होते ही ब्रह्मा ने इनसे कहा, 'तुम चार पैरवाले बैल के आकार के हो जाओ और प्रजा का पालन करो।' गुण, द्रव्य, क्रिया और जाति —ये ही धर्म के चार पैर हैं। कृतयुग में धर्म चारो पैरों से, त्रेता मे तीन, द्वापर मे दो और कलियुग मे एक पैर से प्रजा की रक्षा करता है। एकादशी तिथि मे धर्म का वास है।

धर्म एक प्रजापति थे। दक्ष प्रजापति ने अपनी तेरह कन्याएँ इन्हे व्याह दी थी। इनके नाम थे—श्रद्धा, मैत्री, दया, शाति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, वुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री तथा मूर्ति। इनमे प्रथम वारह से क्रमशः शुभ, प्रसाद, अभय, सुख, मुद, स्मय, योग, दर्प, अर्थ, स्मृति, क्षेम तथा प्रमम नामक पुत्र और मूर्ति से नर-नारायण नामक ऋषि उत्पन्न हुए। भागवत मे इनकी स्त्रियों और पुत्रों के भिन्न नाम दिए गए है। पहले धर्म का जब महादेव के शाप से नाश हो गया तब वैवस्वत मन्वंतर मे ब्रह्मा ने धर्म को फिर उत्पन्न किया। तात्पर्य यह है कि धर्म की उत्पत्ति प्रत्येक युग मे होती है। धर्म की

स्त्रियाँ तथा पुत्रों के नाम वास्तविक व्यक्तियों के न होकर धर्म के सहायक सद्-गुणों के है।

ध्रुव

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ।
पाएउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥
—मानस, सो०-१

आदि कल्प के पहले मनु के पुत्र राजा उत्तानपाद की दो स्त्रियाँ थी—सुनीति और सुरुचि। दोनों रानियो मे से छोटी सुरुचि पर राजा का अधिक प्रेम था। इनके एक एक पुत्र भी था। बड़ी सुनीति के पुत्र का नाम ध्रुव और छोटी सुरुचि के पुत्र का नाम उत्तम था। एक समय राजा उत्तम को गोद में बैठाकर प्यार कर रहे थे। उसी समय सुनीति का पुत्र ध्रुव भी खेलते खेलते आकर राजा की गोदी मे चढ़ने लगा। परंतु राजा ने कुछ आदर या प्यार न किया। गोदी मे चढने का अभिलाषी देख विमाता ध्रुव से डाह से बोली 'बेटा, तुम राजा के पुत्र तो हो, पर मेरे गर्भ से उत्पन्न नही हुए। इसलिये राजा के आसन पर चढ़ने योग्य नही हो। तुम चाहो तो तप से परमेश्वर की आराधना करो कि मेरे गर्भ से जन्म धारण करो।' विमाता का ऐसा दुर्वचन सुन ध्रुव का हृदय ग्लानि से विध गया और क्रोध से भर होंठ फड़काते रोते हुए, उदास मुख दीर्घ श्वास लेते वह अपनी माता सुनीति के पास चला आया। रानी सब वृत्तांत सुन अपने पुत्र ध्रुव से यों बोली, 'हे तात, किसी को दोष मत दो। सुरुचि ने जो कहा है सो ठीक ही है क्योंकि एक तो तुम मुझ दुर्भागिनी से जन्मे, फिर मेरे ही दूध से पले। सो हे बेटा, यदि तुम उत्तम के ऐसा राज्यासन चाहते हो तो भगवान् की आराधना करो। भगवान् के सिवाय तुम्हारा दुःख मिटानेवाला कोई नहीं है।' माता का ऐसा वचन सुन बुद्धि को स्थिर कर ध्रुव घर से निकले। ध्रुव के इस अभिप्राय को जान मार्ग

में नारद जी मिले और उनके माथे पर हाथ धर कर बोले, 'वाह रे क्षत्रियों के मान भंग का प्रभाव कि ऐसा छोटा बालक भी विमाता का दुर्वचन न सह सका।' फिर उन्होंने ध्रुव से कहा, 'हे पुत्र ! अभी तू बालक है, असंतोष मत कर। दु:ख सुख सब कर्मों के अनुसार होता है। हठ छोड दे, जब बड़ा हो तब तपस्या का साहस करना।' दृढमति ध्रुव बोले, 'आप ने जो कुछ कहा सब ठीक है परंतु मुझ घोर क्षत्रिय स्वभाव को प्राप्त दुर्विनीत के हृदय मे वह नही ठहर सकता क्योंकि विमाता सुरुचि के वाक्य से मेरा हृदय विदीर्ण हो गया है। हे ब्राह्मण, मैं ऐसा त्रिलोकी पद को जीतना चाहता हूँ जहां मेरे पिता या और कोई भी न पहुँच सके। इसके लिये जो उत्तम मार्ग हो सो बताइए।' ध्रुव के ऐसे दृढ वचन सुन नारदजी प्रसन्न हुए और द्वादशाक्षर मंत्र ध्यानादि सहित बताकर कहा कि तुम यमुना जी के तट पर मधुवन मे जाकर ईश्वर का ध्यान और तप करो। एकाग्रचित्त हो बालक नारद के आज्ञानुसार भगवान् का भजन करने लगा। उसने प्रथम मास मे प्रत्येक तीसरी रात्रि के अंत में कैथ और बेर खाकर भगवान् का अर्चन किया। दूसरे मास मे छठे छठे दिन आप से गिरे पत्ते और घास खाकर अर्चन किया। तीसरे मास मे नवें नवें दिन जलमात्र पीकर। चौथे मे बारहवें बारहवे दिन पवनमात्र पीकर तथा श्वास रोककर ईश्वर का ध्यान किया और पाँचवें मास मे श्वास रोककर एक पैर से वृक्ष की नाई अचल होकर तप करने लगा। ऐसे उग्र तप से भगवान् का आसन डोल गया। भगवान् गरुड पर चढ भक्त ध्रुव के संमुख साक्षात् प्रकट हुए और उसकी ध्यानमूर्ति को खीच लिया, जिससे घबराकर उसने आँखे खोल दीं। सामने वही मूर्ति देख उसने दंडवत् किया और स्तुति करने की अभिलाषा करता था परंतु बालक होने के कारण स्तुति करना नही जानता था। इस अभिप्राय को समझ भगवान् ने अपना शंख बालक के गालों मे छुआ दिया जिससे वह दैवी वाणी को प्राप्त कर भक्तिपूर्वक भगवान् की स्तुति करने लगा। जब स्तुति कर चुका, भगवान् बोले 'हे राजपुत्र, मैं तेरे हृदय के संकल्प को जानता हूँ। तेरा कल्याण होगा और जिस पद को आज तक कोई नही पहुँचा और जिसका प्रलय तक नाश नही होता तथा जिसके चारों ओर ग्रह, नक्षत्र, तारा और सप्तर्षि आदि सब परिक्रमा करते है वह अति दुर्लभ पद मैं तुझे देता हूँ। तेरा पिता तुझे राज्य देकर वन मे चला जायगा और तू छत्तीस हजार बरस पृथ्वी पर राज्य करेगा। तेरा भाई उत्तम मृगया में मारा

जायगा और उसी के ध्यान मे उसकी माता वन मे जाकर अग्नि में जल मरेगी। फिर यज्ञो द्वारा मेरा भजन कर और यहाँ के सुख भोग तू अंत मे मेरा स्मरण करेगा। तदनंतर सबसे पूजनीय सप्तर्षियो से भी ऊपर मेरे उस पद को प्राप्त होगा जहाँ जाने से फिर आवागमन नही होता।' ऐसे वर प्रदान कर भगवान् अपने धाम को पधारे और ध्रुव में यद्यपि अब कुछ राज्याभिलापा न थी तथापि भगवान् की आज्ञा से अपने पुर को चले गए।

मतांतर--

ध्रुव

एक नक्षत्र का नाम है। विष्णु पुराण मे इन्हें स्वायंभू मनु का पौत्र तथा उत्तानपाद का पुत्र कहा गया है। उत्तानपाद की दो स्त्रियाँ थी--- सुनीति के गर्भ से ध्रुव तथा सुरुचि के गर्भ से उत्तम की उत्पत्ति हुई थी। महाराज उत्तान-पाद सुरुचि को अधिक चाहते थे, इस कारण उसके पुत्र उत्तम से भी उन्हें अधिक स्नेह था। एकवार जब उत्तम उनकी गोद में बैठा हुआ था तो ध्रुव भी जाकर उनकी गोद के एक भाग मे बैठ गया। सुरुचि ने यह देख ध्रुव को अवज्ञा के साथ वहाँ से हटा दिया। ध्रुव के लिये यह अपमान असह्य हो गया और उसी समय वे घर से बाहर निकल कर एक निर्जन वन मे तपस्या करने लगे। उस समय उनकी अवस्था अधिक नही थी, फिर भी उन्होने अपने घोर तप से भगवान् को प्रसन्न किया और यह वर प्राप्त किया कि 'तुम समस्त लोकों, ग्रहों तथा नक्षत्रो के ऊपर उनके आधारस्वरूप होकर स्थित रहोगे, और तुम्हारे रहने से वह स्थान ध्रुवलोक के नाम से विख्यात होगा।'

ध्रुव ने घर आकर अपने पिता का राज्य प्राप्त किया तथा शिशुमार की कन्या भ्रमि का पाणिग्रहण किया। इनकी एक पत्नी का नाम इला भी कहा

जाता है। भ्रमि के गर्भ से इनको दो सतानें हुई थीं, जिनके नाम कल्प तथा वत्सर कहे जाते हैं। इला से केवल एक पुत्र उत्कल हुआ था। अपने सौतेले भाई उत्तम के यक्षों द्वारा मारे जाने के कारण, इन्हे एक बार इनसे युद्ध करना पड़ा था।

साठ सहस्र वर्ष राज्य करने के बाद, ध्रुव प्राप्त हुए वरदान के अनुसार ध्रुव लोक (तात्पर्य है नक्षत्र से) मे जाकर रहने लगे थे। घोर तपस्या के समय इद्र आदि देवो ने इनका ध्यान भंग करने का प्रयत्न किया था। किंतु अपने इन प्रयत्नों मे सभी को असफलता मिली थी। इसी कारण अक्सर लोग किसी कठिन वस्तु की प्राप्ति के लिये ध्रुव प्रयत्न अर्थात् ध्रुव की भाँति प्रयत्न करने को कहते है।

दडकारण्य

दंडक वन पुनीत प्रभु करहू।
उग्र स्राप मुनिवर कर हरहू॥

—मानस, सो०-३

इक्ष्वाकु ने अपने कनिष्ठ पुत्र को नीतिपूर्वक दड देने की शिक्षा दी, उसका नाम भी 'दड' रखा और उसे विंध्याचल और नीलगिरि के मध्यप्रांत का राज्य दिया। राजधानी का नाम मधुमत्त हुआ। एक समय वसंत ऋतु मे राजा दड घूमते घूमते शुक्र के आश्रम के पास जा निकले और वहाँ अति सुहावने वन मे अत्यत रूपवती शुक्र की 'अरजा' नाम की ज्येष्ठ कन्या को देख, उसपर आसक्त हो उससे अपना मनोरथ कहा। इसपर अरजा विनयपूर्वक बोली, 'हे राजन्, मैं शुक्राचार्य की कन्या अरजा हूँ और तुम मेरे पिता के शिष्य मेरे धर्म के भाई हो। तुमको तो औरों से भी मेरे धर्म की रक्षा करनी उचित है। यदि तुम्हारी प्रबल इच्छा है तो मेरे पिता की आज्ञा से मुझे वर लो, नहीं तो तुम्हारा भला न होगा।'

अरजा की प्रार्थना राजा ने न मानी और कामांध होकर बलात् उससे अपना मनोरथ पूरा किया और अपने राज्य में चला गया। अरजा रोती हुई अपने पिता के आश्रम में आई और पिता से उसने राजा दंड की सब अनीति कह सुनाई। शुक्र जी बोले, 'देखो राजा दंड ने कैसी अनीति की है। यह राजा अपने देश और भृत्यादि सहित नष्ट हो जाय और इसके राज्य के चारों ओर एक सौ योजन तक इंद्र पत्थर बरसा कर सब स्थावर-जंगम का नाश कर दें। सात रात मे ये सब बातें हो जायँ'। इसी शाप से यहाँ की भूमि निर्जन और निर्वृक्ष हो गई और इसी कारण इसका नाम दंडकारण्य पड़ा।

———

दक्ष प्रजापति

दच्छ सुतन्ह उपदेसेन्हि जाई।
तिन्ह फिरि भवन न देखा आई ॥

——मानस, सो०—१

ब्रह्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति के लिये मानसपुत्र उत्पन्न किए। सनक, सनंदन, सनातन, सनत्कुमार, नारद आदि पुत्र तपस्या करके परमार्थ और निवृत्ति मार्ग मे चले गए। तब ब्रह्मा ने और पुत्र उत्पन्न किए जिनको प्रजापतित्व दिया। दक्ष को अंगूठे से उत्पन्न किया और प्रजोत्पत्ति का काम सौंपा। भगवान् की रजोगुणी माया से उत्तेजित दक्ष प्रजापति ने पंचजन प्रजापति की कन्या असिक्नी से विवाह किया। उससे हर्यश्व नामक दस हजार पुत्र हुए जो सभी एक आचार और स्वभाव के थे। पिता की आज्ञा से वे सृष्टि रचने के लिये पश्चिम को गए। सिंधुनद और समुद्र के संगम नारायणसर में स्नान करते ही उनका मन निर्मल हो गया। वहाँ ये उग्र तप कर रहे थे, उसी समय नारद जी ने आकर कहा कि 'हर्यश्वो, तुम अज्ञानी हो। (१) पृथ्वी का अंत, (२) एक

पुरुषवाला देश, (३) जिसमे निकलने का मार्ग नही देख पड़ता ऐसी गुफा, (४) बहु रूप धरनेवाली स्त्री, (५) व्यभिचारी पति पुरुष (६) दोनो ओर बहनेवाली नदी (७) पच्चीस पदार्थों से अद्भुत प्रतीत होता घर, (८) कोई विचित्र कथा कहता हुआ हस, (९) आप से घूमता और छूरे वज्रों से बना चक्र, और (१०) अपने सवस्व पिता की आज्ञा। इन दस बातो को जाने बिना सृष्टि क्यो कर रचोगे ?'

यह कूट प्रश्न सुन हर्यश्व अपनी बुद्धि से अनेक बाते विचारने लगे और अत मे विचार करके मुनि की परिक्रमा कर सभी हर्यश्व मुक्तिमार्ग को चले गए। यह समाचार सुन दक्ष दुःखित हुए। ब्रह्मा ने समझाकर उन्हे शात किया। फिर दक्ष ने असिक्नी से शबलाश्व नामक एक हजार पुत्र सृष्टिकर्म के लिये उत्पन्न किए। यह भी वही जाकर भारी तप करने लगे। इनसे भी नारद जी ने आकर वे ही कूट प्रश्न किए। नारद जी के उपदेश सुन शबलाश्वो ने भी अपने भाई हर्यश्वो का अनुसरण किया और फिर घर को न फिरे। यह समाचार सुन दक्ष ने अति कुपित हो नारद जी को शाप दिया कि 'सपूर्ण लोको मे भटकते भटकते तेरा कही भी ठिकाना न रहेगा। नारद जी ने इस शाप को स्वीकार कर लिया।

दशरथ द्वारा श्रवणकुमार का वध

तापस अंध स्राप सुधि आई।
कौसिल्यहि सब कथा सुनाई ॥

—मानस, सो०-२

राजा दशरथ कौशल्याजी से बोले कि पूर्वकाल मे युवावस्था मे मृगया मे आसक्त रात्रि के समय महावनो मे नदी के तीर मै धनुष बाण ले घूमा

करता था। एक वार जल में महागंभीर शब्द हुआ। मैंने समझा कि कोई हाथी जल पीता है। मैंने शब्दवेधी बाण मारा और साथ ही वहाँ से आर्तस्वर से यह शब्द सुन पड़ा कि 'हाय, मैं मारा गया।' मैं जल के समीप गया। उस समय फिर यह शब्द सुन पड़ा कि 'हा विधि! मैंने तो किसी का कोई भी अपराध नहीं किया, फिर किसने मुझे मारा? मेरे माता-पिता जल की इच्छा से मेरी बाट जोहते होंगे।' भयभीत हो मैं धीरे धीरे पास जाकर बोला कि 'हे स्वामिन् मैं राजा दशरथ हूँ और अज्ञान के वश मुझसे यह अपराध हुआ है। अतः मैं क्षमा के योग्य हूँ। इतना कह मैं उनके चरणों पर गिर पड़ा। तब मुनि बोले 'हे श्रेष्ठ नृप, तुम मत डरो, तुमको ब्रह्महत्या न होगी, क्योंकि मैं ब्राह्मण नहीं वैश्य हूँ। परंतु मेरे माता-पिता प्यास से व्याकुल हैं। उन्हें जल पिलाओ। शीघ्रता करो। नहीं तो पिताजी क्रोधित हो तुमको भस्म कर डालेंगे। हे महाराज, तुम उन्हें जल पिलाकर प्रणाम करके पीछे से अपना अपराध कह देना तो तुम इस अज्ञात पाप से छूट जाओगे। 'महाराज, मेरे हृदय से बाण को निकालो, मैं प्राण छोड़ता हूँ। मैं बहुत काल तक इसकी पीड़ा नहीं सह सकता।' यह सुन मुनिकुमार की देह से बाण निकाल, जल से भरा कलश ले मैं उसके माता पिता के समीप गया। दोनों अति वृद्ध, अंधे तथा भूख प्यास से व्याकुल थे। मेरे पैरों का आहट सुन उसके पिता बोले, 'पुत्र विलम्ब क्यों किया? हमको उत्तम जल दो और हे वत्स, तुम भी पिओ। जब वह पी चुके, तब मैं धीरे से उनके चरणों पर गिरा और विनयपूर्वक मैंने सब समाचार कह दिए और उनसे दीन हो विनती की कि 'हे मुनि, मैं वही मुनि घातक नराधम हूँ और उनकी आज्ञा से यहाँ आया हूँ। दया करके शरणागत की रक्षा कीजिए।' यह सुन दोनों अति दुःखित हो भूमि पर गिर पड़े और शोक से विलाप करते बोले, 'जहाँ हमारा पुत्र है, वहीं हमें शीघ्र ले चलो। मैं उन अंध दंपति को उनके आज्ञानुसार घाट पर ले आया। अपने पुत्र को दोनों हाथों से पकड़कर दंपति विलाप करने लगे। उनकी आज्ञा से शीघ्र मैंने एक चिता बना दी और उन वृद्धों ने अपने मरे पुत्र को गोद में लिया और उस

पर बैठ गए। मैंने उसमे अग्नि लगा दी और वे भस्म होकर स्वर्ग को चले गए। चिता में बैठते समय उस वृद्ध ने मुझसे कहा--'तुम भी ऐसे ही होगे, अर्थात् तुम भी पुत्र-शोक मे मरोगे।'

नंद

गोकुल के गोपराज तथा कृष्ण के पिता वसुदेव के सखा। कंस के कारागृह मे कृष्ण का जन्म होने के बाद वसुदेव उन्हे इन्ही के यहाँ छोड आए थे। इस प्रकार कृष्ण का बालकाल इन्ही के यहाँ बीता था। इनकी स्त्री यशोदा ने कृष्ण का पालन पोषण किया था। इनके पूर्वजन्म के संबध मे कहा जाता है कि वे दक्ष प्रजापति थे तथा यशोदा 'प्रसूति' नाम की स्त्री थी। इनकी कन्या सती थी और उनका व्याह शिव के साथ हुआ था। दक्ष ने एक यज्ञ किया था और उसमें अपनी सभी कन्याओ को निमंत्रित किया था किंतु सती को निर्धन व्यक्ति की अर्धांगिनी जानकर नही बुलाया था। सती बिना बुलाए ही आई थी और यज्ञभूमि मे अपने स्वामी शिव की निंदा सुनकर भस्म हो गई थी। दक्ष को उस समय अपनी कन्या की महत्ता का ज्ञान हुआ था तथा अपनी पत्नी सहित वे तपस्या करने चले गए थे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर सती ने कहा था, "द्वापर मे मैं तुम्हारे यहाँ फिर जन्म लूंगी, किंतु अधिक समय तक तुम्हारे यहाँ रहूँगी नहीं और न तुम लोग मुझे पहचान ही पाओगे।' कहा जाता है कि इसी वरदान के अनुसार सती ने कृष्णजन्म के ही समय यशोदा के गर्भ से जन्म लिया था, किंतु वसुदेव कृष्ण को उनके स्थान पर छोड़कर उन्हे मथुरा ले गए थे। मथुरा मे जब कस ने उसका वध करने का प्रयत्न किया था तो वह कंस का वध करनेवाले का जन्म हो जाने की घोषणा करके आकाश में विलीन हो

गई थी। कृष्ण जब अक्रूर के साथ मथुरा गए थे तब नंद भी उनके साथ थे। नंद ने कंस वध के बाद कृष्ण को गोकुल वापस ले जाने का प्रयत्न किया था, किंतु कृष्ण ने कार्यव्यस्तता दिखा कर क्षमा चाही थी जिससे इन्हें विशेष कष्ट हुआ था। कृष्ण जब हंस तथा डिंभक का दमन करने के लिये गोवर्धन आए थे, उस समय भी इन्होंने कृष्ण को गोकुल ले जाने का प्रयत्न किया था, किंतु असफल रहे। एक बार ये एकादशी के दिन रात को यमुना में स्नान करने को गए। कहा जाता है कि उस समय वरुण के दूतों ने प्रस्तुत होकर इन्हे बंदी करके वरुण की सभा मे उपस्थित किया था। कृष्ण ने यह समाचार सुनकर इन्हे मुक्त कराया था। इनके पूर्वजन्म के संबध मे यह भी कहा जाता है कि ये वसुश्रेष्ठ द्रोण थे, तथा इनकी स्त्री का नाम धरा था। गंधमादन पर्वत पर तपस्या करके इन्होने अगले जन्म मे भगवान् के दर्शनों का वर प्राप्त किया था। द्वापर मे यही नद तथा यशोदा के रूप मे उत्पन्न हुए थे और श्रीकृष्ण के रूप मे भगवान् इनके यहाँ रहे थे।

नल नील को आशीर्वाद

नाथ नील नल कपि दोउ भाई।
लरिकाईं ऋपि आसिष पाई॥
—मानस, सो०–५

एक समय समुद्र के किनारे ऋषि लोग शालग्राम का पूजनकर जब आँख बदकर ध्यान करने लगे तो बालक नल और नील ने शालग्राम की मूर्ति समुद्र मे फेक दी। इसपर मुनि लोगो ने दयापूर्वक शाप दिया कि तुम लोगों का छुआ हुआ पत्थर पानी में न डूबेगा।

नरसिंह

मसक समान रूप कपि धरी ।
लकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ।।

——मानस, सो०—५ ।

विष्णु के एक अवतार । इनकी कथा इस प्रकार है : सत्ययुग में दैत्यों के आदिपुरुष हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा की घोर तपस्या करके यह वरदान प्राप्त किया था कि वह देवता, गंधर्व, असुर, नाग, किन्नर तथा मनुष्य किसी के द्वारा न मारा जा सके । उसकी मृत्यु अस्त्र-शस्त्र, वृक्ष, शैल, सूखी तथा भीगी किसी वस्तु से न हो सके । स्वर्ग, मृत्यु लोक तथा पाताल कही भी उसकी मृत्यु न हो तथा दिन अथवा रात वह किसी समय मे न मारा जा सके । इस प्रकार पूर्ण-रूप से निर्भय होकर उसने अपना निरकुश शासन आरंभ किया और देवताओं को कष्ट देने लगा । देवतागण अपनी रक्षा के लिये विष्णु की शरण मे गए । विष्णु ने उन्हे अभय दान दिया और अर्ध नर तथा अर्ध सिंह का रूप धारण कर वे हिरण्यकशिपु के संमुख आए । उसके पुत्र प्रह्लाद ने उस नृसिंह रूप को देखकर कहा 'यह तो कोई दिव्य मूर्ति प्रतीत होती है; जिसमे समस्त चराचर ब्रह्म दिखाई दे रहा है । ज्ञात होता है, अब दैत्यवंश का नाश निकट है।' हिरण्यकशिपु ने यह सुनकर अपने अनुचरो से नृसिंह का वध करने के लिये कहा; किंतु जो उन्हे मारने के लिये आगे बढ़ा वह स्वय ही उनके द्वारा धराशायी हुआ । अत मे हिरण्यकशिपु ने नृसिंह के साथ स्वयं युद्ध आरभ किया । नृसिंह मे क्षणमात्र के मे अपने नखो से उदर विदीर्ण करके उसका वध कर डाला।

भागवत मे प्रह्लाद की भक्ति का प्रसग और बढा दिया गया है, जिससे कथा इस प्रकार की हो गई है । ब्रह्मा से वरप्राप्ति के बाद हिरण्यकशिपु ने निर्भय होकर देवताओ पर अत्याचार आरभ किए । उसके पुत्र प्रह्लाद के हृदय मे भगवान् के प्रति बड़ा स्नेह था, इससे उसने अपने पुत्र का भी वध करने का प्रयत्न किया । किंतु विष्णु की कृपा के कारण प्रह्लाद का बाल भी बाँका न कर

सका। एक बार क्रोधित होकर हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद से पूछा—'तू किसकी शक्ति पर इतना इतराता फिरता है?' प्रह्लाद ने कहा—'भगवान् की शक्ति पर, जिसके सहारे यह संसार चल रहा है।' हिरण्यकशिपु ने पूछा—'कहाँ है तेरा वह भगवान्? प्रह्लाद ने कहा—वह सर्वत्र है। दैत्यराज ने क्रोधित होकर कहा—क्या इस खंभे मे भी है? प्रह्लाद ने उत्तर दिया—'अवश्य है' और हिरण्यकशिपु ने अपने खड्ग से खंभे पर आघात किया। खंभा टूट गया और उसके भीतर से एक नृसिंह मूर्ति प्रकट हुई। उसने देहली के ऊपर बैठकर संध्या के समय जब न रात थी, न दिन, बिना किसी अस्त्र के अपने नखों से हिरण्यकशिपु का वध कर डाला। उसके बाद वह मूर्ति अंतर्हित हो गई।

नहुष

ससि गुरु-तियगामी नहुषु चढेउ भूमिसुर जान।
लोक वेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान॥

—मानस, सो०—२

जब इंद्र ने तपस्वी ब्राह्मण वृत्रासुर को मार डाला तब उसके पीछे 'ठहर, ठहर' कहती हुई चांडाली बुढापे से जर्जर, यक्ष्मा के कफ से लिप्त, रक्ताक्त वस्त्र पहिने, सफेद बाल बिखेरे और दुर्गंध से मार्ग को भरती ब्रह्महत्या दौड़ी। ब्रह्महत्या से पीड़ित इंद्र आकाश तथा सब दिशाओं में फिरे, पर कहीं शरण न मिली। अंत मे घबराकर ईशान कोण में मानस सरोवर मे जा घुसे और एक हजार बरस तक कमलनाल के ततुओं मे छिपे रहे। मन मे हत्या से छुटकारा पाने का उपाय सोचते रहे। इधर इंद्रासन भी खाली न रहे इसलिये बृहस्पति ने विद्या, तप, योग और बल से पूर्ण राजा नहुष को इंद्र बनाया। कुछ दिन पीछे राजमद से मत्त नहुष ने इंद्राणी से कहला भेजा कि अब हम इंद्र हैं, तुम

हमारे पास आओ। इंद्राणी को बड़ा दुःख हुआ। उसने बृहस्पति को बुलाकर सब समाचार कहा। गुरु ने धैर्य दिया और कहा कि इंद्राणी! तू कहला दे कि 'पालकी पर बैठ के और ब्राह्मणों को कहार बनाकर आवे तो मैं तुझे स्वीकार करूँ।' इंद्राणी ने वैसा ही किया और नहुष भी ऋषियों के कंधे पर चढ़ कर चला। जल्दी के मारे अगस्त्य मुनि से बोला 'सर्प सर्प' अर्थात् जल्दी चलो, जल्दी चलो। इस पर क्रोधित हो अगस्त्य ऋषि ने शाप दिया कि 'तू मृत्यु-लोक में जाकर सर्प हो जा'। नहुष वहीं स्वर्ग से भ्रष्ट हो सर्प होकर गया। पीछे ब्राह्मणों के बुलाने से इंद्र फिर स्वर्ग में गए। अब तक कमलनाल में थे, ईशान-कोण के देवता रुद्र और विष्णु पत्नी ने ब्रह्महत्या से उनकी रक्षा की। अब महर्षियों ने अश्वमेध यज्ञ की विधिपूर्वक दीक्षा दी और यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस प्रकार इंद्र की हत्या छूटी और फिर वह इंद्रासन पर बैठा।

नागेश्वर

जे पुर गाँव बसहिं मग माही।
तिन्हहि नागपुर नगर सिहाही॥

—मानस, सो०–२

शंकर के एक अवतार का नाम है। दारुक नामक राक्षस को मारकर इन्होंने सुप्रिय नामक वैश्यनाथ की रक्षा की। इनका उपलिंग भूतेश्वर है।

नारद

वालमीकि नारद घटजोनी।
निज निज मुखनि कही निज होनी।।

—मानस, सो०–१

एक वार व्यास जी के यहाँ देवर्षि नारद जी गए और उन्हे कुछ उदास वैठा देख पूछा कि व्यास जी, आप सव तत्वो के जाननेवाले उदास क्यों है ? व्यास जी वोले कि जो आपने कहा ठीक है, तथापि मेरी आत्मा प्रसन्न नही होती, इसमें क्या गुप्त कारण है ? इसपर नारद जी ने उत्तर दिया कि मेरी समझ मे आपने भगवान् के निर्मल यशरहित धर्मादि का वर्णन किया है, यही न्यूनता है। ध्यानावस्थित होकर भगवान् के चरित्रो का स्मरण करके वर्णन करो जिससे सव वंधन कट जायँ। हे मुनि, देखो मै पूर्व जन्म मे वेदवादी ऋषियो की किसी दासी का पुत्र था। वहाँ मुनि लोग चातुर्मास्य का व्रत करना चाहते थे। मेरी माता ने मुझे उन मुनियो की सेवा मे रख दिया और मैने सव वालकपन की चचलता छोड जितेंद्रिय हो उनकी सेवा आरभ की। मेरी सेवा से प्रसन्न हो उन महात्माओं ने मुझ पर कृपा की। उन मुनियो की जूठन जो वचती वह मैं उनकी आज्ञा से केवल एक ही वार खाया करता। उसी के प्रभाव से मेरे पाप निवृत्त हो गए, मेरा अंत:करण शुद्ध हो गया और भगवद्धर्म मे रुचि हो गई। अत में उन्होने प्रसन्न हो भगवान् के कहे हुए अति गुप्त ज्ञान का मुझे उपदेश किया जिससे मैने यह जान लिया कि सपूर्ण कर्मो को भगवान् मे अर्पण कर देना यही प्राणियो को उचित है। इससे कर्मो का निवृत्ति हो जाती है। मुनिगण व्रत पूर्ण करके चले गए। मेरे मन मे भक्ति का सस्कार हो गया। मेरी माता एक मूर्ख स्त्री थी और लोगों की दासी थी। मै एक ही पुत्र था, अतएव वह मुझे वहुत चाहती थी, परतु पराधीनता से कुछ भी नही कर सकती थी और मै भी उस माता के स्नेहवधन मे पडा पाँच वर्ष का वालक उस ब्रह्मकुल मे रहने लगा। एक रात्रि माँ गाय दुहने निकली कि साँप ने काट खाया और वह मर गई। इसे मैं ईश्वर की कृपा मान उत्तर दिशा को चल दिया। मार्ग मे अनेक देश और शोभित वन पर्वत लाँघते एक घोर निर्जन वन मे पहुँचा।

वहा तपस्या करने लगा। वहाँ भगवान् के ध्यान मे मन अनुरक्त हुआ। पर शरीर की अनुपयुक्तता से ध्यान स्थिर भाव से न रह सकता था, जिससे मैं अत्यंत विकल हो जाता था। एक दिन मैने काल पाकर वह शरीर छोड़ा और कल्पात मे, जब नारायण जल मे शयन कर रहे थे, ब्रह्मा जी के प्राण के साथ मेरे आत्मा का भी प्रादुर्भाव हुआ। जब ब्रह्मा इस जगत की रचना करने लगे उनकी इद्रियो से मरीचि आदि ऋषि तथा मै प्रगट हुआ। अब इस वीणा को लिए सर्वत्र हरिगुण गान करता विचरा करता हूँ। कही मेरी गति नही रुकती और सर्वदा भगवान् हृदय मे दर्शन देते रहते है। भगवान् का गुण-कीर्तन और सत्संग भवसागर के लिये नौका है, यही मेरे जन्म कर्म की कथा है।

भागवती कथा के अनसार नारद एक देवर्षि थे। युगसृष्टि के समय ब्रह्मा के मानसपुत्र के रूप मे इनका उल्लेख मिलता है। अपने पिता के द्वारा शापित होकर गधर्व योनि मे इनकी उत्पत्ति हुई थी, किंतु अपनी कठिन तपस्या से यह फिर अपने पूर्व रूप को प्राप्त कर सके थे। प्राय: प्रत्येक पौराणिक आख्यान में इनका उल्लेख मिलता है। अपनी वीणा लिए हुए विष्णु के प्रति अपनी भक्ति की भावना के गीत गाते हुए यह रावण से लेकर कंस तक की राजसभा मे देखने को मिलते है। भागवत मे इनका उल्लेख वेदज्ञ ब्राह्मण की एक दासी के पुत्र के रूप में मिलता है। बाल्यावस्था मे यह अपनी माता के साथ उन्ही ब्राह्मणों की सेवा करते रहे। एक दिन उन्होंने उन्ही ब्राह्मणो का उच्छिष्टान्न खा लिया। इससे उनका हृदय, शुद्ध हो गया और पाँच वर्ष की अवस्था में ही यह हरिगुणकीर्तन करने लगे। उसके बाद एक दिन सर्प के काटने से इनकी माता की मृत्यु हो गई। अब यह पूर्णरूप से स्वाधीन हो गए और घर द्वार छोड़कर उत्तर दिशा की ओर चल दिए। एक वन मे पहुँचकर उन्होने एक सरोवर में स्नान तथा जल-पान किया और एक सघन वृक्ष की छाया मे बैठकर भगवान् का स्मरण करने लगे। भगवान् ने उन्हें हृदय मे दर्शन दिए, किंतु उससे उनकी इच्छा की पूर्ति न हुई और वह प्रत्यक्ष दर्शन के लिये चिंता करने लगे। उनके कष्ट को देखकर भगवान् ने आकाशवाणी द्वारा उन्हें समझाया कि 'इस जन्म मे तुम्हें हमारे साक्षात् दर्शन नही हो सकते। अपने प्रति तुम्हारे अनुराग की वृद्धि करने के लिये ही हमने तुम्हें दर्शन दिया है। तुम साधुसेवा में रत हो, उसी

से तुम हमारे समीप आ सकोगे।' नारद ने उनकी आज्ञा सहर्ष स्वीकार की तथा कालांतर में परमधाम को प्राप्त हुए। इसी प्रकार नारद के संबंध मे अनेक कथाएँ मिलती है। उनमे भी इसी कथा की भाँति भगवान् के प्रति उनके अनुराग की भावना प्रधान है, तथा उनकी स्पष्टवादिता और बुद्धि-कौशल का भी उल्लेख है। नारद गानविद्या मे विशेष निपुण माने जाते है। कहा जाता है कि गानविद्या की शिक्षा इन्होंने रुक्मिणी से पाई थी। इनके द्वारा प्रणीत दो ग्रंथों का उल्लेख मिलता है: पंचरात्र तथा भक्तिसूत्र।

नारदी

नारद ने एक बार वृंदारण्य मे कौसुभ सरोवर मे स्नान किया जिसके कारण इनका पुंस्त्व नष्ट हो गया और ये स्त्री हो गए। तभी से इनका नाम नारदी हो गया।

नारदी

एक विशिष्ट ढंग से गाई जाने वाली चौपाई। अधिकतर रामलीला में मानस का गान इसी पद्धति से होता है।

नारद का कुंभकर्ण को उपदेश

नारद मुनि मोहि ज्ञान जो कहा।
कहतेउँ तोहि समय निरवहा।

—मानस, सो०-६

जब कुंभकर्ण को रावण ने जगाकर बुलाया और वह आकर सभा में राजा को प्रणाम कर आसन पर बैठा, तब रावण दीन वाणी से बोला,—"भैया कुंभकर्ण, मेरे ऊपर बड़ा संकट पड़ा है। दशरथ के पुत्र राम ने वानरों की सहायता से मेरी सब सेना काट डाली। जान पड़ता है कि मेरा भी मृत्युसमय निकट आ गया, अब क्या करूँ? हे बलवान्, मैंने तुझे इसलिये जगाया है कि तू इनका नाश कर।' तब कुंभकर्ण ठठाकर हँसा और बोला—हे राजन्! पहले एकांत में जो एक दिन हेमंतरजनी में पर्वत के शिखर पर मैं बैठा था, मुझे नारद ऋषि देख पड़े। मैंने उनसे पूछा कि हे ज्ञानवान् आप कहाँ से आते हैं? यह सुन नारद बोले—देवताओं का कुछ गुप्त विचार हो रहा था। वहाँ मैं बैठा था, उसी स्थान से मैं आ रहा हूँ। विचार यह था कि तूने और तेरे भाई ने देवताओं को बहुत कष्ट दिए हैं। वे सब विष्णु के पास गए थे और उन्होंने भक्तिपूर्वक उनकी बड़ी स्तुतिकर प्रार्थना की कि रावण त्रिलोक को कष्ट दे रहा है। आप इसका वध कीजिए। ब्रह्मा ने पूर्व ही यह संकेत कर रखा है कि इसकी मृत्यु मनुष्य से होगी, सो आप मनुष्य का अवतार ले इसे मारिए। इसपर महाविष्णु ने 'अच्छा' कहा है। उनका संकल्प कभी अन्यथा नहीं हो सकता, उन्हीं ने रघुकुल में राम के नाम से अवतार लिया है। वह तुम सब का नाश करेंगे।' इतना कह नारद जी स्वर्ग को चले गए। सो हे रावण, यह निश्चय समझो कि रामचंद्र सनातन ब्रह्म हैं और श्रीसीता जी योगमाया हैं और यह हमको मुक्त करने आए हैं।

निमि

भए विलोचन चारु अचंचल ।
मनहुँ सकुचि निमि तजेउ दृगंचल ।

—मानस, बा०-१

विदेह वंश के आदि पुरुष, इक्ष्वाकु के बारहवें पुत्र । गौतम ऋषि के आश्रम के निकट, दंडक वन के दक्षिण में—जहाँ तिमिध्वज राज्य करते थे, इन्होंने वैजयंती नामक एक नगरी बसाई। डा० भंडारकर के अनुसार यह विजय दुर्ग था और श्री नंदलाल के अनुसार एक वनवासी नगर था।

नील

पुनि नल नील सिरन्हि चढ़ि गयऊ ।
नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ ।

—मानस, लं०-६

विश्वकर्मा का अंशावतार जो राम सेना का एक प्रसिद्ध वानर था। राम सेना को समुद्र पार करने के लिये इसने ही सेतु की रचना की थी। मतांतर से इसकी उत्पत्ति अग्नि के अंश से हुई थी। निकुंभ, महोदर आदि राक्षसों को इसी ने मारा था। राम के अश्वमेध यज्ञ में यह रक्षक सेना के साथ था। यह नल का भाई था। विशेष विवरण के लिये देखिए—नल नील को आशीर्वाद।

पृथ्वी

धरा धरन सत कोटि अहीसा ।
निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ।।

—मानस, सो०–७

पुराणो में पृथ्वी की उत्पत्ति के संबंध मे अनेक कथाएँ है । कुछ स्थानो पर इसकी उत्पत्ति मधुकैटभ के मेद से मानी गई है । इसी से-कहा जाता है कि उसे मेदिनी सज्ञा भी मिली थी। कुछ अन्य स्थानो पर उसके विराट् पुरुष के रोम कूपो मे, एकत्रित होनेवाले मल से उत्पन्न होने की कथा भी मिलती है । पृथ्वी शेपनाग के फन पर कछुए की पीठ पर स्थित मानी जाती है । महाराज पृथु द्वारा प्रतिष्ठित होने के कारण इसे पृथ्वी सज्ञा मिली ।

पृथुराज

पुनि प्रनवौ पृथुराज समाना ।
पर अघ सुनै सहसदस काना ।।

मानस, सो०–१

राजा वेण के मरने पर जगत् मे आराजकता छा गई । इसपर ऋपियों ने वेण के जंघे को मथा । अर्थात् वेनु द्वारा स्थापित और तदाश्रित वैश्य समाज को मथा । उससे एक मनुष्य को राष्ट्रपति के आसन पर विठाया । इसी लिये उसका नाम 'निपाद' हुआ, परंतु वह महचांडाल निकला । उसे भी ऋपियों ने शापित करके निकाल दिया । फिर बाहु मथा, अर्थात् वेण द्वारा स्थापित और तदाश्रित क्षत्रियो मे से एक वीर, वुद्धिशाली आत्मवान् पृथु को राजा चुना । पृथु ने राज्य का अपूर्व प्रवध किया । इसने धनुप वाण ले पृथ्वीरुपी गौ को

जिसने अपने स्तनों में रत्नरूपी दूध चुरा लिया था, दौड़ाया। अंत में चतुः समुद्रपयोधरा वसुधरा ने अपने रत्न दिए। भूमंडल मे खेती जोरशोर से होने लगी। चारों समुद्रों में जहाजों द्वारा वाणिज्य व्यापार बड़े वेग से बढ़ा। सारे संसार पर राजा पृथु का प्रभुत्व हो गया। भारत का यह सार्वभौम प्रजातंत्र राज्य पहले पहल राजा पृथु का प्रभुत्व हो गया। भारत का यह सार्वभौम प्रजा-तंत्र राज्य पहले पहले राजा पृथु के राष्ट्रपतित्व में हुआ। इसी लिये इस भूतल का नाम पृथ्वी पड़ा। राजा पृथु बड़ा भक्त था। इसने भगवान् से वरदान लिया कि आप के चरित और सुयश सुनने को मेरे कानों मे दस हजार कानों की शक्ति हो जाय।

पंचवटी

पुनि प्रभु पंचवटी कृत वासा।
भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा॥
——मानस, सो०——७

एक वन का नाम जिसमें प्राचीन वट वृक्ष के नीचे वनवासी राम ने अपना आश्रम बनाया था।

पांडु

राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कबि कोकिल हू की ।
नामहि तें गज की, गनिका की, अजामिल की चलि गै चल चूकी ॥
नाम प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडुबधू की ।
ताको भलो अजहूँ तुलसी जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की ॥

—कवितावली, ७।८९

पांडव वंश के आदि पुरुष महाराज शांतनु के पौत्र तथा विचित्रवीर्य के क्षेत्रज पुत्र। महर्षि व्यास के नियोग से इनका जन्म हुआ था। महाराज विचित्र-वीर्य क्षयरोग से पीड़ित होकर युवावस्था में मृत्यु को प्राप्त हुए थे और उनकी दोनों स्त्रियाँ अंबिका तथा अंबालिका विधवा हो गई थीं। उस समय उनके कोई संतान भी न हुई थी। विचित्रवीर्य की माता सत्यवती ने वंश चलाने के उद्देश्य से महाराज शांतनु की प्रथम पत्नी गंगा से उत्पन्न हुए पुत्र भीष्म से अंबिका तथा अंबालिका के साथ नियोग करके संतान उत्पन्न करने को कहा। भीष्म आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर चुके थे, इस कारण उन्होंने स्वयं नियोग करने से अस्वीकार करके किसी योग्य ब्राह्मण को बुलाकर गर्भा-धान कराने का परामर्श दिया। सत्यवती ने अपने प्रथम पुत्र व्यास का स्मरण किया और उनसे वंशवृद्धि के लिये संतान उत्पत्ति करने को कहा। व्यास ने कठिन तपस्या में लीन रहकर अपनी रूपरेखा को विवर्ण बना लिया था। इस कारण जब वे अंबिका के पास गए तो उसने आँखें मूँद लीं और उससे जन्मांध धृतराष्ट्र की उत्पत्ति हुई। अंबालिका उनकी भयंकर रूपरेखा को देखकर पांडु वर्ण हो गई थी। उसने कालांतर में एक पांडुपुत्र को जन्म दिया। पांडु होने के कारण उसका नामकरण भी पांडु ही हुआ। सत्यवती एक सुंदर संतान की सृष्टि चाहती थी, इसलिये उसने अंबिका से फिर गर्भधारण करने के लिये कहा किंतु वह व्यास से इतना भयभीत हो गई थी कि उनके आने पर उसने अपनी एक दासी को सम्मुख कर दिया। कालांतर में दासी ने विदुर को जन्म दिया। व्यास के वीर्यज पुत्र होने के कारण धृतराष्ट्र तथा पांडु के साथ विदुर का भी नाम लिया जाता है, तथा वे उनके भाई कहे जाते हैं।

बाल्यावस्था मे भीष्म ने इन तीनो का पालन किया था। योग्य वय होने पर पाडु का विवाह कुंतिभोज की कन्या कुंती के साथ हुआ। भीष्म ने बाद में मद्रनरेश की कन्या माद्री से इनका विवाह कराया। धृतराष्ट्र के अंधे होने के कारण राजसिहासन पाडु को ही मिला। कुछ दिन राज्यसचालन करने के बाद पाडु दिग्विजय के लिये निकले और उन्होने भूमंडल के समस्त राजाओं को परास्त करके बहुत-सा धन एकत्र किया। धृतराष्ट्र ने इसी धन से पाँच महायज्ञो का आयोजन किया था। एक बार महाराज पाडु अपनी दोनों स्त्रियों को साथ लेकर वन में आखेट के लिये गए थे। वहाँ उन्होंने सभोगरत हिरन दंपती मे हिरन को अपने तीर से धराशायी कर दिया। वह हिरन वास्तव मे किमिदय ऋषि थे। अपना पूर्व रूप प्राप्त करके मरते हुए उन्होंने शाप दिया कि जिस प्रकार सभोग के समय तुमने मेरा वध किया है उसी प्रकार भोगक्रीड़ा के समय अर्ध अवस्था में तुम्हारी भी मृत्यु होगी। पांडु यह सुनकर बहुत दुःखी हुए और अपनी स्त्रियो को साथ लेकर नाशगत पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे। एकबार ऋषियों के साथ उनकी भी स्वर्ग जाने की इच्छा हुई किंतु, ऋषियों ने उन्हें यह समझाकर कि जिसके सतान नही होती वह स्वर्ग नही जा सकता, अपने साथ चलने से रोका। पांडु ने स्वर्ग जाने की अपनी आकांक्षा की पूर्ति के लिये अपनी स्त्रियों से नियोग के लिये कहा। कुंती ने ऋषि दुर्वासा की बताई हुई रीत्यनुसार धर्म, वायु तथा इंद्र का आवाहन करके उनके नियोग से युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन को जन्म दिया। माद्री ने अश्विनीकुमारों के द्वारा नकुल तथा सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न किए। यही पाँच पांडु के क्षेत्रज पुत्र आगे चलकर पांडवों के नाम से विख्यात हुए। इस प्रकार पुत्रो की उत्पत्ति के बाद वसंतऋतु में एक दिन पांडु को कामवासना ने पीड़ित किया। माद्री के मना करने पर भी उन्होंने उसके साथ बलपूर्वक सभोग किया। उसकी अर्ध अवस्था में ही ऋषि किमिदय के शाप के अनुसार उनकी मृत्यु हुई। माद्री ने इसके लिये खुद को दोषी माना और उनके साथ सती होकर उसने प्राण त्याग दिए। कहा जाता है कि पाडु तथा माद्री का मृत शरीर हस्तिनापुर लाया गया था और धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर ने उनका अंतिम संस्कार किया था।

परशुराम द्वारा क्षत्रियनाश

भुज बल भूमि भूप बिनु कीन्ही।
विपुल बार महि देवन्ह दीन्हीं॥
—मानस, सो०-१

जब परशुराम जी ने सहस्रार्जुन को मार डाला, तब उसके पुत्र बदला लेने का सुअवसर खोजने लगे। एक दिन परशुराम जब भाइयों के साथ वन में गए तब अवसर पा वे सब वैर लेने को आश्रम मे आए और ध्यानावस्थित जमदग्नि का सिर काटकर ले गए। दूर से माता का आर्त्तनाद सुन परशुराम जी आश्रम मे आए और पिता को मरा देख शोक से विह्वल और बदला लेने के विचार से अधीर हो गए। पिता की देह भाइयो को सौप हाथ मे फरसा ले, क्षत्रियो के अंत का विचारकर, माहिष्मती मे जाकर क्षत्रियों के सिर काट काट एक बड़ा पर्वत बना दिया। उन्होंने समस्त अन्यायी क्षत्रियो का वध करना आरंभ किया। इसी प्रकार इक्कीस बार पृथ्वी को नि.क्षत्रिय किया क्योकि माता रेणुका ने ऋषि के शोक मे इक्कीस बार छाती पीटी थी। फिर कुरुक्षेत्र मे नौ बड़े बडे तालाब बनाए। पीछे पिता का सिर ले धड़ से जोड़कर सर्वदेवमय आत्मरूप ईश्वर का यज्ञ किया। उसमे होता को पूर्व, ब्रह्मा को दक्षिण, अध्वर्यु को पश्चिम और उद्गाता को उत्तर दिशा दी। दूसरे ऋषियो को अवांतर दिशाएँ दी। कश्यप को पृथ्वी का मध्य भाग, तथा आर्यावर्त्त और शेष पृथ्वी सब सभासदो को दी। तब ब्रह्मनदी सरस्वती मे अवभृथ स्नान करके पापमुक्त हुए। जमदग्नि सप्तर्षियों के मडल मे सातवे ऋषि हो गए।

परशुराम

परसुराम पितु आज्ञा राखी।
मारी मातु लोक सब साखी॥
—मानस, सो०-२

एक समय परशुराम जी की माता रेणुका गंगा जी जल लेने को गई

थी। वहाँ उसने गंधर्वराज चित्ररथ को कमलों की माला पहने अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते देखा। तमाशा देखने मे उसे बहुत देर हो गई और होम का समय भूल गई। चित्ररथ गंधर्व पर इसकी इच्छा भी प्रकट हो गई। जब इसे होम की याद आई और देर का ख्याल आया तो शाप से डरती शीघ्र आ मुनि के आगे कलश रखकर रेणुका हाथ जोडकर खड़ी हो रही। व्यभिचार को जान मुनि ने क्रोधित हो पुत्रो से कहा—इस पापिनी को मार डालो, पर जमदग्नि मुनि की यह बात किसी ने न मानी। ऋषि ने परशुराम से कहा और उन्होंने पिता की आज्ञा मान माता तथा अपने सब भाइयों को भी मार डाला। क्योंकि यह अपने पिता के तप और प्रभाव को भली भाँति जानते थे। इस बात से प्रसन्न हो पिता ने कहा—'वर माँगो।' तब परशुराम जी ने यही वर माँगा कि मेरे भाई तथा माता पुनः जीवित हो जायँ और ये लोग यह बात न जानें कि मैंने इन्हें मारा था। पिता ने उनको अपने तप के प्रभाव से फिर जिला दिया, मानो कोई सोकर फिर उठ बैठे।

इस प्रकार पिता की आज्ञा पालने से परशुराम जी को न तो पाप ही हुआ और न लोक मे किसी तरह का अपयश।

परशुराम

अन्य मत से—

राम मात्र लघु नाम हमारा।
परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥

—मानस, सो०–१

जमदग्नि के पाँचवें पुत्र का नाम। शंकर से इन्होंने अमोघ परशु प्राप्त किया था, अतएव इन्हें परशुराम कहते है। इनकी माता के चित्त की चंचलता के

कारण इनके पिता ने अपने सब पुत्रों से माता का वध करने को कहा। किसी ने भी उनकी आज्ञा का पालन न किया। इससे पिता ने सबको ज्ञानहीन कर दिया अंत में परशुराम ने पिता की आज्ञा से माता का सिर काट डाला। पिता ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। इन्होंने ४ वरदान माँगे--(१) माता जीवित हों, (२) भाई सचेत हों, (३) मैं दीर्घजीवी होऊँ और (४) मैं युद्ध में अपराजेय होऊँ। पिता ने कहा 'तथास्तु'।

हैहयराज कार्तवीर्य ने इनके पिता का वध कर डाला था। इसी अपराध में इन्होंने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन किया और राज्य ब्राह्मणों को दे दिया। रामावतार में जनक के यहाँ धनुष टूटने पर ये जनक के यहाँ आए। राम ने इनका दिया हुआ धनुष चढ़ा दिया। तब ये समझ गए कि विष्णु का अवतार हो गया। अतएव ये जंगल को चले गए। इन्हें विष्णु का अवतार माना जाता है।

पार्वती जी का राम नाम पर विश्वास

सहस नाम सम सुनि सिव बानी।
जपि जेईं पिय संग भवानी॥

—मानस, बा०-१

किसी समय कैलास पर्वत पर शंकरजी विष्णुपूजन कर भोजन करने बैठे और पार्वती जी से कहा कि हे पार्वती, तुम भी आओ, हमारे साथ भोजन करो। इस पर पार्वती जी बोलीं--आप भोजन करें, मुझे अभी भगवान् के सहस्र नाम का जप करना है, सो मैं पाठ करके प्रसाद लूँगी। यह सुनकर महादेव जी हँसे और बोले--तुम धन्य हो और परम भक्त हो। हे वरानने! तुम 'राम' यही नाम उच्चारण कर हमारे साथ भोजन करो, तुमको सहस्र नामजप के समान फल हो जाएगा और तुम्हारा नियम भंग न होगा। यह

शिव जी का वचन सुन, विश्वास कर, श्रीराम का नामोच्चारण करके महादेव के संग बैठकर भवानी ने भोजन कर लिया।

पुराण

दुइ सुत सुंदर सीता जाए।
लव कुस वेद पुराननि गाए॥

—मानस, सो–७

पुराण हिंदुओं के प्राचीन धर्म ग्रथो का नाम। संख्या में ये १८ है। भागवत, हरिवंश, ब्रह्म आदि अति प्रसिद्ध है। भारतीय इतिहास को समझने के लिये इनका अध्ययन अत्यत आवश्यक है। इनमे विभिन्न रूप, सृष्टितत्व, अवतारो की कथा तथा दार्शनिक तत्वों का समावेश है। कपोलकल्पित बातें अधिक नही है, यद्यपि ऐतिहासिक तथ्य भी हैं।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्॥

पुराण में ५ अंग मुख्य होने चाहिए—(१) सृष्टितत्व, (२) प्रलय, (३) देवताओ की वशावली, (४) मनुष्यो का राज्यकाल, (५) सूर्य तथा चंद्रवश। १८ पुराणों की तीन वृत्तियां है। विष्णु मे नारदीय, गरुड़, पद्मवराह, और भागवत मे सात्विक ब्रह्म, ब्रह्मांड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कंडेय, भविष्य और वामन में राजसिक और मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कंद तथा अग्नि मे तामसिक वृत्ति हैं। किंतु यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं है। इनके अलावा १८ उपपुराण हैं–१ सनत्कुमार, (२) नरसिंह, (३) नारदीय, (४) शिव, (५) दुर्वासा, (६) कपिल, (७) भार्गव, (८) औशंस, (९) वरुण, (१०) कालिका, (११) शांब, (१२) नंदी, (१३) सौर, (१४) पराशर, (१५) आदित्य, (१६) माहेश्वर, (१७) भागवत और (१८) वसिष्ठ

पुलस्त्य

कौतुक लागि भवन लै आवा।
सो पुलस्ति मुनि जाइ छुड़ावा ॥

—मानस, सो०—६

पुलस्त्य एक ऋषि थे जो ब्रह्मा के मानसपुत्र, दक्ष के जामाता तथा शंकर के साढ़ू थे। कर्दम प्रजापति की पुत्री हर्विभुवा इनकी पत्नी थी जिससे इनको अगस्त्य और विश्रवा नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। यही विश्रवा रावण के पिता थे। महाभारत के अनुसार तृणविंदु राजा की कन्या गौ से पुलस्त्य का विवाह हुआ था।

पूतना

पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत,
भूत ग्रह बेताल खग मृगालि जालिका ॥

—विनय०,

पूतना एक राक्षसी थी जो अघासुर, वत्सासुर तथा वकासुर की बहन थी। कंस ने इसे कृष्ण का वध करने के लिये गोकुल भेजा था। यह एक सुंदर नारी का रूप धारणकर अपने स्तनो मे विष का लेपन करके गई थी और यशोदा की गोद से कृष्ण को लेकर वह उन्हे अपना स्तन पान कराने लगी थी। कृष्ण ने बड़ी लगन के साथ उसके स्तनो का पान आरंभ किया और उसे छोड़ने को ही नही उद्यत थे। अंत में झुँझलाकर वह कृष्ण को लेकर भागी। उस समय उसका आकार विराट् हो गया। फिर भी कृष्ण उसके स्तनों को चूसने मे लगे हुए थे और उस समय तक चूसते रहे जब तक वह मृत होकर धरनी पर

गिर नहीं पड़ी। कहा जाता है कि जितनी दूर वह गिरी थी उतनी दूर की भूमि धँस गई थी।

नरहरि और प्रह्लाद

होइ नरहरि दूसर पुनि मारा।
जन प्रह्लाद सुजस विस्तारा॥

—मानस, सो०—१

भक्त प्रह्लाद की रक्षा और हिरण्यकशिपु का वध करने के लिये भगवान् ने नृसिंह का अवतार लिया था। हिरण्यकशिपु के चार बेटे थे, जिनमे से छोटे प्रह्लाद बड़े भारी विष्णुभक्त थे। पिता को विष्णु से विरोध था। इसी लिये पुत्र सदा नजरबंद रहता था। पुत्र शंड और अमर्क दोनों अपने घर के काम मे लगे थे, उसी समय प्रह्लाद ने अपने साथ के पढ़नेवाले बालकों को बुलाकर ज्ञान का उपदेश किया कि तुम लोग वृथा अपनी आयु मत गँवाओ और ईश्वर का भजन करो, इसी में कल्याण है। मैंने यह ज्ञान नारद मुनि से पाया, सो तुमसे कहा। बालक बोले कि हम तुम एक ही अवस्था के हैं और सिवा गुरु के अब तक हमको या तुमको कोई और शिक्षक नहीं मिला, फिर तुम्हें यह ज्ञान नारद जी से कैसे मिला? प्रह्लाद ने कहा भाइयों, जब मेरे पिता मंदराचल पर तपस्या करने गए तब देवताओं ने दैत्यों को निराश्रय जान घोर युद्ध का उद्यम किया और उनके भय से दैत्यों के यूथपति घबड़ाकर अपने स्त्री-पुत्र-धनादि सब छोड़ इधर उधर भाग निकले। ऐसा अवसर पा देवताओं ने राजा का शिविर लूट लिया। इसी मे मेरी माता कयाधु को भी पकड कर ले चले। उसी समय अनायास नारद आ मिले। बोले—हे सुरेंद्र इस पतिव्रता निरपराधिनी स्त्री को छोड़ दो, इसे न ले जाना चाहिए। इंद्र बोले—भगवान्! इसके उदर में हिरण्यकशिपु का गर्भ है, जो अत्यंत भयंकर होगा। प्रसव होने तक अपने पास रखूँगा, बालक उत्पन्न होने पर लड़के को मारकर इसे छोड़ दूँगा। इसपर नारदजी फिर बोले 'इसके उदर में निष्पाप

महावैष्ण महात्मा है, जो मारे न मरेगा, क्योंकि भगवान् के भक्त महा बलवान् होते हैं। ऐसा वचन सुन मेरी माता की प्रदक्षिणाकर, इंद्र स्वर्ग को चला गया। नारद जी ने मेरे पिता के आने तक मेरी माता को अपने आश्रम में ले जाकर रखा। दयालु मुनि ने धर्म का तत्व और ज्ञान मेरी माता को समझाया, साथ ही पुत्र को भी बोध देने का उद्देश्य था। स्त्री होने और बहुत काल बीतने के कारण मेरी माता का तो बोध बिल्कुल जाता रहा, परन्तु मुझे नारद जी की कृपा से उसका स्मरण अब तक बना है। यदि तुम लोग भी मेरी बात मानो तो तुमको भी बोध हो सकता है और श्रद्धा हो तो मेरे ही जैसी ब्रह्मविद्या भी प्राप्त हो सकती है। अतः हे दैत्यपुत्रो प्राणी मात्र को अपने बराबर जान सबपर दया करो और ईश्वर की भक्ति तथा नाम स्मरण करो, यही मुख्य स्वार्थ है।

अपने पिता के विरुद्ध प्रह्लाद इसी तरह जब जब अवसर मिलता था, उपदेश करता था। यह जानकर हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को अनेकानेक यातनाएँ देने लगा, साथ ही भगवान् रक्षा भी करने लगे। पिता ने विरोधकर इनपर शस्त्रों से प्रहार करवाया, पर्वत पर से गिरा दिया, जल में डुबो दिया, अग्नि में डाल दिया, विष पिला दिया, हाथी से रौंदवाया, सर्प से कटवाया, पर किसी प्रकार प्रह्लाद को न मार सका। उधर प्रह्लाद के सत्संग से पवित्र प्रह्लाद के साथी बालक गुरु की शिक्षा छोड़ प्रह्लाद के अनुगामी हुए। डर के मारे गुरु शुक्राचार्य के पुत्रों ने यह समाचार हिरण्यकशिपु को जा सुनाया। वह क्रोध से थर्रा उठा और पुत्र को बुला अति कठोर वाणी से बोला—रे कुलकलंक, मेरी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले, तू निर्भय की तरह किसके बल से बर्ताव करता है? प्रह्लाद ने उत्तर दिया—हे राजन् सब स्थावर जंगम में, तुम्हारे में, मेरे में तथा संपूर्ण सृष्टि में एक ईश्वर ही बल और आधार है। अपना असुरभाव छोड मन में समता लाओ। इस अजित और चंचल विपरीतगामी मन में समता रखना ही ईश्वर की बड़ी आराधना है। हिरण्यकशिपु फिर बोला—तू निश्चय मरना चाहता है, बहुत बकवाद कर रहा है। अच्छा, रे मंदभाग्य, मेरे सिवा तेरा दूसरा ईश्वर कहाँ है। प्रह्लाद ने कहा—'सब कहीं'। हिरण्यकशिपु बोला तब इस खंभे में क्यों नहीं है? प्रह्लाद बोले इसमें तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने खंभे की ओर देखकर कहा—तू विपरीत बोल रहा है। अभी

मै तेरा सिर धड से अलग कर देता हूँ। तू जिस विष्णु का पक्ष करता है उसे बुला, देखूँ वह कैसे तेरी रक्षा करता है। इस प्रकार महावैष्णव पुत्र को दुर्वचन से पीड़ित कर खड्ग ले आसन से उछल उसने खंभे मे एक मुक्का मारा। तुरत उस खंभे से महाभयंकर शब्द हुआ जिसे सुन त्रिलोक काँप उठा। दैत्य डर उठे। शब्द करनेवाले को किसी ने न देखा। हिरण्यकशिपु भौचक सा हो चारो ओर देख रहा था कि उसी खंभे को चीरकर श्रीनृसिंह भगवान् निकल पड़े। इनका रूप नर और सिंह से मिश्रित देख हिरण्यकशिपु घबड़ाया कि ब्रह्मा के बरदानों से विलक्षण यह रूप न तो मनुष्य का है और न पशु का अवश्य यह रूप मेरे मारने को विष्णु ने धारण किया है। यह सोच उसने दौड़-कर एक गदा भगवान् की छाती मे मारी पर उन्होंने उसे पकड लिया और खेलाने के लिये छोड भी दिया। फिर वह ढाल तलवार लेकर दौड़ा, तब उन्होंने उसे देहली के ऊपर सायंकाल के समय गोद मे लिटाकर अपने नखों से चीर डाला और प्रह्लाद की रक्षा की।

इस प्रकार नाम जपने से श्री हरि प्रसन्न हुए और प्रह्लाद को भक्तशिरोमणि बनाया। इन्ही प्रह्लाद जी के पोते बलि हुए।

ब्रह्मा

तब ब्रह्मा धरनिहिं समुझावा।
अभय भई भरोस जिय आवा॥

—मानस, सो०—१

ब्रह्मा हिंदुओ के तीन प्रमुख देवताओं (हिंदू त्रिदेवो) मे से एक है। इनकी उत्पत्ति के सबध मे मनुस्मृति मे उल्लेख है कि स्वयंभू भगवान् ने जल की सृष्टि करके उसमे जो वीर्य स्खलित किया था, उससे एक ज्योतिर्मय अंड की उत्पत्ति हुई थी और इसी से ब्रह्मा का प्रादुर्भाव हुआ था। अन्य मत से

एकार्णव में शेष की शैया पर लक्ष्मी द्वारा सेवित होकर शयन करते हुए विष्णु की नाभि से जिस कमल की उत्पत्ति हुई थी, उसी से ब्रह्मा का जन्म हुआ था, ब्रह्मा चतुर्मुख कहे जाते है। इस संबंध मे कथा है कि एक बार ब्रह्मा के शरीर से एक सुंदरी कन्या की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा उसे देखते ही उसपर मोहित हो गए। उनकी वासनापूर्ण दृष्टि से अपनी रक्षा करने के लिये वह एक ओर गई। ब्रह्मा पुनः देखने लगे, इसी प्रकार वह ब्रह्मा के चारो ओर घूमी और ब्रह्मा उसे देखने को चतुर्मुख हो गए। उन्होने उस कन्या को, जो आगे चलकर सरस्वती संज्ञा से विभूषित हुई, अपनी अर्द्धांगिनी बना लिया। ब्रह्मा सृष्टि के कर्त्ता माने जाते है। इनके दस मानसपुत्र कहे जाते है। मरीचि, अत्रि, अंगिरा पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु तथा नारद। ब्रह्मा वेदो के प्रकट करनेवाले भी माने जाते है। कर्मानुसार मनुष्य के शुभाशभ फल तथा भाग्य का निर्माण भी उन्ही का कार्य कहा जाता है। हिंदू त्रिदेवों मे इस प्रकार इनका प्रथम स्थान है। फिर भी हिंदू समाज इनकी पूजा के प्रति सदा से उदासीन रहा है। इस संबध मे कथा है कि ब्रह्मा ने अपने मानसपुत्र नारद को उत्पन्न करने के बाद उनसे सृष्टि की रचना करने के लिये कहा था। नारद ने तपश्चर्या को अधिक उपयुक्त समझकर उसी को ग्रहण करने की बात कही। ब्रह्मा ने इससे क्रोधित होकर नारद को शाप दे दिया। नारद भी उस शाप को सुनकर क्रोधित हो गए और उन्होने कहा कि आपने पिता होकर मुझे शाप दे दिया है, यह देखकर मुझे विशेष दुःख होता है। मै भी आपको शाप देता हूँ कि आप की पूजा कभी भी न हो। ब्रह्मा प्रथम प्रजापति माने जाते है।

ब्रह्मसभा में दक्ष प्रजापति का क्रोध

ब्रह्म सभाँ हम सन दुखु माना।
तेहि ते अजहुँ करहि अपमाना॥

—मानस, सो०—१

एक बार प्रजापतियों के यज्ञ मे ब्रह्मा की सभा लगी, जिसमे संपूर्ण देवता

और ऋषि बैठे थे। इस सभा में तेजस्वी दक्ष प्रजापति भी आए। उन्हें देख ब्रह्मा और शिव को छोड़ शेष सभी सभासद उठ खड़े हुए। जगद्गुरु ब्रह्मा जी को नमस्कार कर दक्ष बैठ गए। उनके समीप महादेव जी पहले से ही विराज रहे थे। उनको देख वे अपना अनादर न सह सके। वे क्रोध से बोले कि 'हे देवता और अग्नि सहित ब्रह्मर्षियों! अज्ञान और मत्सर को छोड़ मैं जो कहता हूँ सो सुनो। इस निर्लज्ज ने तो लोकपालों के वंश मे कलंक लगा दिया, सत्पुरुषों के चलाए मार्ग को इस घमंडी ने दूषित कर दिया। यह मेरी कन्या सती का पाणिग्रहण कर मेरे शिष्यभाव को पहुँचा है। और मै जो उठकर नमस्कार करने के योग्य हूँ उसका इसने वाणी से भी संमान नही किया। इस क्रियाहीन अपवित्र, मर्यादा तोड़नेवाले, अभिमानी को मैं अपनी कन्या देना नही चाहता था, परंतु जैसे कोई शूद्र को वेद पढ़ावे, वैसे मैंने इसको अपनी कन्या दी। यह मरघट मे प्रेत, भूत, गणों को साथ ले उन्मत्त की तरह नंगा खुले केश हँसता और रोता फिरता है तथा चिता की भस्म लगाकर प्रेतों की मुंडमाला और अस्थियों के गहने पहन घूमता फिरता है। नाम तो इसका शिव है, पर है यह अशिव। यह आप भी मत्त है और मत्त लोग ही इसे भले लगते हैं। यह केवल भूतगणो का ही यह पति है। इस आचारभ्रष्ट को ब्रह्माजी के कहने से मैंने अपनी कन्या दे दी। इस प्रकार अपने जामाता शिव की निंदाकर सभासदो की बात न मानते हुए हाथ में जल लेकर दक्ष ने शाप दिया कि यह देवगणो में नीच महादेव देवताओ के साथ यज्ञ मे भाग न पावे। दक्ष प्रजापति का यह श्राप सुनकर शिवजी के मुख्य गण नंदीश्वर ने क्रुद्ध हो दक्ष को शाप दिया कि किसी से द्रोह न करनेवाले महादेवजी से जो पुरुष मनुष्य शरीर को श्रेष्ठ समझकर द्रोह करता है, वह भेददर्शी पुरुष तत्त्व से विमुख हो जाय। केवल विषयसुख की लालसा मे लगा हुआ यह दक्ष अत्यंत ही स्त्री की कामनावाला हो जाय और तुरत ही इसका मूख बकरे का हो जाय। जो लोग यहाँ दक्ष का अनुसरण करनेवाले हैं वे जन्म-मरण पाया करे और महादेव के द्वेषी केवल कर्म मे आसक्त रहे। भक्ष्याभक्ष्य के विचार से शून्य, केवल पेट भरने के लिये विद्या, तप, व्रतधारण करनेवाले, ये ब्राह्मण इस जगत् मे भिक्षुक होकर माँगते फिरे। नंदीश्वर का ब्राह्मणों पर ऐसा शाप सुन क्रोधित हो भृगु ऋषि ने शापरूप ब्रह्मदंड चलाया कि जो शिवजी का व्रत अथवा अनुसरण करते है वे पाखंडी हो जायँ

और आचारभ्रष्ट होकर वे मूढ वुद्धिवाले जटा, भस्म, अस्थि धारण करके शिवजी की दीक्षा में प्रवेश करें जहाँ मदिरा और आसव यही देववत् पूजनीय गिने जाते है । मनुष्यों की मर्यादा की रक्षा करनेवाले ब्राह्मणों की तुम लोग निंदा करते हो । अतः तुम पाखड मे ही पड़े रहो। परम शुद्ध वेद की निंदा करके तुम पाखंड मे पड़ो कि जहाँ भूतों का पति तुम्हारा स्वामी है। इस झगड़े से सभा भंग हो गई। इस घटना के अनंतर वहुत काल वीतने पर दक्ष प्रजापति के यहाँ यज्ञाग्नि मे सती के शरीरत्याग के समय दक्ष की जो दुर्गति हुई मानस मे उसका इस प्रकार उल्लेख है—

भै जगविदित दक्षगति सोई ।
जसि कछु संभु विमुख कै होई ॥

वालि, दुंदुभी और ताल

दुदुभि अस्थि ताल दिखराए ।
विनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ।
देखि अमित वल वाढ़ी प्रीती ।
वालिवधव इन भइ परतीती ।

—मानस, सो०-४

किष्किधा पुरी मे वालि कपियों का राजा था और अतीव वलशाली था। एक वार आधी रात के समय दुदुभी नाम का दैत्य जो वड़े प्रचंड शरीर का अत्यंत ही वलवान् था, किष्किधा में आया और भयकर नाद करते हुए उसने वाली को ललकारा। महाक्रोधी वालि उसका नाद सुनकर अधीर हो गया। वालि ने उसी समय वाहर जाकर उस दैत्य की सीग पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया और उसकी छातीपर लात धर सिर मरोड़कर अलग कर दिया तथा

हाथ में ले उसके बोझ का अनुमान कर पृथ्वी पर उसे सहज ही फेंक दिया। पर ऊँचे से फेंके जाने से वह एक योजनपर मतग ऋषि के आश्रम मे गिरा। उस सिर से बहुत सा रक्त बहा। यह देख ऋषि ने क्रोधकर वालि को शाप दिया कि आज से जो तू यहाँ आएगा तो तेरा मस्तक फट जाएगा और तू मर जायगा। इसी शाप के भय से वालि उस पर्वत पर नही जाता था और वालि के भय से सुग्रीव वहाँ रहता था। श्रीराम के आनेपर सुग्रीव ने दुदुभी का पर्वताकार सिर दिखाया। श्रीराम जी ने मुस्कुराकर पैर के अगूठे से उस सिर मे सहज ही एक ठोकर मारी जिससे वह दस योजन पर जा गिरा। इस अद्भुत कर्म को देख सुग्रीव ने रामचद्र की सराहना की और कहा—हे रघुवर देखिए, यह सात ताल के वृक्ष है, जिनके पत्ते वालि सहज ही हिलाकर गिरा देता है। यदि आप इन सातो वृक्षो को एक ही बाण से छेद दे तो मुझे वालि के मारने का विश्वास हो जाय। यह सुनकर रामजी ने धनुष पर बाण चढ़ाया और छोड़ा। वह बाण सातो तालों को भेदता हुआ पर्वत से टकराकर पूर्ववत् फिर तरकश मे आ गया। यह देख सुग्रीव को बड़ा अचरज हुआ।

वेनु

ध्रुव के वंश मे कई पीढ़ी पीछे एक बडे धर्मात्मा राजा अंग हुए। अंग के संतान न थी। ब्राह्मणो ने यज्ञ कराया। यज्ञपुरुष ने खीर दी जिसे राजा ने अपनी भार्या सुनीथा को खिलाया। समय होने पर पुत्र हुआ। वही वेनु था। यह लड़का बचपन से ही अपने पिता की मृत्यु मनाने लगा। शिकार को निकलता था तो पशुओं को तथा दीन जनों को मारा करता था। इससे जिधर से यह निकलता, लोग देखकर कहते 'वेनु आता है।' वेनु बड़ा निर्दय और क्रूर था। खेलते हुए बराबर के बच्चों को पशु की तरह मार डालता था। राजा

ने अनेक भाँति शिक्षा दी, पर इसे बुद्धि न आई। दुःखी होकर आधी रात को अपनी सुनीथा को सोती छोड़ राजा घर से चला गया। बहुत खोज हुई परंतु राजा का, जो कहीं दूर नहीं गए थे, कहीं पता न लगा। अंत को ब्रह्मवादी भृगु आदि ऋषियों ने मंत्रियों का विरोध होते हुए भी वेनु का ही राज्याभिषेक कर दिया। भयंकर वेनु के राजा होते ही प्रजा छिपने लगी। अपने को सबसे बड़ा माननेवाला वेनु महात्माओं का अपमान करने लगा और निरंकुश मस्त हाथी की तरह आकाश और पृथ्वी को कँपाता रथ पर बैठ घूमने लगा। फिर उसने डौंडी पिटवा दी कि 'द्विजो तुम न तो होम करो, न दान दो, और न भजन करो।' वेनु की कुचालों से लोगों को दुःखी होते देख सब ऋषि इकट्ठे होकर विचार करने लगे कि एक ओर तो अत्याचारियों और चोरों का भय, दूसरी ओर राजा का भय, यह तो वह दशा हुई कि जो दोनों ओर से जलती हुई लकड़ी के बीच में बैठे हुए कीड़े की हो। अराजकता के भय से स्वयं हमने ही इसे राजा बनाया, अब जैसे साँप दूध पिलानेवाले को ही काटता है वैसे ही यह स्वभाव से दुष्ट राजा प्रजा का नाश करना चाहता है, अस्तु एक बार चलकर समझा दें, जिससे फिर पाप के भागी न हों। ऐसा विचार कर अपने क्रोध को गुप्त रख मुनि उसके पास गए और नीतियुक्त वाणी से उसे शांत करके बोले—'हे राजा आपकी आयु, बल, लक्ष्मी और कीर्ति बढ़ाने के लिये हम विनती करते हैं, सुनिए। मन, वाणी, काय और बुद्धि से धर्माचरण करो, इससे यह लोक मिलता है और निष्काम कर्म करने से मोक्ष भी मिलता है। इसलिये प्रजा की रक्षा का राजधर्म नष्ट न होना चाहिए। धर्म नष्ट होने से राजा राज से भ्रष्ट हो जाता है। दुष्ट कारिंदों और चोरों से प्रजा की रक्षा करने से राजा को दोनों लोकों में सुख मिलता है। हे महाभाग, जिस राज में प्रजा अपने अपने धर्म के अनुसार भगवान् की अर्चा करती है उससे ईश्वर भी प्रसन्न रहते हैं। अतः हे महाराज, सब लोग तुम्हारे ही कल्याण के लिये यज्ञ द्वारा देवता और वेदमय भगवान् का पूजन करते हैं। अतः देवताओं का अपमान करना उचित नहीं है।' मुनियों की यह बात सुनकर वेनु बोला—तुम लोग अधर्म को धर्म माननेवाले मूर्ख हो, क्योंकि आजीविका देनेवाले पति को छोड़कर जार की उपासना करते हो। विष्णु कौन है, जिसकी तुम लोग दृढ़ भक्ति करते हो? विष्णु और सब देवता राजा के शरीर में रहते हैं। राजा सर्वदेवमय है। हे ब्राह्मणो, मत्सर छोड़कर तुम सब यज्ञादि कर्म और बलि से मेरा पूजन करो। मेरे सिवा

कौन पुरुप आराधना के योग्य है ?' फिर भी ऋपियों ने उसे अनेक भांति समझाया, पर उस हतभाग्य की समझ में कुछ न आया। अब ब्राह्मण अपने क्रोध को रोक न सके। सोचा कि इस दुष्ट को मार डालना ही उचित है। यह जीवित रहेगा तो जगत् को पीड़ा देता रहेगा। ऐसा निश्चय कर ब्राह्मणों ने क्रोध कर 'हुंकार' शब्द से राजा को मार डाला।

भरद्वाज

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा।
तिन्हहि रामपद अति अनुरागा।।
—मानस, सो०—१

भरद्वाज ऋपि का प्रयाग मे गंगा तट पर बहुत बड़ा आश्रम था जहाँ पर बहुत से विद्यार्थी पढ़ने आते थे। संभवतः भारतवर्ष मे यह पहला विश्वविद्यालय था। राम, सीता और लक्ष्मण बनवास के समय इनके यहाँ ठहरे थे। भक्तमाल के अनुसार ये प्रसिद्ध वैदिक ऋषि और बृहस्पति के पुत्र तथा कौरवों-पांडवों के गुरु द्रोणाचार्य के पिता थे। हरिवंश आदि अन्य पुराणों के अनुसार ये राजा भरत के दत्तक पुत्र थे। ये दो पितरों से उत्पन्न थे। इन्होंने याज्ञवल्क्य ऋपि से रामकथा का श्रवण किया था।

भृगु मुनि

सती मरन सुनि संभुगन लगे करन मख खीस ।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु रच्छा कीन्ह मुनीस ।।

—मानस, सो०—१

भृगु शिव के पुत्र माने गए हैं। इनके साथ ही ब्रह्मा के कवि और अग्नि के अंगिरा माने गए हैं। एक बार यह निर्णय करने के लिये कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों में कौन बड़ा है—इन्होंने तीनों का अपमान किया। ब्रह्मा और महेश क्रुद्ध हो गए। फिर क्षीरसागर में शयन करनेवाले भगवान् विष्णु के सोते समय जाकर उनकी छाती पर इन्होंने एक लात मारी, किंतु जागने पर क्रोध करने के बजाय विष्णु ने पूछा कि आप के पैर में चोट तो नहीं लगी। इसपर भृगु विष्णु की महत्ता और श्रेष्ठता मान गए। भृगु के कुल में ही ऋचीक, जमदग्नि तथा परशुराम हुए। अन्य पुराणों के अनुसार भृगु ब्रह्मा के मानसपुत्र तथा दक्ष प्रजापतियों में से एक हैं। दक्षकन्या ख्याति इनकी स्त्री थी। भृगु धनुर्वेद विद्या के प्रवर्तक थे। भृगु ने एक बार शिव को भी शाप दिया था। नंदी ने इन्हें भीतर जाने से मना कर दिया था, क्योंकि शिवजी पार्वतीजी के साथ संभोगरत थे। इनके शाप से ही कलियुग में लिंग और योनि के रूप में शिव की पूजा होती है और इनका प्रसाद द्विजातियों को ग्राह्य नहीं है।

मंदोदरी

मयतनया मंदोदरि नामा ।
परमसुंदरी नारि ललामा ।।

—मानस सो०—१

मंदोदरी पंच कन्याओं में से एक मानी जाती है। इसका पिता मय नाम का असुर था तथा इसकी माता रंभा थी। मंदोदरी रावण की रानी तथा

इंद्रजीत की माँ थी। राम का विरोध न करने के लिये इसने रावण को बरा-बर समझाया। राम द्वारा रावण का वध और विभीषण को राज्य मिलने पर यह विभीषण की पत्नी हुई।

ययाति

तनय ययातिहि यौवन दयऊँ।
पितु अज्ञा अघ अजस न भयऊ॥

—मानस, सो०–२

ययाति बड़े विषयी थे और शर्मिष्ठा में विशेष अनुरक्त थे। राजा नहुष के छह पुत्र थे। उनमे से एक का नाम ययाति था। बडे भाई ने राज्य जब न लिया तब यह राजा हुए और शुक्राचार्य की कन्या देवयानी तथा वृषपर्वा दैत्य की कन्या शर्मिष्ठा को रानी बनाकर राज्य करने लगे। देवयानी से यदु और शर्मिष्ठा से पुरू का जन्म हुआ। इसी से यादव और पौरव दो वशों की नीव पड़ी। शुक्राचार्य ने ययाति को आज्ञा दी थी कि वह शर्मिष्ठा से सभोग न करे परंतु ऋतुकाल मे स्त्री की प्रार्थना से राजा उसे अस्वीकार न कर सके। इससे उसे गर्भ रहा सपत्नी देवयानी रूठकर अपने पिता के घर चली आई और राजा भी मधुर वाणी से मनाता हुआ उसके पीछे चला आया परंतु पैर दबाने की सेवा करके भी उसे प्रसन्न न कर सका। तब शुक्राचार्य्य ने कुपित होकर कहा कि हे कामी, मंद मनुष्यों को विरूप करनेवाला बुढापा तुझे प्राप्त हो। तब राजा बोले हे ब्रह्मन्! आपकी कन्या से संभोगकर मै अभी तृप्त नही हुआ हूँ अतः यदि मेरा बुढापा लेकर कोई अपनी जवानी देना स्वीकार करे तो मैं उससे बदल सकूँ, ऐसा उपाय किजिए। शुक्राचार्य ने स्वीकार किया, तब ययाति ने सबसे बडे पुत्र यदु से पहले कहा कि हे तात, अपने नाना का दिया हुआ बुढापा मुझसे लेकर अपनी जवानी मुझे दे। हे वत्स! मै अभी विषयों से तृप्त नही हुआ हूँ सो तेरी जवानी लेकर कितने ही वर्ष रमण करूँगा! यदु

बोला कि 'बीच ही में बुढ़ापा लेकर मैं नहीं रहा चाहता, क्योंकि विषयसुख को जाने बिना तृष्णा नहीं मिटती।' इसी प्रकार राजा ने अपने पुत्र तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु से भी कहा परंतु सब धर्म को न जाननेवाले और अनित्य को नित्य समझनेवाले नहीं कर गए। अंत में उन्होंने सबसे छोटे पुत्र गुणपूर्ण पुरु से कहा—'हे वत्स तूं अपनी युवावस्था मुझे दे और मेरा बुढ़ापा स्वीकार ले। तूं भी अपने भाइयों की तरह नहीं मत करना।' तब पुरु बोला कि 'पिता के उपकारों का बदला कौन दे सकता है? जो पुत्र कहे पर भी न करे तो वह पिता का विष्ठारूप है।' इस प्रकार पुरु ने प्रसन्न मन से पिता का बुढ़ापा ले, उसे अपनी जवानी दे दी। राजा विषयभोग करने लगा। हजारों वर्ष बीत गए, परंतु विषय सुख से तृप्ति न हुई। तब ज्ञान के प्रकाश में अपनी भूल समझ पुत्रों को राज बांट राजा तपस्या करने चला गया।

—:—

याज्ञवल्क्य

जागबलिक मुनि परम बिबेकी।
भरद्वाज राखे पद टेकी।

—मानस, सो०—१

याज्ञवल्क्य मुनि शुक्ल यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण, बृहदारण्यक उपनिषद् तथा याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रणेता के रूप में चर्चित हैं। कात्यायन के बाद मनु (मनुस्मृतिकार) के पहिले इनका समय पड़ता है। महाभारत के अनुसार ये युधिष्ठिर की सभा में थे। मैत्रेयी और कात्यायनी नाम की इनकी दो स्त्रियां थीं। इनका दूसरा नाम वाजसनेय था। भरद्वाज ने इनसे रामचरित का श्रवण किया था

रंतिदेव

रंतिदेव वलि भूप सुजाना।
धरम धरेउ सहि संकट नाना।
--मानस, सो--२

राजा रतिदेव अत्यंत ही दानी नरेश था। इसे जो धन अकस्मात् मिल जाता उसी से निर्वाह करता था और जो पास होता उसे सब दे डालता था, फिर जो नया मिलता उसी को भोगता था। अपने पास कुछ न रहने पर भी धैर्य कभी न छोड़ता था। एक बार यह कुटुंब सहित बहुत दुःखित हो गया, यहाँ तक कि अड़तालीस दिन बीत गया जल तक पीने को न मिला। अडतालीसवें दिन घृत, खीर, लपसी और जल अकस्मात् ही सवेरे ही प्राप्त हुए। भोजन की तैयारी हो ही रही थी कि एक ब्राह्मण अतिथि आ गया। राजा बड़ा त्यागी और भक्त था। उसे आदरपूर्वक अपना भाग खिलाकर विदा करके शेष अन्न भोजन करने को ही था कि एक शूद्र आ निकला। इसने कुछ उसे भी दे दिया। इतने में कुत्ता लिए दूसरा अतिथि भी आ पहुँचा। उसने कहा,--हे राजा मै और मेरे कुत्ते सब भूखे हैं, मुझे अन्न दीजिए।' राजा ने बड़े आदर से बचा अन्न उन्हें देकर सबको प्रणाम किया। अब उतना ही जलमात्र शेष रह गया जिससे एक मनुष्य तृप्त हो सके। राजा पीने को ही था कि एक चांडाल आया और बोला--मुझ नीच को जल दीजिए। उसकी परिताप भरी दीन वाणी सुन राजा दया से पीड़ित हो अमृत सी वाणी बोला--

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्॥

अर्थात् 'मुझे न तो राज्य की और न मोक्ष की ही इच्छा है। मेरी यही कामना है कि सब प्राणियों की पीड़ा मिट जाय। इसी को मैं अपना दुःख छूटना समझता हूँ।' इतना कहकर आप प्यासा रह, उसे जल दे दिया। फल न चाहनेवालों को फल देनेवाले ईश्वर तथा ब्रह्मादि देवता कुत्ते आदि का माया रूप धरकर आए थे। उन्होंने फिर अपना रूप धारणकर राजा को दर्शन दिया। राजा ने उनको भक्तियुक्त प्रणाम किया पर कुछ इच्छा न की। ईश्वर

की भक्ति में ही मन लगाया था, इससे भगवत् की गुणमयी माया उसके लिये स्वप्नवत् नष्ट हो गई।

रंभा

रंभादिक सुर नारि नवीना।
सकल असमसर कला प्रवीना॥

—मानस, सो—१

रंभा एक अप्सरा थी। इसकी उत्पत्ति देवासुर के समुद्रमथन से मानी जाती है और यह सौंदर्य के एक प्रतीक के रूप मे स्वीकृत है। इंद्र ने देवताओ से इसे अपनी राजसभा के लिये प्राप्त किया था। एक वार उन्होने विश्वामित्र की तपस्या को भग करने के लिये भेजा था, किंतु महर्षि ने इससे अप्रभावित होकर इसे एक सहस्र वर्ष तक पाषाणी के रूप मे रहने का शाप दिया। कहा जाता है कि एक वार जव यह कुवेर-पुत्र नलकूवर के यहाँ जा रही थी तो कैलास की ओर जाते हुए रावण ने मार्ग मे रोककर इसके साथ वलात्कार किया था। नारद मोह के प्रसंग में वालकांड मे मानसकार ने इसका उल्लेख किया है।

रघु

रघु इक्ष्वाकु वशी राजा दिलीप के पुत्र और श्री रामचंद्र के परदादा थे।

अयोध्या के ये अत्यंत पराक्रमी राजा थे। जब ये छोटे थे तभी इनके पिता दिलीप ने अश्वमेध यज्ञ किया और यज्ञ के अश्व की रक्षा का भार इनपर सौपा। इंद्र ने जब उस अश्व को पकड़ लिया तब रघु ने इंद्र को पराजित किया और अश्व प्राप्त किया। राजा होने पर इन्होंने विश्वजित नामक यज्ञ किया और समस्त राज्यकोष का दान कर दिया। इनके पुत्र अज थे। सूर्यवंश में यही सबसे प्रसिद्ध राजा हुए इसलिये वंश इन्हीं के नाम से चला।

रति

जोगी अकंटक भए पति गति सुनति रति मुरुछित भई।

—मानस, सो०—१

रति कामदेव की अर्द्धांगिनी तथा दक्ष प्रजापति की कन्या थी। कहा जाता है दक्ष ने अपने शरीर के श्रमविंदुओ से इसे उत्पन्न करके कामदेव को समर्पित किया था। यह सौंदर्य के प्रतीक स्वरूप मानी जाती है। इसके सौंदर्य को देखकर सभी देवताओ के हृदय मे आकर्षण की भावना उत्पन्न हुई थी, इसी से इसका नामकरण रति हुआ। शिवजी ने जब इसके स्वामी कामदेव को अपना ध्यान भंग करने के कारण क्रोधित होकर भस्म कर दिया तब इसी ने शिव से प्रार्थना करके अपने स्वामी के अनंग रूप से जीवित रहने का वर प्राप्त किया था। मृत्युलोक में स्वयं मायावती के रूप में जन्म लेकर अनिरुद्ध के रूप में कामदेव के अवतरित होने और प्रतिरूप में उसे प्राप्त करने का वरदान पाया था।

रावण और वालि

एक कहत मोहि सकुच अति रहा वालि की काँख।
तिन महँ रावन कवन तैं सत्य वदसि तजि माख॥

—मानस, लं०—६

एक बार रावण वानरराज वालि को मारने की इच्छा से किष्किंधा चला गया परंतु वालि ने उसे अपनी काँख में दबा लिया और उसे चारों समुद्रों पर घुमा फिरा छोड़ दिया। वालि के इस पराक्रम को देख संतुष्ट हो रावण ने उससे मित्रता कर ली।

रावण और कैलास

जेहि कौतुक सिव सैल उठावा।
सोइ तेहि सभा पराभव पावा॥

—मानस, लं०—१

रावण जब अपने भाई कुबेर से पुष्पकविमान जीत उसपर सवार होकर स्वामि कार्तिकेय के उत्पत्ति स्थान वाले जंगल में घुसा त्योंही पुष्पक चलने से रुक गया। वह अचरज में ही था। विकराल कृष्ण पिंगल वर्ण, वानर रूप विकट मूर्ति, सदाशिव के मुख्य गण श्रीनंदीश्वर रावण के पास आकर बोले कि 'हे दशग्रीव, तू यहाँ से चला जा, यहाँ भगवान् शिव क्रीड़ा कर रहे हैं। तू अपने विमान को लौटाकर चला जा। रावण शिवजी का नाम सुन और नंदीश्वर का रूप देख तिरस्कार से हँसा।

उसके हँसने से क्रोधित हो नंदीश्वर बोले—'अरे दशानन, तू मेरे वानर रूप का अनादर कर हँसा। इसलिये वानर लोग तेरे कुल का नाश करेंगे।' शाप पर कुछ भी ध्यान न दे रावण क्रोधकर बोला—हे रुद्र, जिस पर्वत से विमान की गति रुकी, मै उसको ही उखाड़ फेंकता हूँ। इतना कह उसने बड़ी फुर्ती से अपनी भुजाओं को पर्वत के नीचे घुसाकर उसे उठा लिया और तौलने लगा। जब पर्वत डगमगा उठा तो शिव के गण काँपने लगे और पार्वती भी विस्मित हो शिव के शरीर से लिपट गईं। तब तो भगवान् शिव ने कौतुक से ही पर्वत को अपने पैर के अँगूठे से दबाया और दबाने से रावण की भुजाएँ पर्वत के तले मरमरा उठी और दबने से तथा क्रोध म रावण ने ऐसा भयंकर नाद किया कि त्रैलोक्य काँप उठा। देवता, ऋषि, गधर्व सब चकित हो गए। हैरान और लाचार हो रावण आशुतोष शिव भगवान् को प्रणाम कर, सामवेद के मंत्रो से स्तुति करने और रो रो, विलख विलख प्रार्थना करने लगा। इस तरह हजार बरस बीत गए। तब शंकरजी ने प्रसन्न हो उसकी भुजाओं को दाब से छोडकर कहा—हे वीर दशानन, मैं तेरी सामर्थ्य से प्रसन्न हुआ और पर्वत की दाब से जो तूने नाद किया उससे त्रैलोक्य भयभीत होकर रो उठा, इससे आज से तेरा नाम 'रावण' विख्यात होगा। अब जैसे चाहे चला जा, हम अनुमति देते है। सदाशिव ने उसे अपना प्रसाद 'चद्रहास' नामक एक खड्ग और शेष आयुर्बल दिया।

रुद्र

रुद्रहि देखि मदन भय माना।
दुराधर्ष दुर्गम भगवाना।
—मानस, सो०—१

साधारणतः रुद्र शब्द शिव का पर्याय है। रुद्र एक वैदिक देवता भी है। इनकी उत्पत्ति के विषय में अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं। ब्रह्मा ने क्रुद्ध होकर

अपने एक केश से एक पुरुष की सृष्टि की जो जन्म लेते ही विकराल शब्द करके रोया। इसी लिये उसका नाम रुद्र हो गया। ब्रह्मा ने इन्हें सृष्टि रचने को कहा लेकिन इन्होंने बड़ी तामसी सृष्टि रच डाली। इसी लिये इन्हें केवल सृष्टिसंहार का कार्य दिया गया।

विश्वामित्र और वसिष्ठ

विस्वामित्र महामुनि ज्ञानी।
वसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी॥

× × ×

तब वसिष्ठ बहु विधि समुझावा।
नृप संदेह नास कहँ पावा॥

—मानस, सो०—१

राजा गाधि की रानी के कोई संतान नहीं होती थी। राजा गाधि को दो फल आशीर्वाद सहित मिले। एक फल के साथ क्षत्रिय संतान और दूसरे फल के साथ ब्राह्मण संतान के होने का आशीर्वाद था। रानी ने भूल से ब्राह्मण-वाला फल आप खा लिया और क्षत्रियवाला अपनी बेटी रेणुका को खिला दिया। रेणुका जमदग्नि को व्याही थी। फलस्वरूप गाधि के विश्वामित्र और जमदग्नि के परशुराम हुए। महाप्रतापी राजा विश्वामित्र चंद्रवंशी क्षत्रियों के कुलभूषण एक बार दैवयोग से महर्षि वशिष्ठ के यहाँ पाहुने हुए। वशिष्ठ ने दरिद्र ब्राह्मण होते हुए भी राजा विश्वामित्र का उनकी सेना के साथ पूरा सत्कार किया। अपूर्व सत्कार देख राजा विश्वामित्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्हें पता लगा कि वशिष्ठ के घर कामधेनु है। उसके ही प्रभाव से इनके यहाँ कुछ कमी नहीं रहती है। चलती बेर इस मेहमान राजा ने वशिष्ठ से अपना

मनोरथ कहा। राजा ने प्रार्थना की कि कामधेनु मुझे दे दीजिए। यह अपूर्व चीज राजाओं के ही योग्य है।

वशिष्ठ ने समझाया 'भूपते! यह गाय मेरी नही है, ऋषियों की पंचायती है। जव जिसे आवश्यकता पड़ती है तब यह उसके पास चली जाती है। मैं श्रीमान् को भेट करने मे असमर्थ हूँ।'

विश्वामित्र इस उत्तर से संतुष्ट न हुए। उन्होंने न देने के लिये इसे वहाना समझा। वोले, ऋषिदेव! यदि न दोगे, तो मैं राजा हूँ, क्षत्रिय हूँ, तुम से वलपूर्वक छीन लूंगा।'

राजा विश्वामित्र को आज्ञा देने की देर थी। सेना संनद्ध हो गई। उधर वशिष्ठजी के पुत्र भी सेना इकट्ठा कर लाए। युद्ध छिड़ा। घोर घमासान हुआ। क्षात्रवल प्रवल रहा। वशिष्ठ हार गए। उनके पुत्र खेत रहे। अव कामधेनु राजा के अधिकार में आवेगी।

इतने में यवनो की सेना तैयार होकर आई। वशिष्ठजी की कुमक देखकर विश्वामित्र चकराए। फिर संग्राम हुआ। अंत मे मुगल पठान भी हार गए।

इसी तरह यवन, तुरुष्क, कांवोज, चीन, निपाद, किरात इत्यादि अनेक योद्धा जातियाँ कुमक मे आईं। सव लड़ी। नष्ट हो गईं। विजय की ध्वजा विश्वामित्र की ही फहराई।

वशिष्ठ ने देखा कि सव तरह से क्षात्रवल ही प्रवल रहा। विजयश्री राजा की ही रही। कामधेनु की भी एक न चली। पुत्र भी मारे गए। सर्वनाश हो गया। ब्राह्मण का शरीर तप के तेज से प्रज्वलित हो गया। एक वार सत्य-संकल्प ऋषि ने अपने तपोवल से काम लिया। क्षात्रवल और पशुवल को नष्ट करने के लिये आत्मवल, ब्राह्मवल का प्रयोग किया। एक वार समाधिस्थ हो अपने समस्त आत्मवल को, चरित्रवल को समेटकर एक हुंकार मे क्षात्रवल के सामने लगा दिया। विश्वामित्र के अन्याय पर अवलंवित सेना नष्ट हो गई। राज्यश्री का भस्मावशेष रह गया। ब्राह्मवल, ब्राह्मतेज, जगत मे विजयी होकर फैल गया। वशिष्ठ की अंतिम विजय का डंका वज गया। विश्वामित्र का रंग फीका पड़ गया। राजा ने माना कि सच है, ब्राह्मवल के सामने क्षात्रवल हेय है। मुझे धिक्कार है। मै भी तप करूँगा। ब्राह्मण हुए विना न रहूँगा।

घोरव्रती क्षत्रिय ने क्षत्रियबल से ब्रह्मबल पाने की कठिन तपस्या प्रारंभ की। दिन, सप्ताह, पखवारे, महीने बीतने लगे। बरसों गुजरे। तपस्या में विश्वामित्र दृढ़ रहे। देवता डर गए। उनकी तपस्या में विघ्न डाला। व्रत तोड़ा। व्रताग्रही विश्वामित्र ने फिर से तपस्या आरंभ की। फिर अनेक वर्ष बीते। ब्रह्मा ने आकर पूछा 'राजर्षि! क्या चाहते हो।' विश्वामित्र न बोले, ब्रह्मा जी निराश लौट आए। तपस्या जारी रही।

ब्रह्मा का आसन फिर डोल गया। आकर पूछा,—ब्रह्मर्षि,क्या इच्छा है?

विश्वामित्र बोले 'चाहता हूँ कि वशिष्ठ मुझे ब्रह्मर्षि कहें'। ब्रह्मा ने कहा, 'एवमस्तु' और अंतर्धान हो गए।

विश्वामित्र वशिष्ठ से मिलने आए। परंतु रात हो गई थी। कुटी से बाहर जरा खड़े होकर बुलाने को थे कि कुछ बातचीत सुन पड़ी। खड़े खड़े सुनने लगे।

अरुंधती ने कहा "भगवन्! इन दिनों संसार में राजर्षि विश्वामित्र की तपस्या की धूम है। सभी प्रशंसा करते हैं।'

वशिष्ठ बोले, 'सच है, देवि! राजर्षि नहीं अब उन्हें 'ब्रह्मर्षि' कहो, क्योंकि ब्रह्माजी ने यही वर दिया है। जब ब्रह्मा जी आज्ञा हुई तब समझो कि उनकी तपस्या ब्राह्मणों की तपस्या से कई दरजे बढ़ गई है। इस युग में ऐसा तेजस्वी ब्राह्मण दूसरा नहीं है।'

शुद्ध श्रद्धा और सच्ची सराहना के जल से चिर काल का मैल धुल गया। प्रेम ने किवाड़ खटखटाए। श्रद्धा ने खोल दिए। कभी के दो प्राणहारक शत्रु आज चाव से गले मिले। द्वेष पर प्रेम ने, क्षात्रबल पर ब्रह्मतेज ने, पशुता पर तपस्या ने विजय पाई।

विश्वामित्र और गालव

हठवस सब संकट सहे, गालव नहुप नरेस ।।

--मानस, सो०-२

विश्वामित्र जी जब तपस्या कर रहे थे, उनके धर्म की परीक्षा के लिये साक्षात् धर्म वशिष्ठ का रूप घर उनके पास गए। विश्वामित्र आश्रम में आतुर हो पाक बना रहे थे, उसी समय क्षुधापीड़ित छद्म वेषधारी ने भोजन की इच्छा प्रकट की, परंतु पाक सिद्ध होने की प्रतीक्षा न की और किसी दूसरे तपस्वी के दिए हुए अन्न से अपनी क्षुधा मिटाई। जब धर्म भोजन कर चुके विश्वामित्र भी गर्म अन्न लेकर उपस्थित हुए। धर्म बोले--कि हम भोजन कर चुके। तुम यही ठहरो--जब तक मैं लौट न आऊँ, यह कह धर्म वहाँ से चले गए। दृढ़व्रत विश्वामित्र भी दोनों हाथों से पात्र सिर पर रखे वायुभक्षण करते आश्रम के समीप खड़े खड़े उनके आने की प्रतीक्षा करते रहे। इस अवस्था में उनके प्रिय शिष्य गालव मुनि गौरव के हेतु उनकी टहल करते रहे। सौ बरस पीछे फिर धर्मराज वशिष्ठ का रूप धर भोजन करने आए और देखा कि धृतिमान महर्षि ज्यों के त्यों तब से खड़े है और अन्न भी वैसा ही गर्म और ताजा बना है। धर्म ने वही अन्न भोजन किया और बोले, ब्रिप्रर्षि! मैं पूर्णतया संतुष्ट हूँ। इतना कह धर्म तो चले गए। धर्म के वचन से क्षत्रियत्व से छूट ब्राह्मणत्व को पाकर विश्वामित्र अति प्रसन्न हुए। फिर अपने शिष्य तपस्वी गालव की सेवा से प्रसन्न हो बोले, पुत्र गालव, तुम्हारी सेवा पूर्ण हुई। मै आज्ञा देता हूँ कि जहाँ तुम्हारी इच्छा हो जाओ। गालव मुनि प्रसन्न होकर बोले--हे गुरो! गुरुदक्षिणा में आपको क्या दूँ, क्योकि बिना दक्षिणा के कार्य का फल नही प्राप्त होता। भगवान् विश्वामित्र सेवा की ही दक्षिणा पा संतुष्ट हो चुके थे, इसी से उन्होंने दक्षिणा की अभिलाषा न कर बार बार कहा, 'तुम जाओ'। परंतु गालव मुनि भी बराबर हठपूर्वक यही कहते रहे कि क्या दक्षिणा दूँ? क्या दूँ? इस हठ से कुछ रुष्ट हो महर्षि विश्वामित्र बोले--अच्छा गालव, चंद्रमा के समान उजले और एक ओर श्यामकर्ण आठ सौ घोड़े लाकर दान करो।

यह कठिन आज्ञा सुन गालव चिंतासमुद्र में डूब गए। आहार, निद्रा सब कुछ छूट गया और चिंता से सूखकर पीले पड गए। अपने हठ पर बहुत पछताए, पर कर क्या सकते थे। अंत मे गरुड़जी की सहायता से राजा ययाति के यहाँ पहुँचे। राजा ने उनका सत्कारकर आने का कारण पूछा। गरुडजी ने अपने मित्र का सारा हाल कह सुनाया और प्रार्थना की कि गालव मुनि की तपस्या के एक अंश के बदले इन्हें आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े दीजिए। राजा ययति यों बोले, मैं जैसा पूर्व मे धनवान् था वैसा नहीं हूँ। फिर भी मैं इस तपस्वी की आशा को निष्फल नहीं करना चाहता। अतः हे गालव मुनि, आप इस चार वंश की थाप करनेवाली और सब धर्मों से अभिज्ञ मेरी कुमारी कन्या को लीजिए। इसके बदले घोड़ो की तो क्या बात है, राजा अपना सारा राज्य दे सकते हैं।

माधवी नाम की उस कन्या को लेकर इक्ष्वाकुवंशी अयोध्या के राजा हर्यश्व के पास जाकर गालव ने अपना अभिप्राय कहा।

काममोहित राजा हर्यश्व दीन भावयुक्त हो बोले, यद्यपि मेरे यहाँ सैकड़ों घोड़े हैं, परंतु जैसे आप चाहते हैं वैसे केवल दो सौ हैं। हे गालव इसलिये मैं इस कन्या से एक ही पुत्र उत्पन्न करूँगा। हर्यश्व के वचन सुन कन्या बोली हे मुनि, एक ब्रह्मवादी ऋषि ने मुझे वर दिया है कि तुम प्रसव के पीछे कन्या ही बनी रहोगी, इससे आप घोड़े लेकर मुझे राजा को दे दीजिए। इसी प्रकार चार राजओं के यहाँ से आप को आठ सौ घोड़े मिल जायेंगे और मेरे भी चार पुत्र उत्पन्न हो जायेंगे। निदान राजा ने माँगे धन का चतुर्थांश देकर कन्या ले ली और व्याह करके एक पुत्र उत्पन्न कर लिया। जो पीछे वसुमना नाम का प्रसिद्ध राजा हुआ।

फिर मुनि ने आकर पूर्व प्रतिज्ञानुसार कन्या लौटा ली। इसी प्रकार गालव मुनि उस कन्या को राजा दिवोदास और राजा उशीनर के यहाँ ले गए और एक एक पुत्र के बदले दो दो सौ घोड़े उनसे लिए। अंत मे छह सौ घोडे और उस कन्या को लेकर विश्वामित्र के पास जाकर बोले, हे गुरुदेव! आपने जैसे घोडे माँगे थे वैसे छह सौ घोड़े उपस्थित हैं और शेप के बदले आप इस कन्या का पाणिग्रहण कर लीजिए। इसके गर्भ से तीन राजर्षियो ने तीन पुत्र उत्पन्न किए हैं। आप भी एक पुत्र उत्पन्न कर लें। इस प्रकार आठ सौ घोड़े पूर्ण हो जायँ और मैं भी जाकर तपस्या करूँ"।

विश्वामित्र ने गालव का प्रस्ताव मान लिया। उन्होंने उसके गर्भ से 'अष्टक' नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। उसे ही घोड़े दे दिए और शिष्य को कन्या लौटाकर तप करने चले गए। गालव मुनि गरुड़ की सहायता से इस प्रकार गुरुदक्षिणा दे प्रफुल्लित हो आप माधवी से अपनी कृतज्ञता प्रकटकर उसे उसके पिता ययाति के घर पहुँचा गरुड़ की अनुमति से वन को चले गए।

वाल्मीकि

उलटा नाम जपत जग जाना।
वालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

—मानस, सो०—२

अध्यात्म रामायण मे लिखा है कि जब श्रीरामचंद्र वन को गए और वाल्मीकि मुनि के आश्रम मे पहुँचे तब उन्होने अपने मुख से यह वृत्तांत कहा कि हे राम आप के नाम का माहात्म्य कौन किस प्रकार से कहे कि जिसके प्रभाव से मैं ब्रह्मर्षित्व को प्राप्त हो गया हूँ। पूर्वकाल मे मै किरातो मे रहा करता था और उन्हीं मे पला। जन्ममात्र द्विजकुल मे हुआ, परंतु सर्वदा शूद्रो का आचरण करता रहा और एक शूद्रा स्त्री से मैने कई पुत्र उत्पन्न किए। चोरो के साथ रह कर चोर हो गया। पथिकों की हत्या करता और लूट लेता था। एक दिन सप्तर्षि उस महावन मे मुझे दीख पड़े। मै उनपर झपटा और उनको पकड़ना चाहा। तब मुनियों ने मुझे देखकर कहा कि रे द्विजाधम, क्यों आता है? तब मै बोला कि हे मुनिश्रेष्ठों! मैं कुछ हरण को आता हूँ। क्योंकि मेरे बहुत से पुत्र स्त्री आदि सब भूखे हैं और उन्ही की रक्षा के लिये मै पर्वत और वनों मे घूमा करता हूँ। तब वे निर्भय होकर मुझसे बोले अच्छा तू अपने कुटुंब मे जाकर एक एक से पूछ तो आ कि मै जो पाप बटोरता हूँ,

उसके भागी तुम होगे या नहीं। तब तक हमलोग निश्चय यहाँ ही खड़े रहेंगे। मैं गया और अपनी स्त्री और पुत्रों से पूछा। सब ने उत्तर दिया कि वह सब पाप तेरा ही है, परंतु फल, धनादि जो तू लाता है उसके भागी हम सब हैं। यह सुनकर मुझे वैराग्य हुआ और मैं मन मे विचारता हुआ मुनियों के पास जा चरणों पर गिर पड़ा और बोला, मुनीश्वरों! नरक में बहते हुए मेरी रक्षा करो। वे बोले, उठ उठ, तेरा मंगल हो। सत्संग का फल सफल होता है। हम लोग तुझे कुछ उपदेश देंगे उसी से तू पापों से छूट जाएगा। हे राम, इतना कहकर उन्होंने मुझे उलटे अक्षरों में आप का नाम 'मरा' यहीं बैठकर एकाग्र मन से जपने और जब तक वे फिर लौटकर न आवें तब तक सदा जपते रहने को कहा और चले गए। मैंने भी एकाग्र मन होकर जप किया और सब बाहरी विषयों को भूल गया। निश्चल रूप जपते हुए बहुत काल बीतने से मेरे ऊपर बाँबी जम गई। सहस्र वर्ष बीतने पर वे ऋषि फिर आए और उन्होंने मुझको कहा—'निकल आओ'। यह सुन मैं झट उठ खड़ा हुआ। तब मुझसे मुनि बोले—तुम वाल्मीकि मुनिवर हो, क्योंकि तुम वल्मीक से उत्पन्न हुए हो। तुम्हारा दूसरा जन्म हुआ। इसी से वाल्मीकि नाम हुआ। उलटा नाम जपते जपते इस प्रकार मैं ब्रह्मर्षि हो गया।

व्यास

व्यास आदि कविपुंगव नाना।
जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना॥

—मानस, सो०—१

सत्यवती नामक धीवर की कन्या के गर्भ से महर्षि पाराशर के औरस पुत्र। भागवत में ये विष्णु के अवतार माने गए हैं। एक द्वीप में जन्म

होने से इनका नाम कृष्ण द्वैपायन पड़ा । महाभारत और वेदांत दर्शन के सूत्रों के रचयिता यही कहे जाते हैं।

लोमश

मेरु सिखर बट छाया मुनि लोमस आसीन ।
देखि चरन सिर नाएउँ बचन कहेउँ अति दीन ।।

—मानस, सो०-७

प्रसिद्ध ऋषि ! इनकी दीर्घायु प्रसिद्ध है। कई कल्पों तक इन्होंने तप किया और कई अवतारों के चमत्कार देखे । इनका नाम 'चिरजीवी' भी है । इन्हीं के श्राप से पूर्व जन्म के रामभक्त द्विज को काग का रूप हो गया जो कागभुशुंडि नाम से प्रसिद्ध हुए ।

वसिष्ठ

गुरु वसिष्ठ कुलपूज्य हमारे ।
इन्हकी कृपा दनुज रन मारे ।।

—मानस, सो०-७

वैदिक ऋषि । सप्तर्षियों तथा प्रजापतियों में से एक। इनके पास नंदिनी नामक कामधेनु थी । उसी के स्वामी होने के कारण इनका नाम वसिष्ठ (सर्वस्व के स्वामी) पड़ा। ये ब्रह्मा के मानसपुत्र कहे जाते है। एक बार

मित्रावरुण का उर्वशी को देखकर वीर्यपात हो गया और उससे अगस्त्य और वसिष्ठ की उत्पत्ति हुई। ये सूर्यवंश के पुरोहित थे। इनकी स्त्री का नाम अरुंधती था।

विदुर

व्यास के औरस पुत्र जो दासी के गर्भ से उत्पन्न थे। ये धृतराष्ट्र और पांडु के भाई थे। धृतराष्ट्र के शासनकाल में ये सदैव न्यायपूर्ण और सत्य परामर्श देते आए। महाभारत का युद्ध रोकने का इन्होंने भरसक प्रयत्न किया पर इनकी न चली। दुर्योधन के यहाँ समझौता कराने के लिये आते समय कृष्ण विदुर के यहाँ ही ठहरे थे, दुर्योधन के यहाँ नहीं। विशेष विवरण के लिये दे० 'पांडु'।

विष्णु

बिष्नु बिरंचि आदि सुरत्राता।
चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता॥

—मानस, सो०-१

हिंदू त्रिदेवों में इनका द्वितीय स्थान है। ऋग्वेद में इनका उल्लेख प्रमुख देवताओं में नहीं मिलता, किंतु ब्राह्मण ग्रंथों में, इन्हें विशेष महत्व प्रदान किया गया है। इनका उल्लेख त्रि-विक्रम अर्थात् तीन डगों में समस्त विश्व का

अतिक्रमण करनेवाले के रूप मे हुआ है। इन डगो की व्याख्या विद्वानों ने अग्नि, विद्युत् तथा सूर्यप्रकाश की अभिव्यक्तियों के रूप मे की है। कुछ अन्य विद्वानो ने सूर्य के उदय, आकाश मे स्थिति तथा अस्त होने को ही तीन डगो के रूप मे स्वीकार किया है। सभवत: इसी कथा को पुराणों में वामन के तीन डगो मे विस्तृत किया गया है। मनु ने अपनी स्मृति मे भी इनका उल्लेख किया है, किंतु उसमे भी केवल एक बड़े देवता के रूप मे ही। महाभारत मे इन्हे त्रिदेवो मे स्वीकार किया गया है। ब्रह्मा सृष्टि के निर्माता है, विष्णु उसके पालनकर्ता है और शिव अथवा रुद्र सहार करनेवाले है। कुछ स्थानो मे इनका वर्णन प्रजापति के रूप मे मिलता है और त्रिदेव केवल इनकी तीन अवस्थाओं के रूप मे स्वीकार किए गए है। इस प्रकार विष्णु ही त्रिदेवों मे सर्वप्रमुख स्थान पाते है। इनका निवासस्थान क्षीरसागर है जहाँ वे शेषनाग की शय्या पर लक्ष्मी के साथ शयन करते है। इसी अवस्था मे इनकी नाभि से एक कमल की उत्पत्ति हुई थी और उसपर ब्रह्मा का जन्म हुआ। विष्णु मे सत्त्व गुण की प्रधानता मानी जाती है। अपने इसी गुण के आधार पर तथा जीवमात्र का पालन करनेवाला होने के कारण इनके संसार में २४ बार अवतरित होने की भी कथाएँ मिलती है। ऋग्वेद तथा शतपथ ब्राह्मण में इनके संबंध मे कुछ ऐसी कथाएँ है जिन्हे आगे चलकर पुराणों मे वाराह, मत्स्य, कूर्म, वामन आदि अवतारो के रूप मे विकसित किया गया है। विष्णु के ये अवतार निम्नलिखित हैं—ब्रह्म, वाराह, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, ऋभु, मत्स्य, कूर्म, धन्वतरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, हंस, हयग्रीव तथा कल्कि। इनमे से अंतिम कल्कि अभी होने को कहा जाता है। किंतु इन २४ अवतारों मे प्रधानता १० को ही दी जाती है—मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि। देवासुर के समुद्रमथन के समय सुमेरु को जल मे धारण करने के लिये इन्होने कच्छप रूप धारण किया था और उसके द्वारा जो लक्ष्मी प्राप्त हुई थी उसे अपनी अर्द्धांगिनी के रूप मे स्वीकार किया था। ये श्यामवर्ण तथा चतुर्भुज है और सदा युवा ही रहते है। इनके चारों हाथो मे शंख, चक्र, गदा तथा पद्म कहे जाते है। इनके शख का नाम पांचजन्य, चक्र का नाम सुदर्शन और गदा का नाम कौमोदकी है। इनके धनुष का नाम शार्ङ्ग तथा तलवार का नाम नंदक है।

वैनतेय गरुड़ इनका वाहन माना जाता है। गंगा की उत्पत्ति इन्हीं के चरणों से कही गई है। इनके पर्याय की संख्या सहस्रों तक जाती है।

वीरभद्र

समाचार सब संकर पाए।
वीरभद्र करि कोपु पठाए ॥

—मानस, सो०—१

शंकर के गण। सती ने दक्ष यज्ञ में प्राण त्याग दिया। यह सुनकर क्रोध से आ शंकर ने अपनी जटा का एक बाल पृथ्वी पर पटक दिया जिससे वीरभद्र की उत्पत्ति हुई। वीरभद्र ने दक्ष का यज्ञ विध्वंस किया।

वैतरनी

मित्र करै सतरिपु कै करनी।
ता कहुँ विबुध नदी वैतरनी ॥

—मानस, ३।२

यमलोक की एक नदी। मृत्यु के बाद मनुष्य इसे पार करता है। आस्तिक हिंदू इसी लिये मरते समय गोदान करते हैं कि इस नदी को सरलता से पार कर सकें।

शवरी को मुनि का आशीर्वाद

सवरी देखि राम गृह आए।
मुनि के वचन समुझि जिय भाए।

—मानस, सो०–३

जब शवरी के गुरु परमधाम सिधारने लगे तब शवरी ने प्रार्थना की कि मैं भी यह शरीर छोड़ परमधाम को जाऊँगी। इसपर उन्होंने कहा कि तू अभी इसी कुटी मे रह। कुछ दिन पीछे यहाँ श्री राम, लक्ष्मण आएँगे तब तुम उनके दर्शन करके परमधाम को जाना। तबसे शवरी वरावर उनकी वाट जोहती रही।

शमीक

शृंगी ऋषि के पिता एक प्रसिद्ध ऋषि थे। ध्यानमग्न शमीक ने आखेट में रत परीक्षित को रास्ता न वताया जिससे उन्होंने एक मृत सर्प इनके गले में डाल दिया। ऋषिबालको ने शृंगी से यह वात कही। शृंगी ने क्रुद्ध हो यह शाप दिया कि आज के सातवें दिन सर्प के डसने से राजा की मृत्यु होगी। शृंगी ऋषि के शाप के कारण ऐसा ही हुआ।

शिवि

सिवि दधीचि हरिचंद नरेसा।
सहे धरम हित कोटि कलेसा।
—मानस, सो०–२

काशी के राजा शिवि बड़े दयालु और धर्मात्मा थे। इन्होंने सौ यज्ञ करने का विचार किया। जब बानवे यज्ञ कर चुके तब इंद्र डरा कि कहीं आठ यज्ञ और करके मेरे पद के अधिकारी न हो जायँ। यह सोच अग्नि को कबूतर बना आप बाज बन यज्ञ मे विघ्न डालने को राजा की यज्ञशाला में पहुँचा। कबूतर झपटकर राजा की गोद मे छिपा। बाज उसका पीछा करता पहुँचा और बोला—आप यह क्या अनर्थ कर रहे हैं। यह कबूतर मेरा आहार है। यदि आप न देंगे तो मैं भूख के मारे मर जाऊँगा और आप को पाप लगेगा। राजा बोले—मैं शरणागत को नहीं छोड़ सकता। अंत मे बाज ने कहा कि इस कबूतर के बराबर तौल मे यदि अपने शरीर का मांस मुझे आप दे दे तो इसे छोड़ सकता हूँ। राजा ने मान लिया और तराजू के एक पलड़े पर उस कबूतर को रख दूसरी ओर अपने शरीर का मांस काट काट कर रखने लगे। सारे शरीर का मांस काट डाला, पर पलड़ा बराबर न हुआ। तब उन्होंने अपना गला काटना चाहा, उसी घड़ी विष्णु भगवान् ने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया और उन्हें अपने लोक को भेज दिया।

शुकदेव

सुक सनकादि साधु मुनि जोगी।
नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी॥
—मानस, सो०–१।२६

भारत के सबसे महान् पौराणिक कथाकार। अल्पावस्था मे ही पूर्ण तत्वज्ञानी होने के कारण ऋषियो मे ये अग्रणी गिने जाते हैं। ये व्यास के पुत्र

है। शिव जब पार्वती को अमर होने के लिये सहस्त्र विष्णु नाम का उपदेश दे रहे थे, उस समय उस कथा को एक शुक भी सुन रहा था। शिव को जब पता चला तो उन्होंने उसका पीछा किया उसी समय व्यासजी की पत्नी अपने आँगन मे खड़ी हो अँगड़ाई ले रही थी। उनको देख शुक शरीर छोड़ ये उनके पेट मे चले गए और १२ वर्ष तक वहीं रहे। व्यास महाभारत तथा गीता आदि अपनी पत्नी को सुनाते थे। इस प्रकार गर्भ मे ही शुक तत्त्वज्ञानी हुए। भगवान् ने इन्हें गर्भ मे ही वचन दिया कि ससार की माया तुम्हे नही व्यापेगी कालांतर मे राजा परीक्षित को भागवत इन्होने ही सुनाया।

शिवजी का हलाहलपान

जरत सकल सुरवृंद, विपम गरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद, को कृपालु सकर सरिस॥

मानस, सो०–४

समुद्र मथने से चौदह रत्नों में से जब हलाहल विप निकला, तब चराचर जीव विकल हो कही शरण न पा श्री सदाशिव की शरण गए और प्रार्थना की कि हे भगवन् इस विप से हमारी रक्षा करो। प्रार्थना सुनकर और सबको दुःखी देख शकर जी ने उस हलाहल विष को हथेली मे लेकर पान कर लिया। उस विष ने महादेव जी के गले को नीला कर दिया। वह भी शकर जी का विभूषण हो गया। प्राय· साधु परदु ख से दुःखी होते है और यही सर्वात्मा श्रीहरि की मुख्य आराधना है। महादेव के हाथ मे से जो किंचित् विप गिर पड़ा था उसे सर्प, बिच्छू, जहरीली ओपधियों और जहरीले जीवों ने ग्रहण किया।

सुरा निकली। उसे दैत्यों ने ले लिया। शंख, धनुष, लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि विष्णु भगवान् ने लिए। ऐरावत हाथी और उच्चैः-

श्रवा घोड़ा इंद्र ने लिए। पारिजात कल्पवृक्ष स्वर्ग गया। कामधेनु ऋषियों और देवों के यहाँ गई। रंभा इंद्र ने ली। चंद्रमा पृथ्वी का और भगवान् भास्कर का आश्रित हुआ। यह बारह रत्न हुए। अंत में मंथन का सारभूत अमृत का कलश लिए हुए धन्वंतरि वैद्य निकले। तब दानव उनसे अमृतघट छीनकर ले भागे और देवता बेचारे मुँह देखते रह गए। नारायण ने कहा--घबराओ मत, मैं उपाय करता हूँ। इधर दानव आपस में झगड़ने लगे कि हम पहले तुम नहीं, तुम नहीं। जो दुर्बल दैत्य थे पुकारने लगे कि भाई देवताओं ने भी परिश्रम किया है, अतः सबको बराबर भाग मिलना चाहिए। इतने मे भगवान् अनिद्य सुदरी स्त्री का मायारूप धारणकर वहाँ पहुँचे। उन्हे देख दैत्य काममोहित हो गए और उसे ही अमृतकलश सौंप दिया।

तब स्त्री रूपधारी भगवान् ने मुस्कुराकर कहा—यदि मैं कुछ उचितानुचित भी करूँ और वह तुम्हें मजूर हो तब तो मैं बांट दूँ? दैत्यों ने यह भी स्वीकार किया। तब सबके सब स्नान, व्रत, होम, दानादि कर स्वस्तिवाचन करा, कुश के आसन पर एक गृह मे पूर्वाभिमुख बैठे। मोहिनीरूप भगवान् ने दुष्ट दैत्यो को अमृत देना मानो सर्पों को दूध पिलाना समझा। देवता और दैत्यो की दो अलग अलग पत्तियाँ कीं और स्त्रीचरित्र से दैत्यो को ठगकर दूर बैठे हुए देवताओ को अमृत पिला दिया और दैत्य अपनी प्रतिज्ञा के निर्वाह तथा उस स्त्री के स्नेह से कि यह रुष्ट न हो जाय, चुप बैठे रहे और कुछ भी न बोले। उस अवसर पर राहु नामक दैत्य देवताओ का रूप धरकर देवपक्ति मे सूर्य और चंद्रमा के बीच मे घुस बैठा था और अमृत पीने लगा। इसको चंद्र और सूर्य ने सूचना दी। नारायण ने चक्र से उसका सिर काट दिया। उसके कंठ के नीचे अमृत चला गया था इससे धड और सिर अमर हो गए। उस धड़ और सिर को ब्रह्माजी ने अष्टम और नवम ग्रह बना दिया।

शृंगी

शृंगी रिषिहि वसिष्ठ बोलावा ।
पुत्रकाम सुभ जग्य करावा ।।
—मानस, सो०—१

प्रसिद्ध ऋषि शमीक के पुत्र । इन्ही के द्वारा यज्ञ सपन्न होने पर अग्नि से प्राप्त चरु को खाकर कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा के पुत्र उत्पन्न हुए । इनके पिता शमीक ऋषि थे ।

शेष

सेष सहस्र सीस जग कारन ।
जो अवतरेउ भूमि भय टारन ।।
—मानस, सो०—१

सर्पराज, जिनके सहस्र फणों पर पृथ्वी के स्थित होने का उल्लेख मिलता है । वासुकि तथा तक्षक के साथ इन्हें भी रुद्र का पुत्र कहा जाता है । इन्हें ज्ञान का अधिष्ठाता माना जाता है और यह भी उल्लेख मिलता है कि इन्होंने ऋषि गर्ग को ज्योतिष विद्या की शिक्षा दी थी । पाताल में इनका निवासस्थान माना जाता है । कुछ स्थानों पर इनका उल्लेख पाताल के अधिराज के रूप मे भी मिलता है । लक्ष्मण तथा बलराम इनके अवतार माने जाते है । विष्णु भगवान् क्षीरसागर में इन्ही की शय्या पर शयन करते हैं ।

सती

मंग सती जग जननि भवानी।
पूजे रिपि अखिलेस्वर जानी।

—मानस, सो०—१

दक्ष प्रजापति की सात कन्याओं मे से एक। यह शिव को व्याही गई थी। दक्ष ने अपने यज्ञ मे शिव को बलि नही दी। इस अपमान से सती ने अपने प्राण त्याग दिए। दूसरे जन्म मे ये हिमालय की पुत्री उमा होकर जन्मी। शिव के लिये घोर तप किया। अंत में शिव से ही इनका व्याह हुआ।

सहस्रार्जुन और रावण

एक बहोरि सहस भुज देखा।
धाइ धरा जनु जंतु विसेखा।

—मानस, सो०—६

हैहयवशी राजा अर्जुन ने नारायण के अंशरूप दत्तात्रेय जी को सेवा से प्रसन्न किया, जिसमे उसे सहस्रबाहु तथा अणिमादि सिद्धियाँ मिलीं उनके प्रसाद से उसकी इंद्रियो की शक्ति, लक्ष्मी, तेज, वीर्य, यश और बल किसी से खंडित नहीं होता था। न वह शत्रुओ से पराभव पाता था। उसकी गति अव्याहत थी। वायु की तरह हर कही घूमता फिरता था। एक दिन रेवा नदी मे स्त्रियों के साथ विहार कर रहा था वहाँ मदोन्मत्त हो इसने अपने हजार हाथों से नदी के वेग को रोका, जिससे नदी का जल रुककर उलटा बहने लगा। उससे रावण का डेरा जो नदी के किनारे बना था, बह गया। तब वीरताभिमानी रावण राजा के पराक्रम को न सहकर युद्ध करने गया। सहस्रार्जुन ने उसे सहज ही पकड़कर

अपनी माहिष्मती नगरी में कैद कर लिया और फिर कुछ दिन पीछे जैसे बंदर को छोड़ देते है वैसे छोड़ दिया।

कथांतर--

एक समय रावण हैहय राजा सहस्रार्जुन के नगर में गया। सहस्रार्जुन ने देखकर इसे बाँध लिया। तब पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसे वहाँ से छुडा दिया।

सहस्राबाहु और परशुराम

सहसबाहु भुज छेदनहारा।
परसु बिलोकु महीपकुमारा।

—मानस, सो०—१

एक दिन हैहयवंशी राजा सहस्रार्जुन शिकार खेलते खेलते जमदग्नि मुनि के आश्रम में आ निकला। मुनि ने कामधेनु के प्रभाव से अमात्य और सेना-सहित उसकी भलीभाँति पहुनाई की। ऋषि में अपने से भी अधिक सामर्थ्य देख राजा प्रसन्न तो न हुआ किंतु उसकी आज्ञा से उसके आदमी उस धेनु को बलपूर्वक से बछड़े सहित माहिष्मती नगरी मे ले गए। पीछे ऋषिपुत्र परशु-रामजी आए और उसकी दुष्टता सुन उन्हे अत्यंत क्रोध हुआ। वे अपना फरसा, धनुष और तरकस आदि ले उसके पीछे झपटे। परशुरामजी को पुरी मे आते सुन राजा ने शस्त्रों और अस्त्रों के सहित सत्रह अक्षौहिणी सेना भेजी, जिसे परशु-रामजी ने बिना प्रयास अकेले ही काट गिराया। रणक्षेत्र में सेना कटती देख राजा क्रोधयुक्त हो स्वयं युद्ध करने आया और एकबारगी पाँच सौ धनुषोंपर बाण चढ़ा परशुराम पर छोड़ने लगा; परंतु परशुरामजी ने अपने एक ही धनुष से उसके सभी बाण काट गिराए। फिर वृक्ष और पर्वत ले युद्ध मे दौड़ते सहस्रार्जुन को देख अपने कुठार से उसकी भुजाएँ काट डालीं और फिर उसका सिर भी उड़ा दिया। जब सहस्रार्जुन मर गया तब डर के मारे उसके दस हजार

सती

संग सती जग जननि भवानी।
पूजे रिषि अखिलेस्वर ज्ञानी।

—मानस, बा०—१

दक्ष प्रजापति की साठ कन्याओं में से एक। यह शिव को ब्याही गई थी। दक्ष ने अपने यज्ञ में शिव को बलि नहीं दी। इस अपमान से सती ने अपने प्राण त्याग दिए। दूसरे जन्म में ये हिमालय की पुत्री उमा होकर जन्मीं। शिव के लिये घोर तप किया। अंत में शिव से ही इनका ब्याह हुआ।

सहस्रार्जुन और रावण

एक बहोरि सहस भुज देखा।
धाइ धरा जनु जंतु बिसेषा।

—मानस, लं०—६

हैहयवंशी राजा अर्जुन ने नारायण के अंशरूप दत्तात्रेय जी को सेवा से प्रसन्न किया, जिससे उसे सहस्रबाहु तथा अणिमादि सिद्धियाँ मिलीं। उनके प्रसाद से उसकी इंद्रियों की शक्ति, लक्ष्मी, तेज, वीर्य, यश और बल किसी से क्षीण नहीं होता था। न वह शत्रुओं से पराजय पाता था। उसकी गति अव्याहत थी। वायु की तरह हर कहीं घूमता फिरता था। एक दिन रेवा नदी में स्त्रियों के साथ विहार कर रहा था वहाँ मदोन्मत्त हो उसने अपने हजार हाथों से नदी के वेग को रोका, जिससे नदी का जल रुककर उलटा बहने लगा। उससे रावण का डेरा जो नदी के किनारे बना था, बह गया। तब वीरत्वाभिमानी रावण राजा के पराक्रम को न सहकर युद्ध करने गया। सहस्रार्जुन ने उसे सहज ही पकड़कर

अपनी माहिष्मती नगरी में कैद कर लिया और फिर कुछ दिन पीछे जैसे बंदर को छोड़ देते है वैसे छोड़ दिया।

कथांतर--

एक समय रावण हैहय राजा सहस्रार्जुन के नगर मे गया। सहस्रार्जुन ने देखकर इसे बाँध लिया। तब पुलस्त्य मुनि ने जाकर उसे वहाँ से छुड़ा दिया।

सहस्रबाहु और परशुराम

सहसबाहु भुज छेदनहारा।
परसु बिलोकु महीपकुमारा।

—मानस, सो०—१

एक दिन हैहयवंशी राजा सहस्रार्जुन शिकार खेलते खेलते जमदग्नि मुनि के आश्रम में आ निकला। मुनि ने कामधेनु के प्रभाव से अमात्य और सेना सहित उसकी भलीभाँति पहुनाई की। ऋषि मे अपने से भी अधिक सामर्थ्य देख राजा प्रसन्न तो न हुआ किंतु उसकी आज्ञा से उसके आदमी उस धेनु को बलपूर्वक से बछड़े सहित माहिष्मती नगरी मे ले गए। पीछे ऋषिपुत्र परशुरामजी आए और उसकी दुष्टता सुन उन्हे अत्यंत क्रोध हुआ। वे अपना फरसा, धनुष और तरकस आदि ले उसके पीछे झपटे। परशुरामजी को पुरी मे आते सुन राजा ने शस्त्रों और अस्त्रो के सहित सत्रह अक्षौहिणी सेना भेजी, जिसे परशुरामजी ने बिना प्रयास अकेले ही काट गिराया। रणक्षेत्र में सेना कटती देख राजा क्रोधयुक्त हो स्वयं युद्ध करने आया और एकबारगी पाँच सौ धनुषोपर बाण चढा परशुराम पर छोडने लगा; परंतु परशुरामजी ने अपने एक ही धनुष से उसके सभी बाण काट गिराए। फिर वृक्ष और पर्वत ले युद्ध मे दौड़ते सहस्रार्जुन को देख अपने कुठार से उसकी भुजाएँ काट डाली और फिर उसका सिर भी उड़ा दिया। जब सहस्रार्जुन मर गया तब डर के मारे उसके दस हजार

पुत्र भाग खड़े हुए। परशुरामजी ने बछड़े समेत अपनी गाय लाकर अपने पिता को दी और सब हाल सुनाया। इसपर पिता जमदग्नि बोले—हे महाबाहु राम! सर्वदेवमय राजा को वृथा मारा, यह तूने बड़ा पाप किया। ब्राह्मण क्षमा से ही पूज्य हैं। राजा का वध ब्रह्महत्या से भी अधिक है, सो अब तुम यम, नियम, ध्यान और तीर्थयात्रा से इस पाप का प्रायश्चित्त करो।

सागर और भागीरथी

सागर निज मरजादा रहहीं।
डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
मानस, ७।२३

भागीरथी जल पान करौं,
अरु नाम द्वै राम को लेत नितै हौं॥
कवितावली, ७।१०२

अयोध्या के राजा सगर के संतति नहीं थी। इनके दो स्त्रियाँ थीं, 'केशिनी' और 'सुमति'। राजा सगर दोनों पत्नियों के सहित हिमवान् के एक प्रदेश में जाकर तप करने लगे। तप के फल से कुछ दिन पीछे राजा को बड़ी रानी से असमंजस नाम का एक पुत्र हुआ और सुमति को साठ हजार पुत्रों का एक तुम्बा उत्पन्न हुआ, जिसके बढ़ने और अनेक काल पीछे फूटने से सब बालक निकले। उन बालकों को घृत के कुंडे में रख धाइयों ने पाला और बढ़ाया। वे सब बालक बढ़कर रूपवान् और बलवान् हुए। उनमें से असमंजस नगर के लड़कों को पकड़ पकड़ सरयू में फेंक देता था और उन्हें डूबते देखकर हँसता था। राजा ने उसके दुश्चरित्र से दुखी होकर उसे देश से निकाल दिया। उसे अंशुमान नामक एक पुत्र हो चुका था जो बड़ा सज्जन और प्रियभाषी था।

एक बार राजा की इच्छा हुई कि यज्ञ करूँ और हिमालय और विंध्याचल पर्वतों के बीच में उन्होंने यज्ञ आरम्भ किया। राजा का पौत्र अशुमान यज्ञ के घोड़े का रक्षक था। अश्वालंभन के दिन इद्र ने उस घोड़े को हर लिया। इसपर राजा ने अपने साठ हजार पुत्रो से कहा, "हे पुत्रों मै वेदी पर बैठा हूँ। विघ्न के निवारण मे असमर्थ हूँ इसलिये तुम लोग एक एक योजन करके संपूर्ण पृथ्वी मे उस घोड़े को और हरनेवाले को खोजो।' पुत्रो ने खोजते खोजते कही न पाया तब अत मे पृथ्वी को खोदना आरंभ किया। उनमे से एक एक पुत्र वज्र समान भुजाओ से योजन भर पृथ्वी एक बार मे खोद डालते और उनके शूलयुक्त हलो से खुदते हुए पृथ्वी बड़ा शब्द करती थी। इस भयंकर खुदाई मे राक्षसादि अनेक जीवो का भयकर नाद हुआ, और बहुतेरे मर गए। उन लोगो ने साठ हजार योजन भूमि खोद डाली, मानो पाताल में खोजने की इच्छा हुई। इतने पर भी अपना मनोरथ न पाकर पिता के पास जाकर बोले--"महाराज, बड़े बड़े बलवान् देव, दानवों को हमने मार डाला, पृथ्वी सब ढूँढ डाली--परंतु चोर न मिला। अब क्या करे? क्रुद्ध हो राजा बोला--हे पुत्रो, फिर पृथ्वी खोदो और चोर का पता लगाकर मेरे पास आओ। इस बात पर सब रसातल की ओर दौड़े और खोदते खोदते ईशान कोण की ओर पहुँचे। उन्होंने भगवान् कपिल को देखा और उनके पीछे घोड़ा भी बँधा देख उन्ही को चोर समझ बड़े क्रोध से हाथ में फरसा, कुठारी, वृक्षादि ले बोले--खड़ा रह तू ही चोर है। रे दुष्टबुद्धि हमने तुझे पकड़ लिया। यह कठोर वचन सुन भगवान् कपिल ने क्रोध से हुंकार किया और सबके सब वही भस्म के ढेर हो गए।

जब बहुत दिन बीतने पर भी पुत्र न आए तब सगर ने अशुमान को पितृव्यों की और चोर को खोज मे भेजा। सौम्य अंशुमान खोजते खोजते अंत को वहाँ पहुँचा जहाँ पितरों के भस्म का ढेर लगा था और घोड़ा चर रहा था। अशुमान पितृव्यों की मृत्यु से दुखित हो विलाप करने लगा और अपने पितरों को तिलाजलि देने को जल खोजने लगा, पर कोई जलाशय न मिला। वहा गरुड़ मिले, उन्होने सब समाचार सुनाकर कहा--भगवान् कपिल ने इनको भस्म किया है, अतः लौकिक जल से उन्हें जलांजलि मत दो, किंतु हिमाचल की ज्येप्ठ पुत्री गंगा के जल से इनकी जलक्रिया करनी चाहिए। तुम यह घोड़ा लो और दादा का यज्ञ पूरा करो। इतना सुन अशुमान घोड़ा ले चट अपने दादा की यज्ञशाला मे पहुँचा

और उसने उनसे सब हाल कह सुनाया। राजा सगर यज्ञ पूराकर अपने पुर मे आए। गंगा के लाने का कोई उपाय न मिला और काल पाकर राजा भी स्वर्ग को सिधारे।

पीछे अंशुमान राज्यासन पर बैठा और कुछ काल पीछे इसका पुत्र दिलीप जब बड़ा हुआ तब उसे राज दे हिमाचल पर जा बड़ी कठिन तपस्या करके अंत मे स्वर्ग पाया। दिलीप भी गंगा के लाने का कुछ उपाय न कर सका। दिलीप के मरने पर उसके धर्मात्मा पुत्र भगीरथ राजा हुए। इनके कोई संतान न थी। इन्होने मंत्रियों को राज्य सौंप गोकर्ण मे जा गंगा लाने के हेतु अति कठोर तप आरंभ किया। जब हजार वर्ष तप करते बीत गए तब देवताओं के सहित ब्रह्मा ने आकर कहा--मै इस तपस्या से प्रसन्न हूं, वर मांग। राजा हाथ जोड़ बोले—भगवन् ! यदि प्रसन्न हो तो सगर के पुत्र मुझसे गगाजल पावें और उनकी भस्म उसी से बहाई जाय और वे स्वर्ग जायँ। मेरे भी पुत्र हो। यह सुन ब्रह्मा बोले, हे भगीरथ, ऐसा ही होगा। परंतु इस गंगाजल को धारण करने के लिये तुम शिवजी की प्रार्थना करो, क्योंकि गंगा के आकाश से गिरने का आघात पृथ्वी न सह सकेगी। इसको थामनेवाला शिव के सिवा कोई नही देख पड़ता। भगीरथ को ऐसा वर दे गगा को आज्ञा दे, देवताओं को साथ ले ब्रह्माजी सत्यलोक को चले गए।

ब्रह्माजी के जानेपर भगीरथ ने अँगूठे पर खड़े हो एक वर्ष पर्यंत शिवजी की आराधना की। वर्ष पूरा होने पर आशुतोष शिव ने राजा से कहा—हे नरश्रेष्ठ, मै तुम पर प्रसन्न हूँ। जो तुम्हारा प्रिय कार्य है वह मैं करूगा। अपने मस्तक पर गगा को धारण करूँगा।' फिर गंगा देवी ने अपने मन मे यह विचारा कि मै अपने वेग से शिवजी को भी लेकर पाताल को चली जाऊँगी और शिवजी ने गगाजी की यह अभिलाषा जान उसे अपनी जटा मे ही छिपा रखने की इच्छा की। तदनतर गंगा शिवजी के मस्तक पर गिरी और किसी प्रकार भी भूमि पर न आ सकी, अनेक वर्षो तक जटामडल मे ही घूमती रह गईं। गगाजी को न निकलते देख भगीरथ राजा ने फिर शिवजी को कठोर तप से प्रसन्न किया, तब शिवजी ने प्रसन्न हो हिमालय पर्वत मे बिंदुसरोवर पर गगा को छोड़ा। छोड़ते ही उसके सात सोते हो गए जिनमे से ह्लादिनी, पावनी और नलिनी ये तीन धाराएँ तो पूर्व दिशा को गई और सुचक्ष, सीता और महानद सिंधु ये तीन पश्चिम

दिशा को गईं और सातवीं धारा भगीरथ के रथ के पीछे भागी। चलते चलते राजा वहाँ पहुँचे जहाँ जह्नु ऋषि यज्ञ कर रहे थे। गंगा ने सामग्रीसहित उनकी यज्ञशाला को बहा दिया। क्रुद्ध हो जह्नु ऋषि सब जल उठाकर पी गए, फिर प्रार्थना पर जह्नु ने प्रसन्न हो अपने शरीर से गंगा को निकाला, तभी से वह 'जाह्नवी' नाम से प्रसिद्ध हुई। भगीरथ के पीछे पीछे सागर को भी पहुँची और उस कार्य की सिद्धि के लिये रसातल को प्राप्त हुई। इस प्रकार भगीरथ यत्न से गंगा को वहाँ ले गए जहाँ पितामहों की भस्म पड़ी थी। तब गंगा ने अपने जल से उस भस्मराशि को बहाया और अंशुमान के पितरों ने स्वर्ग पाया।

बड़े बड़े भीषण विशाल गर्त्त, जो सगरपुत्रों ने खोदे थे, सब भर गए। सगरपुत्रों के नाम से वे सागर कहलाए। भगीरथ के नाम से गंगाजी का नाम भागीरथी पड़ा। जहाँ गंगाजी सागर से मिलती है वह गंगासागर तीर्थ हुआ।

सनकादि

तहाँ रहे सनकादि भवानी।
जहँ घट संभव मुनिवर ज्ञानी।

—मानस, सो०—७

ब्रह्मा के चार मानस पुत्र—सनक, सनंदन, सनातन तथा सनत्कुमार। ये एक ही आयु के है और सदैव एक ही साथ रहते है।

सरस्वती

राम भगति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा।

—मानस, सो०—१

वेदो में नदी के रूप में इनका उल्लेख मिलता है, किंतु कुछ स्थानों पर देवी के रूप मे भी ये है । सरस्वती नदी की स्थिति आर्यो के प्राचीन स्थान ब्रह्मावर्त प्रदेश की सीमा पर थी और गंगा की भाँति ही उनकी पूजा होती थी। नदी के रूप मे वह धनधान्य की अधिष्ठात्री देवी के रूप मे स्वीकृत थीं। कुछ मत्रों मे इडा तथा भारती के साथ इनका नाम तीन प्रधान यज्ञदेवियों मे भी मिलता है । वाजसनेयी संहिता के आधार पर कहा जाता है कि वाचा देवी के द्वारा इन्होने इंद्र को शक्ति प्रदान की थी। वाद के साहित्य, ब्राह्मणग्रथो तथा पुराणो मे सरस्वती स्वय वाग्देवी हो गई है। अपने इसी रूप मे उन्होने संस्कृत भाषा तथा देवनागरी अक्षरो का निर्माण किया था। अपने अंतिम रूप ज्ञान तथा विज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के रूप मे ये आज विख्यात है। सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री तथा पत्नी दोनो ही मानी जाती है । महाभारत में एक स्थान पर इन्हें दक्ष प्रजापति की कन्या भी कहा गया है । वंगभूमि के वैष्णवों में यह कथा प्रसिद्ध है कि पहले यह विष्णु की स्त्री थी, किंतु विष्णु ने लक्ष्मी के साथ इनका प्रतिदिन का झगड़ा देखकर इन्हे ब्रह्मा को दे दिया था और उन्होने इन्हे अपनी स्त्री के रूप में स्वीकार कर लिया था। नदी के रूप मे आज इनकी धारा का लोप हो गया है ।

साढ़साती

सजि प्रतीति वहु विधि गढ़ि छोली ।
अवध साढ़साती तब बोली ।
—मानस, सो०–२

शनि की एक अनिष्टकारी ग्रहदशा जिसका व्याप्तिकाल साढ़े सात वर्षों का होता है ।

सीता

दुइ सुत सुंदर सीता जाए ।
लव कुश वेद पुरानन गाए ।
—मानस, सो०–७

राम की पत्नी, राजा जनक की कन्या तथा लव और कुश की माँ । राम की उपासना के साथ सदैव सीता का नाम लगा रहता है । इन्हे लक्ष्मी का अवतार माना जाता है । जनक के हल जोतते समय ये पृथ्वी से निकली थीं । इसी लिये इनका नाम भूमिजा भी है । जनक ने 'धनुप यज्ञ' करके 'स्वयंवर' में शिव के धनुष तोड़नेवाले राम के साथ सीता का व्याह कर दिया । व्याह के कुछ दिनों के बाद सीता राम के साथ वन गईं । वहाँ रावण द्वारा उनको हरण हुआ । अंत मे वानरो की सहायता से राम ने रावण का वध किया और अग्निपरीक्षा लेकर सीता को स्वीकार किया; किंतु अयोध्यावासी नहीं चाहते थे कि राम भार्या रूप मे सीता को स्वीकार करे । लाचार होकर राजधर्म पालन के लिये इन्हें गर्भवती सीता का परित्याग करना पड़ा । वाल्मीकि के आश्रम मे सीता का निवास हुआ । वही कुश

और लव की उत्पत्ति हुई। लव और कुश ने अश्वमेध के समय राम सेना को परास्त किया। अंत में राम स्वयं सीता को ग्रहण करने के लिये वाल्मीकि आश्रम में गए, किंतु उसी समय सीता भूमि में लीन हो गईं।

सुग्रीव

तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा।
आवत देखि अतुल बल सींवा।

—मानस, सो०–४

सूर्य के पुत्र, प्रसिद्ध वानर वीर वाली के अनुज, किष्किधा के राजा तथा राम के मित्र एवं भक्त। सीताहरण के वाद राम ने सुग्रीव से मित्रता की; वाली का वध किया और तारा सुग्रीव की पत्नी हुई। रामरावण के युद्ध में सुग्रीव ने राम की वड़ी सहायता की थी।

सुनीति

राजा उत्तानपाद की रानी, विख्यात भक्त ध्रुव की माँ। इनकी दूसरी पत्नी का नाम सुरुचि था। अपनी सौतेली माँ से अपमानित हो वालक ध्रुव ने पूछा—मेरे पिता कहाँ है? सुनीति ने कहा 'जंगल में।' उसी समय से ध्रुव ने जंगल की राह ली। अंत मे भगवान् का उन्हें दर्शन हुआ। उत्तानपाद ने अंत में ध्रुव और सुनीति से क्षमा माँगी।

स्मृति

वेद पुरान सुमृति सब साखी ॥

—मानस, सो०–१

स्मृतियों की संख्या १८ कही गई है। ये हिंदुओं के धर्मशास्त्र है जिनमें कर्मकांड का विशेष वर्णन है। मनुस्मृति स्मृतियों मे प्रधान है। इसके बाद याज्ञवल्क्य और पराशर की स्मृतियाँ महत्वपूर्ण है। इन तीनो मे यत्र-तत्र मतभेद है।

स्वर्ग

स्वर्ग अपवर्ग निसेनी।
ज्ञान विराग भगति सुभ देनी।

—मानस, सो०–७

श में सूर्यलोक से लेकर ध्रुवलोक तक मानी जाती है पुमेरु पर्वत पर भी स्थित कहा गया है। यह प्रधान रूप से देवताओं का निवासस्थान माना जाता है तथा यह भी कहा जाता है कि इस संसार मे जो पुण्य और सत्कर्म करता है, उसकी आत्मा मृत्यु के बाद इसी लोक मे जाकर निवास करती है। प्राचीनकाल में मनुष्य के समस्त पुण्य कर्मो का उद्देश्य स्वर्गप्राप्ति ही समझा जाता था। यहाँ रहने की अवधि प्राणी के पुण्य कर्मो पर निर्धारित होती है। उसके पूर्ण होने पर वह फिर कर्मानुसार शरीर धारण करता है। यही क्रम उस समय तक चलता रहता है जब तक वह पूर्ण रूप से मुक्त होकर स्वयं भगवान् में लीन नहीं हो जाता। स्वर्ग सुंदर वृक्षों, मनोहर वाटिकाओं तथा अप्सराओं का निवास-स्थान माना जाता है।

———

सीताजी को नारद का आशीर्वाद

नारद वचन सदा सुचि सांचा ।
सो वरु मिलिहि जाहि मन रांचा ॥

मानस, सो०–१

एक बार जानकी जी गिरिजापूजन के लिये जा रही थीं। मार्ग में नारदजी से भेंट हो गई। जानकीजी ने प्रणाम किया। नारदजी ने प्रसन्न हो आशीर्वाद दिया कि जाओ इसी वाटिका में पहले पहल तुम अपने पति को देखोगी। इसपर जानकी जी ने पूछा कि महाराज मैं उनको कैसे पहचानूंगी। तब नारदजी ने कहा कि इस बगीचे में जिसे देखकर तुम्हारा मन लुभा जाय वही तुम्हारा पति होगा।

सीताजी का वनवास

श्रीरामचंद्र जी राज करते थे, उस समय एक दिन सभा मे अनेक बातें हो रही थी। गुप्तचरों की कथा के बीच मे महाराज एक से बोले—हे दुर्मुख, आजकल देशवासी लोग मेरे और सीता के तथा भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और माता कैकेयी के विषय मे क्या कह रहे हैं, क्योंकि अविचारशील राजा का प्रायः अपवाद होता है। ऐसा सुन दूत हाथ जोड़कर बोला—हे महाराज, पुरवासी आपकी प्रशंसा करते है और दशग्रीव के वध की बात विशेष किया करते हैं। फिर रामचंद्र जी बोले—यह नही, वे लोग जो कुछ भला बुरा कहते है उसे निःशंक होकर सविस्तर कहो, क्योंकि मैं भले का आचरण और बुरे का परित्याग करूँगा। ऐसा सुन भद्र फिर बोला—महाराज, जहाँ कुछ लोग बैठे रहते हैं वहाँ प्रायः ऐसा कहा करते हैं कि राघव ने जो समुद्र में पुल बाँधा यह बड़ा अद्भुत कर्म किया, जिसपर संपूर्ण कटक को भी उतार ले गए। ऐसा किसी बड़े से नही

सुना कि कभी किसी ने किया हो, तथा रावण को सपरिवार मारा, यह भी बड़ा उत्कट कर्म किया, परंतु रावण को मार और निंदा का विचार न कर उन सीता को घर ले आए जिनको रावण गोदी में उठाकर ले गया और जो राक्षसों के वश में इतने दिन रहीं। इन बातों पर राम जी को क्रोध न हुआ। सो हे भाइयो, हम लोगों को भी, अपनी स्त्रियों के विषय में ऐसा ही सहना पड़ेगा क्योंकि राजा के अनुसार लोग व्यवहार करते है। ऐसा बहुत लोग कहते हैं। यह सुन श्री राम ने अपने सुहृद जनों की ओर देखकर कहा—क्या प्रजा ऐसा कहती है? ऐसा सुन जो लोग बैठे थे सबने हाथ जोड़ कर कहा—पृथ्वीनाथ, यह बात ऐसी ही है, इसमे संशय नहीं है।

सभा विसर्जन होने पर भगवान् रामचंद्र ने भाइयों को बुलवाया। उन्हें गले लगा, आसन पर बैठने की आज्ञा दे संपूर्ण समाचार कह सुनाया कि मेरे विषय मे बीभत्स अपवाद हो रहा है जो मेरे मर्मों को विदीर्ण किए डालता है। लक्ष्मण, तुम तो जानते ही हो, कि रावण सीता को ले गया था सो उसे मैंने नष्ट कर डाला। फिर मेरी ऐसी बुद्धि हुई कि राक्षस के घर रही हुई सीता को मैं अयोध्या कैसे ले जाऊँ, सो भी तुम्हारे सामने की बात है कि सीता ने अग्नि में प्रवेश किया और सूर्य, चंद्र, देवता, ऋषि सबने सीता को निर्दोष ठहराया तथा मेरी बुद्धि से भी निर्दोष ठहरी तब मैं ले आया, पर लोक मे अपवाद है और निंदित-जन अधम लोक मे गिरा दिए जाते हैं। जब तक उनकी निंदा शांत न हो वहीं पड़े रहते हैं। सो इस अपवाद पर मैं अपना प्राण दे दूंगा और सीता क्या तुम सबको भी छोड़ दूंगा। सो हे सौमित्रे, कल तुम सीता को रथ पर चढ़ा गंगा पार वाल्मीकि के आश्रम के समीप छोड आओ। पूर्व मे वह ऐसा कहती भी थी कि मैं गंगा जी के तट पर मुनियों के आश्रमों को देखूंगी। मैं तुमको अपने प्राण और चरणों की शपथ दिलाता हूँ कि इस कार्य के संबंध में मुझसे कुछ विनती न करना और जो मुझे इस बात में रोकेगा वह मेरा अहित होगा। ऐसा कह श्रीरामचंद्र आँखो में आँसू भर सबको विदाकर आप अपने भवन में चले गए।

श्रीलक्ष्मण जी बड़े शोक के साथ रथ जोतवा कर जानकी को ऋषिदर्शन के बहाने ले गए और वहाँ छोड़कर व्याकुल हो मूर्च्छित हो गए और फिर सीता के बहुत पूछने पर सब वृत्तांत कह दिया और बताया कि यह समीप ही महर्षि वाल्मीकिजी का आश्रम है। आप वहीं जाकर रहें। इस पर जानकी जी भी अति विह्वल हुईं। और बोली कि हे सौमित्रे, मेरा जन्म दुःख भोगने को ही

हुआ है। अस्तु यदि मेरे परित्याग से आप का अपवाद मिटे तो मुझे स्वीकार है और यह तो आप जानते ही हैं कि सीता शुद्ध है आपको उचित है कि भाइयों के समान प्रजागण से व्यवहार करें जिससे लोक में कीर्ति हो। मुझे तो आप ही की गति है। देखो मैं गर्भवती हूँ। इतना संदेशा मेरा महाराज से कहना और मेरी सासुओं से मेरा प्रणामपूर्वक कुशल कहना। तदनंतर लक्ष्मण चले आए। वाल्मीकि मुनि बालकों से संदेशा सुन श्रीजानकी जी को आश्रम में ले गए और तपस्विनी स्त्रीजनों को सौंप दिया। लक्ष्मण जी आकर अत्यंत खेदित हुए। तब सुमंत ने समझाया कि सौमित्रे, एक बार चातुर्मास्य में दुर्वासा मुनि वशिष्ठ के आश्रम में गए और चार महीने वहीं रहे, उसी समय तुम्हारे पिता भी वहीं गए थे। एक दिन मध्याह्न में कथावार्ता होते तुम्हारे पिता ने पूछा कि हमारा वंश किस प्रकार चलेगा, राम कितना राज्य भोगेंगे। तब दुर्वासा ने कहा कि देवासुर-संग्राम में दैत्यों से भयभीत होकर देवगण भृगुपत्नी की शरण गए और उन्होंने अभयदान दिया। तब विष्णु ने क्रुद्ध हो चक्र से भृगु-पत्नी का सिर काट लिया। इसपर भृगु ने क्रुद्ध हो शाप दिया कि तुम मनुष्य देह में अवतार लो और तुमने निरपराध मेरी स्त्री को मारा सो तुमको भी बहुत काल तक स्त्री का वियोग हो। ऐसा कह फिर वे विष्णु के प्रसन्नतार्थ तप करने लगे। तब विष्णु ने दर्शन दे शाप को भी अंगीकार किया। हे राजन् वही तुम्हारे राम हुए हैं। यह ग्यारह हजार वर्ष राज्य करेंगे और इनके दो पुत्र होंगे सो हे लक्ष्मण, तुम सीताजी के विषय में सोच न करो। यह समाचार तुम्हारे पिता ने गुप्त रखने को कहा था इससे मैंने अब तक इसे मन में रखा। अब तुम भी भरत और शत्रुघ्न से इसे प्रकाशित न करना। ऐसा सुन लक्ष्मण हर्षित हुए और साधु साधु कहने लगे।

तदनंतर लक्ष्मण अयोध्या पहुँचे। रथ से उतर अति दीन भावयुक्त रोकर रामचंद्र के पास चले गए। वहाँ देखा कि रामचंद्र नीचा मुँह किए आँखों में आँसू भरे अति दुःखित सिंहासन पर विराजमान हैं। यह देख वे बोले कि महाराज, मैं आज्ञानुसार जानकीजी को वाल्मीकि मुनि के आश्रम के निकट छोड़ आया हूँ। परंतु ऐसे नरश्रेष्ठ को सीता के लिये ऐसा विषाद न करना चाहिए क्योंकि जिस संसार में संयोग हुआ है, उसमें एक दिन वियोग भी होगा और आप के संताप करने से जिस अपवाद के भय से आपने पतिव्रता मैथिली का त्याग किया है, वही फिर फैलेगा। ऐसा लक्ष्मण का

वचन सुन रामचंद्र जी प्रसन्न हुए और कहने लगे कि ठीक है, तुम्हारे वाक्यों से मैं संतुष्ट हुआ और मेरा सोच निवृत्त हुआ। इस प्रकार सीता की निंदा के अपराध को क्षमाकर पुरवासियों को शोकरहित कर अपने पुर में बसाया और अंत मे मोक्ष प्रदान किया।

सुरनाथ

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसकू ।
केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ॥
—मानस, सो०—२

एक समय ऐश्वर्य के मद से भरी सभा मे जब परम पूज्य गुरु बृहस्पति पधारे तो इंद्र ने देह, मन वा वाणी से भी उनका कोई सत्कार नही किया, वह, अपने आसन से हिला भी नही। तब विद्वान् और समर्थ गुरु बृहस्पति ऐसा समझकर कि इसको लक्ष्मी का विकार हुआ है चुपचाप सभा से अपने घर लौट गए। उनके चले जाने पर इंद्र ने समझा कि मुझसे अपराध हुआ और फिर मन में अत्यत पछताया। सोचा कि चलकर उनके चरणों पर सिर धरकर उन्हे मनाऊँगा। इतने में बृहस्पति अपनी माया के प्रभाव से घर से भी अदृश्य हो गए। इंद्र ने बहुत खोज की, पर पता न मिला। जब दैत्यों को मालूम हुआ तो वे सब अपने गुरु शुक्राचार्य की संमति से हथियार ले देवताओं पर चढ़ दौड़े। सब देवता इंद्र को साथ ले ब्रह्माजी के पास गए और शरण माँगी। देवताओं को दुःखी देख ब्रह्मा बोले, 'हे देव! तुमने राजमद से गुरु का अनादर किया, उसी का फल है कि तुम दैत्यों से हार गए। दैत्यों पर उनके गुरु का अनुग्रह है। ब्राह्मण और भगवान् का जिनपर अनुग्रह होता है उनका बुरा कभी नही होता। अब तुम लोग त्वष्टा के पुत्र तपस्वी विश्वरूप की शरण जाओ और उनकी आज्ञा शिरोधाय करो तब तुम्हारे सब

मनोरथ पूर्ण होंगे।' ब्रह्मा की आज्ञा से सब देवता विश्वरूप ऋषि के पास गए और अनेक प्रार्थनापूर्वक उनको राजीकर अपना पुरोहित बनाया और उनकी सहायता से अपनी राजलक्ष्मी लौटा ली।

—०—

सृष्टि का आरंभ

उत्पति पालन प्रलय कहानी।
कहेसि अमित आचरज बखानी॥
—मानस, सो०—१

प्राय: सभी पुराणों का सृष्टि के आरंभ के संबंध मे मतैक्य है। क्षीरसागर कोई साधारण पार्थिव समुद्र नही है। यह अत्यंत सूक्ष्म तेजोमय मूल प्रकृति का सागर है, जो अनत आकाशदेश में विस्तृत है। इसी तरह तेजोमय पदार्थ का नाम तारा है। जो अपरिमेय शक्ति का मूल अनादि पुरुप इसमें शयन करता है उसका नाम नारायण है। "शयन" इसलिये कि मूल प्रकृति और अनादि पुरुप सृष्टि के पहले अभेद हैं। एक ही सत्ता है, किंतु कल्पना कि परिधि में लाने के लिये दो वर्णन किए जाते है। एक में रूप है दूसरे मे प्रच्छन्न है। उसी सत्ता मे जब एकोऽहं बहुस्याम का स्फुरण हुआ तब नारायण की नाभि से अर्थात् शक्ति की रजोगुणविशिष्ट कुंडली से अष्टदल कमल, वा देश का द्योतक आठों दिशाओं का सूचक सत्ता का प्रादुर्भाव होता है। इसी कमलपर रजोगुणविशिष्ट सृष्टि के कर्त्तार ब्रह्मा प्रकट होते है। शक्ति के मूल रूप तपस् या तपस्या के अवलंब से शक्तिसंवरण या शक्तिसंचय से वह सृष्टिरचना मे समर्थ होते है। वेद या आत्मज्ञान उनके मुख से निकले है। ब्रह्मा से महत्, महत् से अहंकार, अहभाव से बुद्धि, बुद्धि से मन, मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी पृथ्वी से ओषधियाँ, ओषधि से अन्न, अन्न से रेतस्, रेतस् से शेप प्राणी उत्पन्न हुए। इस

मेदिनी नामक पार्थिव पिंड की रचना के लिये कथा है कि नारायण के कान से अर्थात् दो शक्तिकुंडलियों से दो दानव अर्थात् तमोमय महापिंड निकले, युद्ध हुआ, मारे गए। यह मधुकैटभ थे। इनका मेद नारा मे बहा। वही मेदिनी का मूलरूप हुआ। यह मेदिनी शेष वा अनंत सत्ता पर स्थिर हुई। मंगल ग्रह इसी के गर्भ से निकलकर पिंडरूप हुआ।

ब्रह्मा के अनेक मानस पुत्र हुए। मरीचि, अंगिरा, भृगु, नारद, वसिष्ठ, अत्रि आदि आदि में पहले दोनों अग्नि के वाचक हैं। मरीचि के कश्यप, कश्यप के बारह सूर्य हुए। अंगिरा के बृहस्पति और भृगु के शुक्र हुए। सूर्य से शनि हुए। पीछे मेदिनी के मंथन से चंद्रमा निकला। इससे और बृहस्पति पत्नी तारा से बुध हुआ। इनके सिवा अनेक देव अर्थात् ज्योतिर्मय पिंड उत्पन्न हुए। अगणित ग्रह और तारे जो सभी देव या ज्योतिर्मय थे, ब्रह्मा ने उत्पन्न किए। ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, दो अश्वनीकुमार, यह तैंतीस कोटि या प्रकार के देवता भी उत्पन्न हुए। भू:, भुव:, स्व:, मह:, जन:, तप:, और सत्य लोक भी उत्पन्न हुए। बहुतों के मत से पहले तीन लोक त्रिलोक वा त्रिभुवन कहलाते हैं। इन्ही का क्षय प्रलय मे होता है, शेष का नही होता। बहुत से मर्त्य-स्वर्ग, नरक, और कई पताल, मर्त्य और स्वर्ग त्रिभुवन मानते हैं। इनके सिवा ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक इन सातो लोकों से एक दम भिन्न समझे जाते है, और अधिक स्थायी। कृष्णोपासक गोलोक और रामोपासक साकेतलोक को नित्य, सत्य और इन सबसे परे मानते है।

साकेतलोक और गोलोक नित्य और अविनाशी है। भगवान का नाम, रूप, लीला और धाम सभी नित्य माने जाते है। मुक्त होकर जीव इन्हीं लोकों में जाता है। उसे चार प्रकार की मुक्ति मिलती है सारूप्य, सालोक्य, सामीप्य और सायुज्य। उपास्यदेव का रूप धारण करना सारूप्य है। उपास्यदेव के ही लोक मे नित्य निवास सालोक्य है। उपास्यदेव का पार्षद होकर रहना सामीप्य है। उपास्यदेव का अंग या आभूषणादि होकर रहना सायुज्य है। ये दोनों लोक देश, काल और वस्तु की कल्पना से परे पुरुषोत्तमरूप ही समझे जाते है। वर्णनातीत होने के कारण ही बोधार्थ ये अंग, अंगी, लोक, रूप, पार्षद आदि की कल्पना के साथ बताए जाते हैं।

सातों लोक और सातों पाताल (अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल) मिलकर चौदह भुवन कहलाते है। महाप्रलय में

इनका नाश हो जाता है । इनकी सृष्टि के लिये ब्रह्मा किसी को प्रजा-पति का पद देते है । प्रजापति मैथुनी सृष्टि का आरंभ करते हैं । ब्रह्माजी ने दस प्रजापतियों की सृष्टि की । दक्ष को अंगूठे से उत्पन्न किया । दक्ष भी एक प्रजापति हुए थे, जिनकी कथा रामचरित मानस मे है ।

भू, भुव, स्व आदि लोकों मे से भू: तो यह पृथ्वी है । भुव: अंतरिक्ष और स्वर्लोक स्वर्ग है । स्वर्ग का स्वामी इंद्र है । यह कश्यप के बारह आदित्यों मे से या पुत्रों में से एक नाम भी है । परंतु स्वर्गपति इंद्र व्यक्ति का नाम नहीं है । यह पद का नाम है । नहुष, बलि आदि के इंद्रपद के संबंध की चर्चा से यह बात स्पष्ट हो जाती है । स्वर्ग में देवता रहते हैं । देवताओं के गुरु बृहस्पति है । दैत्यों के गुरु शुक्र है । देवता और दैत्य दोनो ही कश्यप से उत्पन्न बताए जाते है । कश्यपपत्नी अदिति से आदित्य देवता, दिति से दैत्य, दनु से दानव, मनु से मानव या मनुष्य, विनता से गरुड, कद्रू से सर्पादि इस प्रकार कश्यप की अनेक स्त्रियो मे अनेक सतानें हुईं । ब्रह्मा के मरीचि, मरीचि के कश्यप, कश्यप के विवस्वान्, विवस्वान् के वैवस्वत मनु और वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु हुए। इन्हीं अयोध्या के राजा इक्ष्वाकु की वंशपरंपरा मे रामावतार हुआ । विवस्वान् के कारण यह सूर्यवंश प्रसिद्ध हुआ । इसी प्रकार चंद्रमा के बुध, बुध के इला आदि की परंपरा से चद्रवंश प्रसिद्ध हुआ ।

पहला सार्वभौम मनुष्य राजा जो राजधर्म का नियमन और शासन का सघटन करता है मनु कहलाता है । कल्प के आरभ मे पहले मनु स्वायभुव हुए थे । उनके पीछे फिर प्रत्येक मन्वंतर के अधिष्ठाता भिन्न भिन्न मनु हुए । यह मनु शब्द पदवाचक है और कश्यप की स्त्री मनु से भिन्न है ।

सृष्टि में चार दिशाओं के चार लोकपाल हुए । पूर्व के इंद्र, दक्षिण के यम, पश्चिम के वरुण, उत्तर के कुबेर । पूर्व और दक्षिण के बीच आग्नेय कोण का देवता अग्नि, दक्षिणपश्चिम के बीच नैऋत्य-कोण का देवता निऋति, मृत्यु वा काल, पश्चिमोत्तर के बीच वायव्य कोण का देवता वायु और पूर्वोत्तर के बीच के कोण ईशान के देवता ईश हुए ।

लोकपालों में जहाँ आठ की गिनती होती है, यह भी लोकपाल कहे जाते है । इन आठो दिशाओ के रक्षार्थ दिग्गजो की भी कल्पना की जाती है ।

सृष्टि-रचना का आरंभ जो ऊपर वर्णित है, करोड़ों वरसों के विस्तार मे हुआ है । ऐसा नही कि ईश्वर ने कहा कि जगत् हो जाय और जगत् हो गया । सौर ब्राह्मांड का नायक सूर्य है । शेष पृथ्वी, मगल, वुध, गुरु, शुक्र, शनि ग्रह और चंद्रमादि उपग्रह इसी सूर्य की मुख्य वा गौण रूप से परिक्रमा करते है । इन पिंडो की रचना का आरंभ कई अरव वरस पहले हुआ । इनमे से अनेक की रचना अव तक जारी है । उनके कल्प और युग का परिमाण पृथ्वी के युग और कल्प से अवश्य ही भिन्न है ।

पृथ्वी का पिंड आरभ मे अत्यंत तेजोमय तरल पदार्थ का था, जो आज ठडा पड़ने पर वडी वड़ी चटटानो के रूप मे दिखाई पडता है । उस उद्दंड ताप के समय सारा वातावरण घनी उत्तप्त मेघमाला से घिरा रहता था । सूर्य के गिर्द घूमने की क्रिया का आरभ हो जाने पर भी अहर्निश की ठीक व्यवस्था न थी क्योकि तरलता और घनत्व के न्यूना-धिक्य से पृथ्वी के भिन्न भिन्न अंश भिन्न कालो मे ध्रुव की आवृत्ति करते थे । दिनमान ही निश्चित न था ।

दक्षिण दिशा मे भूतल का अर्धभाग जो तरल समुद्ररूप था । वहुत वेग से दैत्य और देवो का शक्ति के सहारे मथा गया । इसकी मथानी मंदराचल को सँभालने के लिये रक्षक भगवान् ने कच्छप का रूप धारण किया । केंद्राभिगामिनी और केंद्रत्यागिनी शक्तियो का आधारकेंद्र और गुरुत्व और लघुत्व की मूल परमात्मा का वल है

जो पिंडो को धारण करता है। यही कच्छपावतार कहलाता है। इसी मंथन में पृथ्वी का एक अंश, चौदह रत्नों में से एक रत्न, चंद्रमा निकला और वही आकाश मे पृथ्वी माता की परिक्रमा करने लगा। बृहस्पति, शनि आदि ग्रहों के अनेक चंद्रमा भी पिंडो के इसी सघर्ष या मंथन से निकले।

पृथ्वी इस घटना के पीछे लाखों बरस मे इतनी ठंढी हो गई कि तरल प्रस्तरमय मेघमाला के बदले वर्तमान जल कि आनंदकांदबिनी आकाश मंडल को सुशोभित करने लगी। पृथ्वी जलमय दिखाई देने लगी।

हिमालय वा मेरु सदृश कही कही पहाड़ों के उत्तुंग शिखर स्थल के रूप मे दिखाई पड़ते थे। ऐसे युग मे जल मे कठिन आवरणवाले दानव ही विचरते थे, जिन्हें शंख कहते थे। शखों के उपद्रव से सारा जलजगत् जब प्रक्षुब्ध हुआ तब भगवान् ने मत्स्यो की सृष्टि की और स्वयं मत्स्यावतार धारणकर मत्स्यों को प्रजा की नीति सिखाई और शख महासुर का संहार किया।

धीरे धीरे जल घटता जाता था और अधिकाधिक स्थल निकलता आता था। कभी जल कभी स्थल हो जाता था। एकाएक किसी समय स्थल जलमग्न हो गया। सूर्यजनित अत्यधिक वर्षा। हिरण्याक्ष ने पृथ्वी का अपहरण कर लिया। श्वेत वाराहरूप भगवान् ने स्थल का पुनरुद्धार किया। श्वेत उन्नत वडवा-ज्वाला-रूपी, कराल दाँतों मे भूगर्भ को खोदकर हिला दिया। पर्वतमालाएँ उभर उभरकर खड़ी हो गईं। स्थल के आधिक्य से अब ओषधियों का आरंभ हुआ सारा धरातल हरे हरे ऊँचे ऊँचे पर्वत की चोटियों मे बातें करते महावृक्षों से भर गया। इन जगलों में वाराहजाति के एवं व्यालजाति के महाविशालकाय दानवाकार जंतु भर गए। उस समय इन्हीं जंतुओं का सम्राज्य था। दैत्यों की सतान ने पृथ्वी पर अधिकार कर लिया। हिरण्यकशिपु उनका प्रसिद्ध सम्राट् हुआ। उस समय मनुष्य

जीवन का विकास नही था। इसी राजा ने मत्त हो विष्णु से लड़ाई छेड़ी। प्रह्लाद इसका लड़का विष्णुभक्त और प्रसिद्ध सत्याग्रही हो गया। इसी भक्त की रक्षा के लिये नृसिंहावतार हुआ। मनुष्य और सिंह के संमिलित रूप मे खंभा फाड़कर भगवान् प्रकट हुए और हिरण्यकशिपु को मारकर प्रह्लाद को सिंहासन दिया। इसी प्रह्लाद के पोते बलि ने भू साम्राज्य स्थापित किया, इंद्र पद की इच्छा से यज्ञ किए। इंद्र की विनती पर भगवान् ने वामनावतार हो उससे समस्त जगत् दान मे ले लिया। वामन को 'त्रिविक्रम' भी कहते है। यही समय मानवजाति के विकासारंभ का था। दैत्य धीरे धीरे भूतल से पाताल चले गए और मनुष्यजाति का युग आया। दैत्यो के साम्राज्य के नष्ट होने पर ही मनुष्य का सार्वभौम राज्य हुआ। मनु से मनुष्यो का विकासारंभ हुआ। मानव चतुर्युगी और कल्प का आरंभ हुआ।

मनुष्यो की चतुर्युगी के सतयुग मे ही ब्राह्मणों और क्षत्रियो में बहुत काल से झगड़े चल रहे थे। सहस्रबाहु अर्जुन के पुत्रो ने ध्यानावस्थित जमदग्नि ऋषि का सिर काट लिया। उनके पुत्र परशराम ने जो भगवान् के अंशावतार थे, प्रतिज्ञा करके इक्कीस वार पृथ्वी के क्षत्रियों का संहार किया।

भगवान् रामचंद्रजी सातवे और श्रीकृष्ण भगवान् आठवे अवतार हुए। इनकी कथाएँ प्रसिद्ध है।

बुद्धदेव नवे अवतार हुए। इनके देहावसान हुए सवा दो हजार वरसों से अधिक हुए। कल्कि अवतार होनेवाला कहा गया है।

—o—

हनुमान

अंजना के गर्भ से उत्पन्न पवन के पुत्र। यह प्राचीन साहित्य मे कपिरूप में स्वीकृत हुए है। सुग्रीव जब अपने बड़े भाई वाली से पराजित होकर किष्किंधा

पर्वत में अपने अन्य साथियों को लेकर रहते थे तो यह भी उस समय उन्हीं के साथ थे। इन्होंने ही रामचंद्र तथा सुग्रीव की मित्रता कराई थी। सीता के लंका में रावण के यहाँ अशोक वन में वंदिनी होने का समाचार इन्होंने ही रामचद्र को दिया था। लंका में रावण के पुत्र मेघनाद ने इन्हें वंदी भी कर लिया था, किंतु राजदूत होने के कारण उस समय के राजनीतिक विधान से इन्हें प्राणदंड नहीं दिया गया था। इनकी पूँछ मे कपड़ा लपेटकर आग लगा दी गई थी। यह प्रसिद्ध है कि अपनी इसी जलती हुई पूँछ से इन्होने लंका दहन किया था। रामचंद्र ने सीता की मुक्ति के लिये जव लंका पर आक्रमण किया था तब इन्होंने बड़ी वीरता के साथ राक्षसों के साथ युद्ध किया था। मेघनाद के शक्तिप्रहार से जब लक्ष्मण मूच्छित हो गए थे तब इन्हें ही एक रात में हिमालय से संजीवनी ओषधि लाने का कार्य सौंपा गया था। राम के प्रति इसके हृदय में अनन्य भक्ति थी। भरत के संबंध में भी इन्होने सुना था कि वह भी अपने बड़े भाई राम के अनन्य भक्त हैं। उसी के परीक्षण के लिये हिमालय से लौटते हुए यह अयोध्या में भी गए थे। फिर भी प्रातःकाल के पूर्व ही इन्होंने संजीवनी ओषधि लंका मे लाकर उपस्थित कर दी थी। रावण वध तथा सीता की मुक्ति के वाद रामचंद्रजी के साथ यह भी पुष्पक विमान पर बैठकर अयोध्या आए थे। रामचंद्र ने जब अश्वमेध यज्ञ किया था तो यह भी अश्व के साथ देश विदेश गए थे। लव कुश के संमुख लक्ष्मण के साथ इन्हें भी पराजित होना पड़ा था। राम तथा सीता के चित्रों में इन्हें प्रधानतः उनके चरण धोते हुए देखा जाता है। महाभारत में अर्जुन के रथ की ध्वजा-धारण करने के कार्य में इन्हें संलग्न देखा जाता है। ये महावीर हैं और परशुराम, अश्वत्थामा, विभीषण आदि के साथ आज भी जीवित माने जाते हैं।

—o—

हलधर

जीह जसोमति हरि हलधर से ।

—मानस, सो०—१

श्रीकृष्ण के अग्रज । महाभारत के अनुसार विष्णु ने एक श्वेत और एक श्याम केश दिए थे । ये ही देवकी के कृष्ण और बलराम होकर अवतरित हुए । पैदा होते ही ये यशोदा और रोहिणी के यहाँ पहुँचा दिए गए । ये कृष्ण के समान ही परम पराक्रमी थे । इनका अमोघ अस्त्र हल था । एक बार स्नानार्थ इन्होंने यमुना को अपने पास खींच लिया था । तभी से इनका नाम यमुनाभिद् हो गया । बलराम ने ही दुर्योधन और भीम को गदायुद्ध की शिक्षा दी थी । छल से दुर्योधन को मारने पर ये बहुत ही क्रुद्ध हुए थे । इनका विवाह रेवती से हुआ था । कृष्ण के पहिले ही एक वृक्ष के नीचे बैठे बैठे इनका स्वर्गवास हुआ । महाभारत में इनका वर्णन अधिकतर मनुष्य रूप से ही है, पर भागवतादि पुराणों में ये अवतार मान लिए गए हैं । इनको लक्ष्मण का अवतार भी माना गया है ।

हिरण्याक्ष

हिरण्याक्ष भ्राता सहित कुंभकर्न बलवान ।
जेहि मारेउ सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान ।।

—मानस, सं०—६

हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यपु का भाई । कश्यप स्त्री दिति इसकी माता थी । पूर्वजन्म में दोनों भाई विष्णु के द्वारपाल जय विजय थे । सनत्कुमारों के शाप से राक्षस हुए । यह पृथ्वी को लेकर ही पाताल की ओर भाग रहा था । उसी समय वाराह अवतार लेकर विष्णु ने इसका वध किया ।

हिरण्यकशिपु

कनककसिपु अरु हाटक लोचन।
जगत विदित सुरपति मद मोचन।
—मानस, सो०—१

कश्यप तथा अदिति का पुत्र, एक दैत्यराज। ब्रह्मा की कठोर तपस्या से अभय प्राप्तकर इसने देवताओं को कष्ट देना आरंभ किया था तथा स्वर्ग पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। विष्णु के प्रति इसके हृदय में बड़ा द्वेष था। संभवतः इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप इसके पुत्र प्रह्लाद में उनके प्रति भक्ति की भावना का उदय हुआ था। प्रह्लाद की इस प्रवृत्ति को देखकर इसने कितनी ही बार उसका वध करना चाहा था। पर अंत में विष्णु ने नरसिंह रूप में इसका वध कर डाला।

हेमा और स्वयंप्रभा

जाइ दीख उपवन वर सर विकसित बहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहँ, बैठि नारि तपपुंज॥
—मानस, सो०—४

वानर सीताजी की खोज में वन वन घूमते घूमते प्यास से व्याकुल थे। जल कहीं न मिला। भीगे पक्षियों को एक गुफा से निकलते देख हनुमान् को आगेकर सब उसमें घुसे। कुछ दूर अंधकारमय मार्ग काटकर उसमें उन्हें एक बगीचा मिला, जिसमें एक सरोवर और फल फूलों से लदे वृक्ष और अच्छे वस्त्रादि से भरे कई घर थे परंतु कोई दिखाई न पड़ा। फिर एक घर मे तपस्विनी देख पड़ी जो ध्यान लगाए एक मैला वस्त्र धारण किए बैठी थी और बड़ी कांतिमती थी। वानरों ने कुछ भक्ति

और भय से उसे प्रणाम किया। तब उसके पूछने पर हनुमानजी ने राम की कथा, सीताहरण और खोज का सारा वृत्तात कहा और अंत मे बोले कि प्यास के सताए, बिना आज्ञा हम इस विवर मे घुस आए है। वह सब सुन तपस्विनी बोली 'हे बली, 'हेमा' नामक विश्वकर्मा की कन्या बडी रूपवती है। उसने नृत्य कर महादेवजी को सतुष्ट किया। शिवजी ने प्रसन्न हो उसे यह दिव्य नगर दे दिया। वह सुदरी अनतकाल तक यहाँ रही। मैं दिव्य नामक गंधर्व की कन्या हूँ और मेरा नाम 'स्वयप्रभा' है। हेमा मेरी मित्र है। मुझे मोक्ष पाने की इच्छा है। इसी से मै विष्णु की आराधना में लगी हूँ। हेमा ने ब्रह्मलोक जाते समय मुझ से कहा, 'यहाँ कोई प्राणी नही रहता, तू यहाँ तप कर, त्रेतायुग मे दशरथपुत्र होकर परमात्मा भूभार उतारने को वन मे आएँगे। उनका सत्कार करके रामजी के पास जाना और स्तुति करना। उससे तू परमपद पा जायगी। सो हे वानरों, अब मै वहाँ जाऊँगी। तुम लोग आंखे मूँद लो, आप से आप गुफा के बाहर हो जाओगे।

सत्योपाख्यान की कथाएँ

'कथा सत्य उपखान'

—दोहावली

१—एक मेढक ने अपने विरोधी कुटुबी मेढको का नाश करने के लिये एक सर्प से मित्रता की। उसने यह समझा कि मैं इसे आहार दूँगा, तो यह मेरा उपकार मानेगा इससे उसने अपने विरोधी मेढकों को खाकर नष्ट करने को कहा। सर्प ने उसके विरोधी मेढको को खाकर फिर उसे भी खाना चाहा, उसने किसी प्रकार अपनी रक्षा की।

२—एक वानर ने किसी मगर से मैत्री की, मगर जामुन के पेड़ के नीचे पानी में आता था, तब वानर ऊपर से पेड़ हिलाकर उसे फल खिलाता था। एक दिन मगर ने अपनी स्त्री से कहा, उसने कहा कि मैं उस वानर का कलेजा खाऊँगी। मगर एक दिन जल में फिराने के व्याज से मर्कट को पीठ पर चढ़ाकर दूर जल मे ले गया, तब अपना प्रयोजन कहा। चतुर वानर ने कहा, भाई! कलेजा तो मैं उस पेड़ पर ही छोड़ आया हूँ। मगर फिर उसे लौटाकर लाया, तब वानर कूदकर पेड़ पर चढ़ गया और उसने अपने प्राण बचाए।

३—एक वणिक् की किसी राजा से मित्रता थी। राजा ने किसी मंत्र-सिद्धि मे कन्यापूजा की आवश्यकता कहकर उसकी सुंदर लड़की माँगी। वणिक ने विश्वास मानकर भेज दिया। राजा ने पापबुद्धि से उसकी लड़की से बलात्कार किया, उससे वणिक् को बड़ा कष्ट हुआ।

बक की कथा

४—महा०, शांति० १६८–१७३ मे कृतघ्नोपाख्यान में बक की कथा विस्तार से लिखी गई है। उसी को यहाँ सूक्ष्म रूप मे दिया जा रहा है—मध्य देशीय गौतम नामक देव-कर्म-रहित ब्राह्मण ने भिक्षार्थ उत्तर म्लेच्छ देश में प्रवेश किया। वहाँ एक धनी डाकू रहता था। गौतम ने उससे वार्षिक भिक्षा माँगी। डाकू ने उत्तम प्रबंध कर दिया और एक विधवा स्त्री भी दी। गौतम उसके साथ वहाँ रहता था। वहाँ वह कई वर्ष रहा, उनके संग से बाण वेधने मे निपुण हो गया। डाकुओं के साथ वह निष्ठुर पक्षियों, पशुओं और सभी प्राणियों का घातक हो गया। कुछ समय के पश्चात् एक सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण जो गौतम का पूर्वपरिचित एवं उसका सखा था, उसके गाँव पर अकस्मात् आ गया। वह शूद्र का धान्य नही लेता था। अतः ब्राह्मण का घर पूछता हुआ उसके पास आया। गौतम को हिंसावृत्ति में देख दयादृष्टि से उसने इसे इसके उत्तम कुल का स्मरण दिला समझाया। तब इसने कहा कि मैं धन के लिये ही पार्त्त होकर इस स्थान पर आया हूँ। आज रात भर आप यहाँ रहें, मैं प्रातः आपके साथ ही यहाँ से चल दूँगा। प्रातःकाल, उस ब्राह्मण के जाने के पीछे गौतम वहाँ से चलकर

समुद्र की ओर चला। कुछ दूर जाने पर वनियों का समूह मिला। यह उसके साथ हुआ। वनियों का समूह हाथियों की वाधा से नष्ट हो गया, तब गौतम अकेला ही समुद्र को जाते हुए सुदर वन में पहुँचा। वहाँ उसे एक रमणीक वृहद् वट का वृक्ष मिला। गौतम उस वृक्ष के नीचे वैठ गया। वहाँ संध्या काल हो गया। वहाँ पर ब्रह्मलोक से कश्यप के पुत्र पक्षिश्रेष्ठ वकराज अपने स्थान पर आए। वकराज को वहाँ लोग धर्मराज भी कहते थे। गौतम भूखे थे। अतएव उस पक्षिश्रेष्ठ को मारने की इच्छा मे थे। उस पक्षिश्रेष्ठ राजधर्मा (वकराज) ने विप्र कहकर गौतम का स्वागत किया। अथिति मानकर गौतम के भोजन का प्रवंध किया। पीछे वकराज अपने पंखों से वायु करने लगा। परिचय पूछे जाने पर गौतम ने नाम मात्र कहा। उसने इन्हे शयन कराया। उसके पूछने पर गौतम ने अपनी दरिद्रता कही। वकराज ने अपने मित्र राक्षसराज के पास गौतम को भेजा। तीन योजन पर यह वहाँ पहुँचा और राक्षसराज से मिला। उसने सोचा कि यह मेरे मित्र वकराज का मित्र है, जाति मात्र का ब्राह्मण है। कार्तिकी पूर्णिमा थी। गौतम को और ब्राह्मणो के साथ सोने का दान मिला। गौतम वोझा भर सुवर्ण लेकर थका हुआ वकराज के पास पहुँचा। उसने सत्कारकर इसके भोजन की सामग्री ला दी।

गौतम ने भोजन करके सोचा कि अभी मुझे दूर जाना है। मार्ग में क्या खाऊँगा उसने विश्वासपूर्वक पास मे सोए हुए वकराज को जलते हुए अंगार से मार डाला। उसी आग मे उसे पकाकर सुवर्ण के साथ उसका मांस लेकर चला। उस वकराज के मित्र राक्षसराज को सहसा चिंता हुई कि आज मेरा मित्र वकराज क्यों नही आया। अत. अपने पुत्र को खोज मे भेजा। वह राक्षसों के साथ वट के नीचे गया तो वहाँ उम राजधर्मा की हड्डियाँ देखी। रोकर उसने शीघ्रता से गौतम का पीछा किया और जाकर उसे पकड लिया। राक्षसराज के पास जाने पर पर उसने इस कृतघ्न एवं महापी का बध कराया। राक्षसों ने

इसका मांस खाना नहीं चाहा तब उन्होंने इसे काटकर डाकुओं को दिया। डाकुओं ने भी नहीं खाया।

राक्षसराज ने मित्र बकराज का प्रेतकर्म किया। सुरभी देवी के मुख का फेन गिरने से बकराज जीवित हो गया। फिर राजधर्मा बकराज ने इंद्र से कहकर गौतम को जिला दिया। गौतम सुवर्ण लेकर घर गया, अंत में नरकगामी हुआ।

छंदप्रयोग

अनुष्टुप्

इस छंद में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में ८ अक्षरों का होना आवश्यक है। प्रथम और तृतीय पद के सप्तम अक्षर गुरु होते हैं। चारों चरणों मे पचम वर्ण का लघु और षष्ठ का गुरु होना अनिवार्य है। द्वितीय और चतुर्थ चरणो का सप्तम वर्ण लघु होना चाहिए।

अनुष्टुप् का लक्षण इस प्रकार है—

पंचम लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
गुरु षष्ठं तु पादानामन्येष्वनियमो मतः॥

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरित मानस का प्रारंभ इसी छंद से किया है—

यथा

वर्णानामर्थसंघाना रसानां छंदसामपि।
मंगलानां च कर्तारौ वदे वाणीविनायकौ॥

भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥

—०—

इंद्रवज्रा

इस छंद मे चार चरण होते है। प्रत्येक चरण के ३, ६, ७ और ९ वें अक्षर का ह्रस्व होना आवश्यक है। दो तगण, एक जगण और दो गुरु प्रत्येक चरण में आने से यह छंद निर्मित होता है जिसका स्वरूप ऐसा होगा। जैसे—

नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगं
सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायक चारुचापं
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।

यहाँ पर कवि ने तीन चरण इंद्रवज्रा के लिखकर चतुर्थ चरण उपेंद्रवज्रा का रख दिया है। अत: यह छंद इंद्रवज्रा के अवांतर भेद शाला और हंसी से समिश्रित हो गया है।

—०—

कवित्त

यह छंद चार चरण का होता है। प्रत्येक चरण में ३१ अक्षर होते हैं। इसमें १६ अक्षरों के अनंतर पहली यति होती है। इस छंद में मात्रा अथवा गण का विचार नहीं रहता। यथा—

सुंदर वदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के।
असनि सरासन लसत, सुचि कर सर,
तून कटि मुनिपट लूटक पटनि के।
नारि सुकुमारि संग जाके अंग उबटि के,
विधि विरचे वरूथ विद्युत छटनि के।
गोरे को बरन देखे सोनो न सलोनो लागे,
साँवरे विलोकि गर्व घटत घटनि के।

× × ×

जलजनयन जलजानन, जटा है सिर,
जोवन उमग अंग उदित उदोत हैं।
साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी,
मुनिपट धारे, उर फूलनि के हार हैं।

करनि सरासन सिलीमुख निपग कटि,
अति ही अनूप काहू भूप के कुमार है ।

तुलसी विलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि
रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार है ।।

इसको घनाक्षरी और मनहरण के नाम से भी पुकारा जाता है। इसमें ३१ वर्ण होते है तथा १६ और १५ पर यति हुआ करती है, अंत मे गुरु वर्ण का होना आवश्यक है । कवितावली में इसका ही प्राधान्य है और अन्य छंदों की अपेक्षा इसमें ही अधिक पदो की रचना हुई है। इसके (घनाक्षरी) कई भेद हैं जैसे—रूप घनाक्षरी, जनहरण, और देव घनाक्षरी आदि । 'कवितावली' में रूप घनाक्षरी के पद कम ही है। नीचे कवित्त (मनहर) और रूप घनाक्षरी के उदाहरण दिए जाते हैं—

पात भरी सहरी, सकल सुत वारे वारे
केवट की जाति, कछु वेद न पढ़ाइहौं।

सबु परिवारो मेरो, याही लागि राजा जू हौं
दीन वित्तहीन, कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ।

गौतम की घरनी ज्यों, तरनी तरेगी मेरी
प्रभु सों निषाद ह्वै कै, वादु ना बढाइहौ ।

तुलसी के ईस राम रावरे सों सांची कहौ
बिना पग धोएँ नाथ नाव ना चढाइहौ ।।

—o—

रूपघनाक्षरी

इसमें ३२ वर्ण होते हैं तथा १६-१६ पर यति होती है। इसके अंत में गुरु-लघु का भी विधान है । जैसे--

"प्रभु रुख पाइ कै, बोलाइ बाल घरनिहि ।
वंदि कै चरन, चहूँ दिसि वैठे घेरि घेरि ।
छोटो-सो कठौता, भरि आनि पानी गंगाजू को ।
धोइ पाय पिअत, पुनीत वारि फेरि फेरि ।
तुलसी सराहै ताको भागु सानुराग सुर ।
वरखै सुमन, जय जय कहैं टेरि टेरि ।
विविध सनेह सानी, वानी असयानी सुनि ।
हँसै राघौ जानकी, लखन तन हेरि हेरि ॥

—०—

देवघनाक्षरी

इसमें चार चरण होते है। गण अथवा मात्रा का विचार इस छंद में भी नही होता प्रत्येक चरण मे ३०, ३२ या ३३ अक्षर तक होते हैं।

—०—

चौपाई

चौपाई में ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण मे १६ मात्राओ का होना अनिवार्य है। चरणांत में जगण और तगण नही होते। गोस्वामीजी ने विलासित तामरस, स्वगता, अनुकूला, डिल्ला, वन्नवमालिनी, विद्युन्माला, दोधक भ्रमर और चपकमाला इत्यादि छंदो का भी परिगणन चौचाई छद में ही किया है। मानस मे १६ मात्राओं से युक्त चौपाइयो का ही बाहुल्य है।

वन दुख नाथ कहे वहुतेरे ।
भय विपाद परिताप घनेरे ॥

प्रभु वियोग लवलेस समाना ।
सव मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥

छप्पय

इस छंद मे ७ चरण होते है जिनमें प्रथम ४ चरण रोला के और अंतिम दो उल्लाला के रहते है । यह मात्रिक छद है, रोला में २४, २४ और उल्लाला मे २८, २८ मात्राएँ होती है । उल्लाला में १५ मात्राओ पर प्रथम और २८ वी मात्रा पर द्वितीय यति होती है ।

मात्रिक मे पहले छप्पय को लिया जाता है । छप्पय छह पंक्तियों वाला छंद है जो दो प्रकार के छंदो के योग से वनता है । वे छंद हैं—रोला और उल्लाला । रोला में २४ मात्राएँ होती है तथा ग्यारह और तेरह पर यति हुआ करती है, जैसा कि उसकी परिभाषा से विदित है--

'रोला की चौवीस कला, यति ग्यारह तेरह ।'

छप्पय मे पहली चार पंक्तियाँ इसी रोला की रखे जाती है और अंत मे दो पंक्तियाँ उल्लाला की रखी जाती है । यह उल्लाला छंद दो प्रकार का होता है—एक मात्रिक सम छद और दूसरा मात्रिक अर्धसम छंद । मात्रिक सम छद में तेरह तेरह मात्राएँ होती है और मात्रिक अर्धसम मे पंद्रह और तेरह मात्राएँ होती है । दोनो ही प्रकार के उल्लालाओं के लक्षण इस प्रकार हैं—

'उल्लाला तेरह कला, एकादसवाँ लघु घला' ।
'विपमनि पंद्रह घरिए कला, सम तेरा उल्लाला करा' ।

कवितावली में दूसरे प्रकार के उल्लाला के ही उदाहरण हैं जिसमें १५, १३ पर यति होती है नीचे छप्पय छंद का एक उदाहरण दिया जाता है।

जैसे—

डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पव्वै समुद्र सर।
व्याल वधिर तेहि काल, विकल दिक्पाल चराचर।
दिग्गयद लरखरत, परत दसकंठ मुक्खभर।
सुरविमान हिमभानु भानु संघटित परस्पर॥

चौंके विरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यो।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहि राम सिवधनु दल्यो॥

झूलना

यह कवित्त की भाँति आठ पंक्तियों वाला छंद है। इसमें ३७ मात्राएँ होती हैं और २० तथा १७ पर यति होती है। 'कवितावली' मे इस पद का प्रयोग कम ही हुआ है। एक उदाहरण है—

कौन की हाँक पर चौंक चंडीसु विधि
चंडकर थकित फिरि तुरंग हाँके।
कौन के तेज बलसीम भट भीम से
भीमता निरखि कर नयन ढाँके।

दास तुलसीस के बिरुद बरनत बिदुष
　　　　बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन
　　　　कहाँ हनुमान से बीर बाँके॥

सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि
　　　　दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यो।
आनि परबाम बिधिबाम तेहि राम सों
　　　　सकत संग्राम दसकंध काँध्यो।
समुझि तुलसीस कपिकर्म घर घर घैरु
　　　　बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।
बसत गढ़ लंक लंकेस नायक अछत
　　　　लंक नहिं खात कोउ भात राँध्यो॥

डिल्ला

इस छंद के ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में १६, १६ मात्राएँ होती हैं। चरणांत में भगण का होना आवश्यक है। जैसे—

मामभिरक्षय रघुकुल नायक।
　　　　धृत वर चाप रुचिर कर सायक।
मोह [illegible] र प्रभंजन।
　　　　[illegible]पिन अनल सुर रंजन।

तोटक

इसके प्रत्येक चरण में चार सगण होते हैं। इस प्रकार इसके प्रत्येक चरण में बारह वर्ण होते है।

इसका उदाहरण मानस में इस प्रकार उपलब्ध होता है—

जय राम रमारमनं समनं।
भव ताप भयाकुल पाहि जनं।
अवधेस सुरेस रमेस विभो।
सरनागतमागत पाहि प्रभो।

तोमर

तोमर छंद के प्रत्येक चरण में १२ मात्राएँ होती हैं। चरणांत में क्रम से गुरु लघु का होना आवश्यक है। जैसे—

जब कीन्ह तेहि पाखंड।
भए प्रगट जंतु प्रचंड।।
बेताल भूत पिसाच।
कर धरे धनु नाराच।।

त्रिभंगी

इस छंद के प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती है। १० वीं, १८ वीं, २६वीं और ३२ वी मात्राओं पर यति होती है। जैसे—

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया, रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै।
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसकाना चरित बहुत विधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुनाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥

दोहा

इस छंद के प्रथम और तृतीय चरण में १३, १३ मात्राएँ तथा द्वितीय और चतुर्थ में ११, ११ मात्राएँ होती हैं।

जाके बल लवलेस तें, जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि, हरि आनेहु प्रिय नारि॥

गोस्वामी जी ने अपने ग्रंथों में बहुतेरे ऐसे दोहे लिखे है जिनके प्रथम चरण में १२, १२ मात्राएँ हैं।

उदाहरण—

विनय कीन्हि चतुरानन, प्रेम पुलक अति गात।
सोभा सिंधु विलोकत, लोचन नहीं अघात॥

सोरठा

दोहा को पलट देने से सोरठा बन जाता है।

नगस्वरूपिणी

इस छंद के प्रत्येक चरण में एक जगण, एक रगण, एक लघु तथा एक गुरु होता है। अर्थात् प्रत्येक चरण में द्वितीय, चतुर्थ और षष्ठ तथा अष्टम वर्ण का गुरु होना आवश्यक है। जिसका ऐसा रूप होगा।

उदाहरण—

नमामि भक्तवत्सलं।
कृपालु शील कोमलं।
भजामि ते पदांबुजं।
अकामिनां स्वधामदं॥

———

बरवै

मात्रिक अर्द्धसम छंद। इस छंद के पहले, तीसरे पादों में १२, १२ और दूसरे, चौथे चरणो ७, ७ मात्राएँ होती है। सम पादो के अंत मे प्रायः जगण या तगण आता है। इस छंद का नाम प्राकृत-अपभ्रंश छंदो की चर्चा करनेवाले ग्रथो मे नही मिलता। हिंदी के छंदो की चर्चा करनेवाले प्राचीन ग्रंथों मे भी इसका उल्लेख नही मिलता—जैसे भिखारीदास के छदार्णव ग्रंथ में बरवै का विवरण नही दिया गया है। इससे प्रतीत होता है कि यह छंद लोकगातो के रूप मे प्रचलित था और पीछे इसको साहित्य मे अपनाया गया। हिंदी मे तुलसीदास की इसी छद के नाम पर प्रसिद्ध कृति 'बरवै रामायण' में सभवतः सबसे पहले इसका साहित्यिक प्रयोग मिलता है।

भिखारीदास ने अपने छंदार्णव मे इसे 'ध्रुवा' छंद कहा है। जिसका लक्षण बरवै छद का ही है।

पहिलेहि बारह कल करु, बहुरेहु सत्त।
इहि विधि छंद ध्रुवा रचु, उनइस मत्त॥

यथा

ध्रुवहि छाँडि जो अध्रुव सेवन जाइ।
अध्रुव तासु नसैहै ध्रुवहु नसाइ॥

उदाहरण—

केहि गिनती महँ गिनती जस वन घास।
नाम जपत भे तुलसी तुलसीदास॥

बरवै रामायण

भुजंगप्रयात

इस छंद के प्रत्येक चरण मे चार यगण होते है—भुजंगप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः।

उदाहरण—

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं।
विभुं व्यापकं ब्रह्मवेद स्वरूपं॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं।
चिदाकाशमाकाशवासं भजेहं॥

मालिनी

इस छंद के चारों चरण १५, १५ अक्षरों के होते हैं। अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में दो नगण, एक मगण और दो यगण आते हैं।

उदाहरण—

अतुलित बलधामं स्वर्ण शैलाभदेहं।
दनुज वन कृशानु ज्ञानिनामग्रगण्यम्॥
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं।
रघुपति वर दूतं वातजातं नमामि॥

———

रथोद्धता

इस छंद के प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं। अर्थात् एक रगण, एक नगण और पुनः एक रगण, अंत में एक लघु और एक गुरु का होना निश्चित है।

उदाहरण—

कुंदइंदुदरगौरसुंदरं
अम्बिकापतिमभीष्ट सिद्धिदम्।
कारुणीककलकंजलोचनं
नौमि शंकरमनंगमोचनम्॥

———

वंशस्थ

इस वृत्त के प्रत्येक चरण में १२, १२ अक्षर होते हैं, अर्थात् एक जगण एक तगण, एक जगण और एक रगण होता है।

उदाहरण—

प्रसन्नता या न गताभिषेकतस्तथा
न मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुज श्री रघुनंदनस्य मे
सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा ।।

वसंततिलका

इसके प्रत्येक चरण मे एक तगण, एक भगण, दो जगण और अंत में दो गुरु होते हैं इसका उदाहरण इस प्रकार का होगा। जैसे—

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये।
सत्यं वदामि च भवानखिलांतरात्मा ।।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे ।
कामादि दोष रहितं कुरु मानसं च ।।

शार्दूलविक्रीड़ित

इस वृत्त के प्रत्येक चरण में १६ अक्षर होते हैं, अर्थात् एक मगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण, दो तगण और एक गुरु का होना आवश्यक है। पहली यति १२ वे वर्ण पर और दूसरी १६ वे अक्षर पर होती है।
उदाहरण—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा ।
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः ।

यत्पादप्लवमेकमेवहि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां।
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥

सवैया

यह वर्णवृत है। इसमें ४ चरण होते हैं। गण विचार से सवैया के १२ प्रकार हैं। जैसे—

(१) मदिरा--जिसमे ७ भगण और एक गुरु हो।
(२) किरीटी—जिसमें ८ भगण हों।
(३) मालती—जिसमे ७ भगण और दो गुरु हों।
(४) चित्रपदा—जिसमें ७ भगण और एक गुरु और एक लघु हो।
(५) मल्लिका—जिसमे १ लघु और ७ भगण हों।
(६) माधवी—जिसमे १ लघु और ७ भगण और दो गुरु हों।
(७) दुर्मल्लिका--जिसमे २ लघु ७ भगण और एक गुरु हो। अथवा जिसमें ८ सगण हो।
(८) कमला--जिसमें दो लघु ७ भगण और २ गुरु हों।
(९) मंजरी--जिसमे एक लघु ७ भगण १ लघु और १ गुरु हो।
(१०) ललिता—जिसमे दो लघु ८ भगण हो अर्थात् जिसमें ८ सगण और दो गुरु हों।
(११) सुधा—जिसमें दो लघु ७ भगण १ गुरु और १ लघु हो।
(१२) अलसा—जिसमें ७ भगण और १ रगण हो।

उदाहरण के लिये कवितावली में किरीटी, मालती, दुर्मिलिका और कमला विशेष रूप से मिलते हैं जिनके उदाहरण कवितावली से प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

—०—

किरीट

जाके विलोकत लोकप होत विसोक, लहैं सुरलोक सुठौरहि ।
सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवैं सुरमौरहि ।
ताको कहाय, कहै तुलसी, तू लजाहि न माँगत कूकर कौरहि ।
जानकी जीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि ।।

—०—

मालती

दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं ।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि, वेद जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं ।।
राम को रूप निहारति जानकी, कंकन के नग की परछाहीं ।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं ।।

—०—

दुर्मल्लिका

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं ।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि अनंग की दूरि धरैं ।
दमकै दतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल वाल विनोद करैं ।
अवधेस के वालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में विहरैं ।।

—०—

कमला

पद कोमल, स्यामल, गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाए।
कर बान सरासन, सीस जटा, सरसीरुह लोचन सोन सुहाए।
जिन देखे, सखी सतभायहु तें तुलसी तिन तौ मन फेरि न पाए।
यहि मारग आजु किसोर वधू विधु बैनी समेत सुभाय सिधाए॥

गोस्वामी जी ने किन्ही छदो की रचना में उपर्युक्त नियमों की अवहेलना भी कर दी है। उदाहरणस्वरूप कवितावली, उत्तरकांड के छंद, संख्या १२, १४ और ४६ दिए जा सकते हैं जिनके चारो चरणों मे अक्षर का गण समान नहीं है।

—०—

सोरठा

इस छंद के प्रथम और द्वितीय चरण में ११, ११ और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में १३, १३ मात्राएँ होती हैं। जैसे—

जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिवर वदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥

सोरठे को पलट देने से दोहा बन जाता है।

चौपैया

इस छंद में ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण मे ३० मात्राएँ होती हैं ; १०, १८ और ३० वीं मात्राओं पर यति होती है। जैसे—

सुर मुनि गंधर्वा मिलिकरि सर्वा गे विरंचि के लोका ।
सँग गोतनुधारी भूमि विचारी परम विकल भय सोका ।
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई ।।
जा करि तैं दासी सो अविनासी हमरेउ तोर सहाई ।।

—o—

स्रग्धरा

इस वृत्त के प्रत्येक चरण मे २१ अक्षर होते हैं। अर्थात् एक मगण, एक रगण, एक भगण, एक नगण और तीन यगणों का होना आवश्यक है।

उदाहरण—

केकीकण्ठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं ।
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम् ।।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं ।
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम् ।।

—o—

हरिगीतिका

इस छंद में ४ चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती है। १६ वीं और २८वीं मात्राओं पर यति होती है। गोस्वामी जी ने कहीं १४वीं मात्रा पर भी यति दी है। चरणांत में गुरु लघु वर्ण आए हैं।

उदाहरण--

उपदेसु यहु जेहि तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं।
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥

भाव और रसनिरूपण

भाव

जिन साधनों की अनुकूलता से हृदय मे किसी रस का प्रादुर्भाव हो उन्हें भाव कहते है। जैसे–

कंकन किकन नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदय गुनि ॥

मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही ॥

यहाँ पर कंकन और किकिनी की ध्वनि शृंगार रस के प्रादुर्भाव होने में सहायता दे रही है। अतः यह भाव है। भाव के ४ भेद है—

१—स्थायी भाव
२—विभाव
३—अनुभाव
४—संचारीभाव

स्थायी भाव

रस का मूल स्थायी भाव है। जो किसी के भी हटाए न हटे, वह स्थायी भाव होता है। जैसे—

विधि हरि हर तप देखि अपारा ।
मनु समीप आए बहु बारा ॥
माँगहु बर बहु भाँति लोभाए ।
परमधीर नहि चलहि चलाए ॥

विभाव

जहाँ किसी वस्तु से किसी रस की उपत्ति हो अथवा रसास्वादन का अंकुर उत्पन्न हो वहाँ विभाव होता है। विभाव के भी २ भेद हैं।

(१) आलंवन
(२) उद्दीपन

आलिंगन

रामसखा रिषि बरबस भेंटा।
जनु महि लुठत सनेह समेटा ॥
—मानस, सो०—२

चुंबन

बार बार मुख चुंबति माता।
नयन नेह जलु पुलकित गाता ॥
—मानस, सो०—२

स्थायी भाव के सहायक होकर जो अन्य भाव उसकी पुष्टिमात्र करनेवाले हैं वे संचारी भाव कहलाते है। इस प्रकार के भावो की संख्या ३३ मानी गई है, जिनमे से प्रत्येक के उदाहरण मानस से नीचे प्रस्तुत किए जा रहे है।

ग्लानि

गरै गलानि कुटिल कैकेई।
महि न बीचु बिधि मीचु न देई ॥

दीनता

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं।
भूतल परे लकुट की नाईं ॥

शंका

रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ।
उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ ॥

त्रास

जासु त्रास डर कहुँ डर होई।
भजन प्रभाव देखावत सोई ॥

आवेग

अब जनि कोउ माखे भटमानी ।
वीर विहीन मही मैं जानी ॥

गर्व

भुज विक्रम जानहिं दिगपाला ।
सठ अजहूँ जिन्ह के उर साला ॥

अमर्ष

इहाँ कुम्हड़बतियाँ कोउ नाही ।
जे तरजनी देखि मरि जाहीं ॥

उग्रता

जौ तुम्हारि अनुसासन पावौं ।
कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ॥
कांचे घट जिम डारौ फोरी ।
सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी ॥

औत्सुक्य

निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति ।
वेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खलदल जीति ॥

चिंता

नीके निरखि नयन भरि सोभा ।
पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा ॥

तर्क

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी ।
चलति भगति बल धीरज धोरी ॥
जौ परिहरहिं मलिन मनु जानी ।
जौ सनमानहिं सेवकु मानी ॥

प्रीति

जाना मरमु नहात प्रयागा ।
मगन होंहि तुम्हारे अनुरागा ॥

हर्ष

हरखे सब विलोकि हनुमाना ।
नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना ॥

कुटिलता

फोरै जोगु कपारु अभागा ।
भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा ॥

चापल्य

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ ॥

मोह

लीन्हि राय उर लाइ जानकी
मिटी महामरजाद ग्यान की ।

आलस्य

लरिका श्रमित उनीद बस सयन करावहु जाइ ।
अस कहिगे विश्राम गृह राम चरन चितु लाइ ॥

जड़ता

लछिमन समुझाए बहु भाँति ।
पूछत चले लता तरु पाँती ॥

विषाद

सुनि विलाप दुखहू दुख लागा ।
धीरजहु कर धीरजु भागा ॥

मूर्छा

असकहि मुरुछि परा महि राऊ।
राम् लखनु सिय आनि देखाऊ॥

व्याधि

एहि कुरोग कर औषधु नाहीं।
सोधेउँ सकल विस्व मन माही॥

भ्रम

नहि प्रसन्न मुख मानस खेदा।
सखि संदेहु होइ एहि भेदा॥

स्वप्न

सपने वानर लंका जारी।
जातुधान सेना सव मारी॥

लज्जा

गुरजन लाज समाजु वड़, देखि सीय सकुचानि।
लागि विलोकन सखिन्ह तन, रघुवीरहि उर आनि।

बोध

वंधु वंस तैं कीन्ह उजागर।
भजेउ राम शोभा सुख सागर॥

निर्देश

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती।
सब तजि भजनु करौं दिन राती॥

असूया

तव प्रभु नारि विरह वलहीना।
अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ।
अनुज हमार भीरु अति सोऊ॥

जामवंत मंत्री अति बूढ़ा ।
सो कि होइ अब समरारूढ़ा ।।

मद

रन मद मत्त फिरइ जग धावा ।।

स्मरण

जब जब मातु करिहि सुधि मोरी ।
होइहि प्रेम विकल मति भोरी ।।

धृति

जनक सुतहि समुझाइ करि, बहुविधि धीरजु दीन्ह ।
चरन कमल सिरु नाइ कपि, गवनु राम पहि कीन्ह ।।

आवेग

देखन मिस मृग विहग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि ।
निरखि निरखि रघुवीर छवि, बाढइ प्रीति न थोरि ।।

अवहित्था (आकृतिगोपन)

लछिमन दीख उमाकृत वेषा ।
चकित भए भ्रम हृदय विसेषा ।।

इस प्रकार सभी रसों और भावों के प्रकाशन में गोस्वामी जी की लेखनी और मनोवृत्तियां तन्मय हो गई हैं ।

रसनिरूपण

तुलसी के काव्य का महत्व बहुत कुछ विविध रसों एवं भावो की विशद व्यजना के कारण है। भवभूति एक करुण रस की व्यंजना से महाकवि की उपाधि पा गए । वात्सल्य और शृंगार के क्षेत्र मे अपना काव्यचातुर्य दिखलाकर सूर हिंदी साहित्याकाश के सूर्य कहलाए पर तुलसी के काव्य में रसों की जैसी छटा दिखलाई देती है वैसी अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलती। शृगार और शांत, हास्य और करुण विविध विरोधी

भावों की अभिव्यंजना तुलसी ने समान अधिकार के साथ की है। गोस्वामीजी की कविता, सरस, सजीव और पूर्ण है। प्रसगानुसार उन्होंने जहाँ भी जिस रस का वर्णन उठाया है उसे कुशलता के साथ आदि से अंत तक निबाहा भी है। गोस्वामीजी ने नवों रसों की मंदाकिनी अपने काव्यक्षेत्र मे प्रवाहित की है। सहृदय पाठक अपने इच्छानुसार किसी भी रसधारा मे डुबकी लगाकर काव्यानंद रूपी मणि पा सकते है। गोस्वामीजी भावों के शुष्क मनोवैज्ञानिक विश्लेपक न थे। उन्होंने उसके गहरे और हल्के रूपों को संश्लिष्टावस्था मे जुटाया, उनकी रसप्रसविनी लेखनी सब रसों की धारा प्रवाहित करने मे समर्थ हुई है। आगे गोस्वामीजी की कृतियों से प्रत्येक रस की विशद विवेचना की जा रही है।

शृंगार रस—

रसों का राजा शृंगार ही समझा जाता है। हमें इस बात का गौरव है कि गोस्वामीजी की लेखनी सदैव ही मर्यादा के पक्ष मे रही है।

तुलसी ने अपने काव्य में शृंगार रस के संयोग और वियोग नामक दोनों ही पक्षो को ग्रहण किया है। संयोग शृंगार में उन्होने दांपत्य प्रेम के अनेक शुद्ध हृदयग्राही और संयत चित्र उपस्थित किए हैं। राम और सीता के परस्पर प्रेमव्यवहार का अंकन करते समय उन्होंने संयोग शृंगार के स्थूल पक्ष का परित्याग करके उसके सूक्ष्म रूप का व्यंजनापूर्ण चित्रण किया है। उदाहरणार्थ वनगमन के अवसर पर ग्रामवधुओं के राम–लक्ष्मण–विषयक प्रश्न के उत्तर में सीता की चेष्टाएँ दर्शनीय हैं। विप्रलंभ शृंगार का चित्रण करते समय तुलसी ने इसी मर्यादा को सदैव ध्यान में रखा है। उन्होंने वन मे राम और सीता के परस्पर पृथक् होने पर दोनो का ही विरहभाव दिखलाया है किंतु चरित्र की रक्षा करते हुए उन्होंने प्रलापरत प्रेम रूप मे राम और सीता को प्रस्तुत नही किया।

तुलसी रससिद्ध कवि हैं। जिस भाव के चित्रण को उन्होंने अपनी कविता में स्थान दिया है उसे बड़ी कुशलता से रस दशा तक पहुँचाने मे सफलता भी प्राप्त की है। उनकी अभिव्यक्ति मे जितनी भावुकता और सरसता पाई जाती है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। तुलसी ने जीवन के किसी भी

भाव को अछूता नहीं छोड़ा है। यही हाल रसराज शृंगार का भी है। इस रस का निर्वाह करने मे बहुत से कवि चूक गए हैं। गोस्वामीजी ने इस रस का बड़ा ही उत्कृष्ट विवेचन किया है। इनके मर्यादा सहित शृंगारवर्णन में ऐसी उदात्त भूमिकाएँ प्राप्त होती है कि पाठक उनमें रसमग्न हो जाता है। राम और सीता का मिलन शुद्ध शृंगार है किंतु उसमें कहीं भी एक शब्द भी ऐसा नहीं आया जिसपर कोई उँगली उठा सके। देखिए—

लोचन मग रामहि उर आनी।
दीन्हे पलक कपाट सयानी॥

सीता राम के प्रेम में विह्वल हो जाती है। किंतु इसका वर्णन इतना मर्यादापूर्ण है कि यहाँ न कोई जंगली उछलकूद है, न कोई विकृत हाव-भाव है और न आँख का संकेत ही है।

गोस्वामी तुलसीदास के सामने सबसे बड़ा संकट था स्त्री के रूप का। भक्त लोग जिस रूप में देखते आए हैं उसके कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। तुलसी भक्ति का प्रतिपादन करें और स्त्री के नखशिख को खोलकर दिखलाएँ यह कैसे संभव था? यह तो हुई भक्तिक्षेत्र की कठिनाई। इधर नायिका के नखशिख के बिना रस को संतोष कहाँ। गोस्वामीजी इसी संकट में घिरे थे किंतु उन्होंने इसको भी दूर किया और अपनी रचना मे नखशिख को भी ला दिया। किंतु सबके लिये नहीं, अधिकारियों के लिये ही और सो भी अपने ढंग पर रूपकातिशयोक्ति के रूप में ही देखिए, वियोग की दशा मे राम के सामने सीता का नखशिख ही मँडरा रहा है। नखशिख-प्रेमियों के लिये तुलसी ने स्त्री के नखशिख को यही तक रहने दिया है। इससे आगे और उनसे कुछ भी न हो सका। सीता के सौंदर्य को गोस्वामीजी ने अकथनीय रूप में रखा है। यही रूप राम के हृदय में किस प्रकार रम जाता हैं इसे कविवर्य ने पुष्पवाटिका प्रकरण में बड़े मार्मिक ढग से दिखलाया है और यह भी स्पष्ट कर दिया है कि पुरुष की भाव-व्यजना में भेद क्या होता है। यहाँ यह जान लेना चाहिए कि सीता के आगमन की सूचना राम को 'कंकन किंकिनि और नूपुर की ध्वनि' से मिलती है और सीता को राम के आगमन की सूचना एक सखी के द्वारा मिलती है। राम हृदय के क्षोभ को कहकर रह जाते है और

सीता पर राम के दर्शन का ऐसा प्रभाव पड़ता है कि एक प्रकार की समाधि सी लग जाती है। वे अपनी आंखे बंद कर लेती है। राम इस दशा को कभी प्राप्त नही होते। उनके हृदय मे तो बस सीता की मूर्ति ही बस जाती है अथवा वे उसे भलीभांति अपने चित्त मे उतार लेते है। गोस्वामीजी इस बात को भलीभांति समझते है कि स्त्री और पुरुष की भावना मे क्या भेद होता है। धनुपयज्ञ मे देखिए कि धनुप टूट जाने पर किसके हृदय में कैसी लहर उठती है और किसको कैसा सुख प्राप्त होता है—

सखिन्ह सहित हरषी अति रानी।
सूखत धान परा जनु पानी॥
जनक लहेउ सुखु सोच बिहाई।
पैरत थके थाह जनु पाई॥
सीय सुखहि बरनिअ केहि भांती।
जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥
रामहि लखनु बिलोकत कैसें।
ससिहि चकोर किसोरकु जैसें॥

इसमे अन्य भूपों को तो दूर कीजिए और रानी तथा राजा और सीता तथा लक्ष्मण के हृदय की प्रसन्नता लीजिए और देखिए कि तुलसी ने एक के भाव मे दूसरे को कैसे जोड दिया है। देख लिया न कि अप्रस्तुत से कैसा काम लिया गया है, चातकी और चकोर को ध्यान मे रखिए—

एक ही भाव किस तरह हृदय पर अपना शासन जमाता है इसकी भी परीक्षा कर लीजिए। चातकी सीताराम के रूप को आंख भरकर देखना चाहती है किंतु ऐसा नही कर पाती फलतः उनके नयनो की यह अवस्था हो जाती है—

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥

इस 'डोल' की गति पर ध्यान रखते हुए विचारणीय है कि मन की बात पूर्ण हो जाने पर मन की स्थिति क्या हो जाती है।

पुनि पुनि रामहिं चितव सिय, सकुचत मन सकुचै न ।
हरत मनोहर मीन छवि, प्रेम पियासे नैन ।।

छवि भी ऐसी निखर जाती है कि मीन का रंग फीका पड़ जाता है और मन तो इतना ढीठ हो जाता है कि सीता को उस अनुपम छवि के निरीक्षणार्थ उपाय रचना पड़ता है—

निज पानि मनि महुँ देखिअति मूरति सुरूपनिधान की ।
चालति न भुजवल्ली बिलोकनि विरह भय वस जानकी ।।

धीरे धीरे यह भाव बड़ा गहरा और प्रौढ़ हो जाता है फिर यह न भूलना होगा कि शील कभी भी लज्जा को नहीं छोड़ सकता । फलतः वनयात्रा में सीता को अपने पति का परिचय इस प्रकार देना पड़ता है—

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी ।
पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि ।
निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि ।।

इस प्रसंग मे 'सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी' में लज्जा का बड़ा भारी आवरण है । अन्यथा बात तो कुछ खुलकर ही मुसुकाने की है और दूसरी ओर राम के 'चितवन' की यह दशा है —

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा ।
सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ।।

राम को सीता को फिर देखने का अवसर उस समय प्राप्त होता है जब वह रंगभूमि में आती हैं और उनके मन में 'करिहै मोहि रघुपति की दासी' की कामना होती है । गोस्वामी जी इसी अवसर पर कहते हैं—

राम विलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि ।
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल विसेपि ॥

और फिर तो दोनो की ही यह दशा होती है—

सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेम काहु न लखि परै ॥

किसी कवि को इस अगोचर अवलोकन सकेत से सुख नही हो सकता। वह तो इस चितवन की जोह में लगा है जिसको सभी एकटक देख सके। अतएव उनका निश्चय है—

तुम अति हित चितइहो नाथ तनु, वार वार प्रभु तुमहि चितैहै ।
यह सोभा सुख समय विलोकत काहू तो पलके नहि लैहे ॥

राम और सीता के सयोग शृंगार के सबध मे यह जान लेना चाहिए कि तुलसी ने इसको बहुत ही दिव्य और सहज रूप मे अंकित किया है इसे देखना हो तो बस धीरेसे चित्र कूट चलकर इसका निरीक्षण गीतावली मे कीजिए। गोस्वामीजी के हृदय मे जो इस प्रकार की जोड़ी बस गई वह है तो पुष्प-वाटिका की पर इसमे अब कुछ विशेषता आ गई है । राजधानी छोड़ते समय जिसको लेशमात्र भी क्लेश नही हुआ उसी की दशा पुर से बाहर होते ही यह हो जाती है—

पुर ते निकसी रघुवीर वधू, धरि धीर दए मग मे डग द्वै ।
झलकी भरि भाल कनी जल की, पुट सुखि गए मधुराधर वै ॥
फिरि बूझति है चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै ।
तिय की लखि आतुरता पिय की, अखियाँ अति चारु चली जल च्वै ॥

यह शृंगार का पूर्ण उदाहरण नही है । श्रम, औत्सुक्य आदि संचारी राम के हृदय मे अनुभव है। इसमे भावशबलता देखी जा सकती है।

राम की आँख मे आँसू भी समा सकते है और वह भी इतने से प्रश्न पर, इसको कौन जानता था ? राम धीरे धीरे उस स्थान पर पहुँच गए।

जहाँ उनकी पर्णशाला बनी और प्रिया को प्रेमपीयूष का दान मिला किंतु वहाँ तक पहुँचने मे कितने पानी की आवश्यकता पड़ी और राम की आँख से कितना पानी गिरा इसका भी कुछ ठिकाना है। इस संयोग की वेदना भी कैसी दिव्य है। संयोग मे राम और सीता की जब यह दशा है तब वियोग मे कैसी होगी, इसे कोई भी समझ सकता है। परतु इन्ही तुलसी के सामने दो जोड़ियाँ ऐसी हैं जिनकी दशा निराली है। जहाँ कभी खटपट नही होती। वहाँ सदा खटपट ही बनी रहती है। वाली तारा की सुनता नही, तो मंदोदरी को रावण मानता नही दशरथ भी कैकयी की बात मानना नही चाहते, पर मरते हैं उसकी बात मानकर ही। राम भी सीता को साथ नही ले चलना चाहते पर चलते है उन्हें साथ लेकर ही बस, इन दपतियों में विरोध एक ही बार हुआ और ऐसा हुआ कि सब की बन पडी और उनमें कभी भी मेल नही हुआ पर इससे भी सबका लाभ ही हुआ। पर यहाँ देखना है कि तुलसी किस प्रकार शृंगार को दिव्य और रमणीय बनाते हैं। साथ ही उसे सदा लौकिक ही रहने देते हैं। यहाँ अच्छा होगा कि राम और सीता के वियोग को दिखलाने के पूर्व एक झाँकी रावण और मंदोदरी की भी ले ली जाय। जब मंदोदरी रावण को समझाती है तब मंदोदरी के प्रति रावण कैसा प्रेम दिखलाता है और भीतर ही भीतर कैसा विरस हो जाता है। दंपति रति की दशा कुछ और ही है। यहाँ प्रिया की भरमार है पर हृदय का प्रसार नही। विनोद की वार्ता है पर विलास का हुलास नही। तुलसी ने राम और सीता के प्रेम और विनोद को किस प्रकार लिया है यह तो आपने देख ही लिया।

मनुष्य के जीवन की सबसे प्रमुख भावना रति या शृगार है। इसी कारण रति भाव से उत्पन्न रस शृगार को 'रसराज' कहा गया है। कुछ विद्वानों के अनुसार मर्यादावादी होने के कारण तुलसी की रचनाओ में शृंगार रस का पूर्ण परिपाक नही हो पाया है। पर उनकी यह धारणा निर्मूल है। यद्यपि उनमें नायिकाभेदवाले कवियों का जैसा मर्यादा उल्लघन नही पाया जाता पर सीता और राम के जिस परम पुनीत और गंभीर परिणाय की झाँकियाँ तुलसी के काव्य मे मिलती है उसमे मर्यादा का पूर्ण पालन करते हुए भी रंजनशक्ति किसी भी प्रकार से कम नही है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

जल को गए लक्खन हैं लरिका,
परिखौ, पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े
पोंछि पसेउ बयारि करौं,
अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े ।
तुलसी रघुवीर प्रिया स्रम जानि कै,
बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े ।
जानकी नाह को नेह लख्यौ,
पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े ॥

इसमें राम आलंबन, सीता आश्रय, राम का थका हुआ रूप तथा जो देर तक काँटे निकालते रहे, यह उद्दीपन है। रोमांच होना, नेत्रों में आँसू भर जाना आदि अनुभाव हैं और संचारी मोह है। इसका स्थायी भाव रति है। इस प्रकार यह शृंगार का मर्यादित रूप में बड़ा ही सुंदर उदाहरण है।

प्यार दुलार में पली सीता अयोध्या से कुछ दूर पहुँचते ही थक जाती हैं। इसी समय लक्ष्मण जल लेने को जाते हैं। लक्ष्मण की राह देखने के बहाने उपर्युक्त उद्धरण मे सीता वृक्ष की छाया में विश्राम करने को पति से कहती हैं। प्रिया के हृदय में विराजनेवाले राम सीता के हृदय में प्रवेशकर उनके मन की बात जान जाते हैं और बड़ी देर तक इसी मिस बैठे पैर के काँटे निकालते रहते हैं। सीता समझ जाती हैं कि काँटा निकालना तो बहानामात्र है। वास्तव में इसी बहाने राम उन्हें विश्राम का अवसर देना चाहते हैं। पति का प्रेम पहचानकर प्रेम के आवेग में सीता का शरीर पुलकित हो जाता है। नेत्रों में जल भर आता है। यह गंभीर स्नेह का भाव है जो शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। यहाँ संयोग का पूर्ण चित्रण होते हुए भी कहीं अश्लीलता का लेश नहीं है। यही तुलसी की अपनी विशेषता है।

नायक तथा नायिका के प्रणय का सूत्रपात वाटिका-विहार-प्रकरण में होता है। मानस में इसका सूत्रपात पुष्पवाटिका से होता है। मानस मे नायक के गुणश्रवण पर नायिका के चित्त मे दर्शन की लालसा उत्पन्न होती है। इस लालसा को कवि ने आकुलता द्वारा स्पष्ट कर दिया है।

तासु वचन अति सियहि सोहाने।
दरस लागि लोचन अकुलाने ॥

निरे औत्सुक्य से कदाचित् यह भिन्न कक्षा का भाव है। इसके पीछे स्वभावतः कुछ पूर्वानुराग की स्थिति छिपी है।

इससे किंचित् कोमल उत्सुकता नायक में भी नायिका के बजनेवाले आभूषणों से उत्पन्न की जाती है। यद्यपि भारतीय काव्यों का नायक धीर हुआ करता है। कदाचित् इसी लिये आकुलता का समावेश इस संबंध में नहीं किया जाता है।

'कंकन किंकिन नुपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
मानहु मदन दुंदुभि दीन्हीं।
मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही।'

इस उत्सुकता में रति का भाव अप्रस्तुत में लाई गई ध्वनि द्वारा कितनी विचित्रता के साथ उपस्थित किया गया है, यह ध्यान देने योग्य है।

इस प्रकार की जड़ता का भाव इस कल्पना के अनंतर ही राम में सीता के दर्शन द्वारा उपस्थित होता है—

भए विलोचन चारु अचंचल।
मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल।

सीता में भी इसी जड़ता का भाव राम के प्रथम दर्शन के समय उपस्थित किया जाता है—

थके नयन रघुपति छवि देखी।
पलकन्हिहूँ परिहरी निमेषी।

और तदनंतर—

अधिक सनेह देह भै भोरी।
सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।

के द्वारा इस जडता के मूल में रति की व्यापकता का निर्देश किया जाता है। भावों की इस स्थिति के अनंतर नायिका में अवहित्था का संचार दिखलाया जाता है—

देखन मिस मृग विहँग तरु, फिरइ वहोरि वहोरि।
देखि देखि रघुवीर छवि, वाढ़ी प्रीति न थोरि॥

इन रतिजनित भावों और मनोवेगो मे व्याप्त अधीरता का उत्तरोत्तर विकास कवि ने कुशलता से दिखलाया है। परीक्षा मे नायक की असफलता की शंका और परिणामस्वरूप इष्ट की प्राप्ति मे असंभावना की आशंका के कारण नायिका मे चपलता के लक्षण दिखलाई देते हैं—

तव रामहि विलोकि वैदेही।
सभय हृदय विनवति जेहि तेही।

उनकी आकुलता भी स्पष्ट है—

मन ही मन मनाव अकुलानी।
होहु प्रसन्न महेस भवानी।

नायक की सौदर्यानुभूति से नायिका पिता पर खीजती है। उनकी यह अधीरता दर्शनीय है—

नीके निरखि नयन भरि सोभा।
पितु पन समुझि वहुरि मन छोभा।

× × ×

विधि केहि भाँति धरौ उर धीरा।
सिरिस सुमन कन वेधिय हीरा।

यह शृंगार के पूर्व राग की स्थिति है। नायिका की यह अधीरता धीरे धीरे उसको इतना व्यथित कर देती है कि यदि समाज का संकोच न होता तो वह जोर जोर से रोदन करने लगती। किंतु दूसरे ही क्षण उन्हें अपनी इस आकुलता पर लज्जा आती है और वह सँभल जाती हैं किंतु फिर भी रतिजनित उनकी यह आकुलता उनका पीछा नही छोडती, क्योकि नायक जब उन्हे देखता है तो वह उन्हें मानसिक स्थिति मे पाता है। इस स्थिति का अंत धनुर्भंग के द्वारा होता है और तब नायिका सुख की स्थिति को प्राप्त होती है। जयमाल पहनाते समय फिर उसकी जड़ता की स्थिति है।

जाइ समीप रामछवि देखी।
रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी।

दांपत्य प्रेम का दृश्य भी गोस्वामीजी ने बड़ा सुंदर दिखलाया है। पर बड़ी मर्यादा के साथ। नायिका भेद वाले कवियों का सा, कृष्ण की रासलीला के रसिको का सा लोकमर्यादा का उल्लघन उसमे कही नही है। सीता राम के परम पुनीत प्रणय की जो प्रतिष्ठा उन्होने मिथिला मे की उसकी परिपक्वता जीवन की भिन्न भिन्न दशाओ के बीच पति-पत्नी के संबंध की रमणीयता संघटित करती दृष्टिगोचर होती है। अभिषेक के बजाय राम को वन जाने की आज्ञा मिलती है।

आनंदोत्सव का सारा दृश्य करुण रस में परिवर्तित हो जाता है। राम वन जाने को तैयार है और वन के क्लेश बतलाते हुए सीता को घर पर रहने का आदेश देते है। इसपर सीता कहती है—

वन दुख नाथ कहे बहुतेरे।
भय विषाद परिताप घनेरे।

प्रभु वियोग लवलेस समाना।
सब मिलि होहिं न कृपानिधाना।

बार बार मृदुमूरति जोही।
लागिहि तात बयार न मोही॥

दुःख की परिस्थिति में सुख की इस कल्पना के भीतर हम जीवनयात्रा में श्रांत पथिक के हेतु प्रेम की शीतल सुखद छाया देखते हैं। यह प्रेम कर्म क्षेत्र से विरत नही करता अपितु उसमे विखरे हुए काँटो पर फूल विछाता है—'राम जानकी को नंगे पाँव चलते देख ग्रामवासी विकल हो रहे है। जंगल में मंगल हो रहा है सीता को तो सहस्रों अयोध्या का सुख यही मिल रहा था। अयोध्या से अधिक सुख का रहस्य क्या है ? प्रिय के साथ सहयोग के अधिक अवसर। अयोध्या में सहयोग और सेवा के इतने अधिक अवसर कहाँ मिल सकते थे ?

सीताजी द्वारा शृंगार की संचारी व्रीड़ा इस स्थल पर कितनी सुंदर वन पड़ी है जव वन मार्ग में ग्रामीण स्त्रियाँ राम की ओर लक्ष्य करके सीता से पूछती हैं कि यह तुम्हारे कौन है ? तव सीता—

तिन्हहि विलोकि विलोकति धरनी।
दुहुँ सँकोच वरनत वर वरनी।

'विलोकति धरनी' में कितनी स्वाभाविक मुद्रा है। 'दुहुँ सँकोच' में कवि ने सीता के हृदय की कोमलता और उनकी अभिमानशून्यता की वड़ी ही मधुर व्यंजना की है, क्योकि सीता प्रत्यक्ष में यह कहें कि यह मेरे पति है लज्जा की वात है; संकोच है, दूसरे यदि वे इन भोली भाली ग्रामीण वनिताओं को उत्तर नही देती है तो भी वे उन्हें अभिमानी समझेंगी। इससे भी सीता को सकोच हो रहा है। इससे सीता की जो शृंगार संवंधी चेष्टाएँ है उनका विवेचन भी गोस्वामीजी ने वड़ा ललित किया है। यह विवेचन वड़ा ही समयोपयुक्त है।

वहुरि वदन विधु अचल ढाँकी।
पिय तन चितइ भौह करि वाँकी।
खजन मंजु तिरीछे नयननि।
निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥

यहाँ गोस्वामीजी ने सीताजी द्वारा पवित्र रति की कैसी मधुर

व्यंजना कराई है। कुलवधू की इस व्यंजना में जो गौरव और माधुर्य है वह उद्धत प्रेमप्रलाप मे कहाँ ?

शृंगार रस का संवंध प्रकृति के बाह्य और अंत सौदर्य दोनों से है तुलसी काम, क्रोध आदि मनोविकारो को मनुष्य का शत्रु मानते है और उनको हमेशा त्याज्य समझते है। इससे काव्योत्तेजक शृंगार उनकी कविता में कहीं भी नही आने पाया, पर ससार के सहज सौदर्य की उन्होने कभी भी उपेक्षा नही की। पतिपत्नी के प्रेमसंभाषण, अनुरागप्रदर्शन को वे गृहस्थ जीवन का एक अनिवार्य अंग समझते थे। इसी से उन्होने राम और सीता को पतिपत्नी के ही रूप में देखा है। इसी भाव से प्रेरित होकर वे राम के एक दिन की वात को जो वहुत छोटी—सी है, पर प्रेमी की दृष्टि में बड़ी ही महत्वपूर्ण है, इस प्रकार कहते हैं—

एक वार चुनि कुसुम सुहाए।
निज कर भूषन राम वनाए।
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर।
वैठे फटिक सिला अति सुंदर॥

राम और सीता का प्रेम प्रारंभ न तो जायसी के समान रत्नसेन की कठिन यात्रा के रूप में होता है और न राधा और कृष्ण के मिलन के समान। न तो रत्नसेन के समान राम सीता के दर्शन करके मूर्च्छित ही होते है और न सीता राम से मिलने के हेतु उन्हें राधा के समान सर्प का विष उतारनेवाला वताकर ही साँप काटे का वहाना करती है। यहाँ तो भारतीय मर्यादा की परंपरा के अनुसार स्वयंवर होता है और उसमे स्वयंवर की शर्त को पूरा करके राम सीता का पाणिग्रहण करते है। कवि कल्पना द्वारा वाटिका मे उनका पूर्व-मिलन कराके रसोद्रेक मे सहायक होता है।

शृंगार के दूसरे पक्ष—विप्रलंभ शृंगार का चित्रण करते समय भी गोस्वामीजी ने सदैव इसी मर्यादा को ध्यान में रखा है। कविसम्राट् ने वन मे राम और सीता के परस्पर पृथक् होने पर दोनों के ही विरहभाव की अभिव्यंजना की है। किंतु उनके चरित्र की मर्यादा की रक्षा करते हुए उन्होंने उन्हें प्रलापगत प्रेमियों के रूप में प्रस्तुत नही किया।

नरलीला करके कौतुकी भगवान् राम अन्य स्थलों मे विचरण करते करते प्रवर्पण गिरि पर जा रमे। जलदागम काल था। स्निग्ध श्यामल वलाहको से

व्योममंडल व्याप्त था। सुख प्रदान करनेवाली शीतल, मंद, सुगंधित वायु झूम झूमकर प्रवाहित हो रही थी। प्रियसमागम से विह्वल मयूर मत्त होकर नृत्य कर रहे थे। शैल सरिता का अर्जुन कदंब कुसमो से मिश्रित पर्वतीय धातु-रंजित नव जल त्वरित गति से कल कल निनाद करता हुआ बह रह था। घनदर्शोनोत्सुक प्रमुदित वकपंक्ति रुचिर अंबर की पुंडरीक माला सी पवन में उड़ रही थी। अभिनव जलधारा से आच्छादित मरकत मणि और नील शाद्वल पर टहलती हुई वीरवहूटियाँ धरा रमणी को लाल बूटी द्वारा सुआ पंखी अंबर पहना रही थी। भ्रमर गुंजार कर रहे थे। पर विरही राम को जान पड़ा कि यह कराल मेघ इंद्र धनु देकर वियोगियो पर वारि रूपी वाणधारा बरसा रहे हैं। उनकी स्मृति कौंधी, कल्पना कादंबिनी उमड़ पड़ी। विरहविष की वर्षा होने लगी, फिर भी राम का सीता के विरह मे वियोग श्लील श्रृंगार का उत्कृष्ट उदारहण है।

माया की सीता की कामना और लक्ष्मण की विवेकहीनता के कारण राम से सीता का वियोग हो गया और राम को अपनी गृहस्थी ऐसी दिखलाई दी—

आश्रम निरखि भूले, द्रुम न फले फूले,
अलि खग मृग मानों कबहुँ न हे।
मुनि न मुनिबधूटी, उजरी परन कुटी,
पचवटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे।
उठी न सलिल लिए प्रेम प्रमुदित हिए,
प्रिया, न पुलकि प्रिय वचन कहे।
पल्लव-साल न हेरी, प्रानवल्लभा न टेरी,
विरह विथकि लखि लषन गहे।
देखे रघुपति-गति विवुध बिफल अति,
तुलसी गहन विनु दहन दहे।
अनुज दियो भरोसो, तौली है सोच खरो सो।
सिय समाचार ,प्रभु जौ लौ न लहै।

'उठी न सलिल लिए' में जो राम का पारिवारिक जीवन सामने आता है

वह मानस में राजभवन मे भी 'निज कर गृह परिचर्या करई के रूप में व्यक्त होता है और तुलसी के आदर्श को भी प्रस्तुत करता है। इस वियोग का परिणाम क्या हुआ, इसको कौन नही जानता। किंतु इसके उपरात जो महा-वियोग अपने आप मोल लिया था, उसको तुलसी सबको सर्वत्र नही बतलाना चाहते और मानस में तो वह उसे सर्वथा ही पी जाते है। वे सीता राम के आनंद में किसी भी प्रकार का विघ्न नही पड़ने देना चाहते। उनके रामराज्य मे किसी भी प्रकार की दुर्भावना नही है।

गोस्वामीजी करुणा के कवि हैं, वियोग के नही। वियोग उनको भाता ही नही। जब जहाँ भी वियोग का अवसर आता है तो कवि सीधे से कह देते हैं कि कवि के हृदय में हुलास ही नही होता। फिर वह उसका वर्णन कैसे करे? तुलसी की समझ में वियोग का वर्णन करना कठोरता का काम है सहृदयता का नहीं। कहते हैं—

बरनत रघुबर भरत वियोगू। सुनि कठोर कवि जानहिं लोगू॥

जब राम और भरत के वियोग के प्रति कवि की यह धारणा है तब सीता और राम के वियोगवर्णन में उनकी वृत्ति कैसे रम सकती है? तब भी कवि-कुल-कमल-दिवाकर को ज्ञात है कि यह असली सीता नही माया की सीता है जिनका राम को वियोग है। कवि का इसी से तो यहाँ तक कहना है—

प्रभु की दशा सो समौ कहिबे को कवि उर आह न आई॥

इसका यह अर्थ नही कि तुलसी ने वियोग दशा का वर्णन ही नही किया। वियोग मे जो दशा राम की होती है उसका विवेचन पहले ही किया जा चुका है। यहाँ कुछ सीता की भी अवस्था को देख लेना चाहिए। मानस में कई अवसरों पर सीता के वियोग को अंकित किया गया है। हरण के अवसर पर हनुमान् के आगमन के समय और रावण की वाटिका मे। हमारी दृष्टि मे इन तीनों प्रसंगो में सबसे अच्छा प्रसंग है रावण का वध ही। इसी अवसर पर सीता के हृदय की सच्ची वेदना व्यक्त हुई है। वे कहती है—

होइहि कहा कहसि किन माता।
केहि विधि मरिहि विस्व दुखदाता॥

रघुपति सर सिर कटेहुँ न मरई।
विधि विपरीत चरित सब करई॥

मोर अभाग्य जिआवत ओही।
जेहि हौं हरिपद कमल बिछोही॥

जेहि कृत कपट कनक मृग झूठा।
अजहुँ सो दव मोहि पर रूठा॥

जेहि विधि मोहि दुख दुसह सहाए।
लछिमन कहँ कटु बचन कहाए॥

रघुपति विरह सविष सरभारी।
तकि तकि मार बार बहु मारी॥

चिंता, क्षोभ आदि भावों की जैसी व्यंजना इन थोड़ी सी पंक्तियों में हुई है वैसी कहीं भी नहीं। गीतावली में तुलसी ने राम के वियोग को कुछ और ही रूप में लिया है। हनुमान् राम से कहते हैं—

तुम्हरे विरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि, जानौं कछु पै सकौं कहि हौं न।
लोचन नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरंतर लोचन कौन।
'हा' धुनि खगी लाज पिंजरी महँ राखिहि पे बड़े बधिक हठि मौन।
जेहि वाटिका बसति तहँ खग मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन।
स्वास समीर भेंट भइ भोरेहुँ तेहि मग पगु न धर्‍यो तिहूँ पौन।
तुलसिदास प्रभु दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस दूर कीजै दुख हौ तुम्ह आरति आरति दौन॥

गोस्वामी जी की मान्यता यही है कि जी की वेदना जी से ही जानी जा सकती है, जीभ से वह बखानी नहीं जा सकती। उन्होंने सूत्ररूप से प्रेम के मर्म को इस चौपाई में यथातथ्य रख दिया है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा ।
जानत प्रिया एक मन मोरा ।

और इस पद में सविस्तर वर्णन भी किया है—

कपि के चलत सिय को मनु गहवरि आयो ।
पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयनन्हि छायो ॥
कहन चह्यो संदेस, नहिं कह्यो, पिय के जिय की
जानि हृदय दुसह दुख दुरायो ॥

अतः गोस्वामीजी ने शृंगार के दोनों पक्षों को पूर्ण भावुकता के साथ निभाया है । कहीं भी उनके स्पष्टीकरण मे अस्वाभाविकता नही आ पाई । तुलसी के विप्रलंभ शृंगार मे जायसी जैसी वीभत्सता भी नही है । यहाँ न तो रक्त के आँसू ही गिरते है और न हाड़ ही रूख वनते है । वरन् मर्यादित वियोग है । सीता राम के वनगमन की बात सुनती है तो उतनी व्याकुल नही होती जितनी राम का उपदेश सुनकर होती है—

सीतल सिख दाहक भइ कैसे ।
चकइहि सरद चंद निसि जैसे ।

हमारे कवि कविसम्राट् ही तो ठहरे, पुरानी उपमाओ की अवहेलना करते हुए नई उपमा का निर्माण कर लिया ।

जौ पटतरिअ तीय सम सीया ।
जग असि जुवति कहाँ कमनीया ॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी ।
रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥
विष बारुनी बंधु प्रिय जेही ।
कहिअ रमा सम किमि बैदेही ॥

जौ छवि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू।
मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि विधि उपजै लच्छि जव, सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल॥

इतनी क्लिष्ट कल्पना करके लक्ष्मी भी निकली तो भी सीता से उसकी समता करने में कविसम्राट् संकोच ही कर रहे हैं। कवि ने उपमाओं को जूठी समझकर इस प्रकार सीता का सौंदर्य वर्णन रखा।

सब उपमा कवि रहे जुठारी।
केहि पटतरौं विदेह कुमारी॥

गोस्वामीजी के काव्य मे सोने में सुगंध तो यों है जिसका कोई भी सच्चा समालोचक कहे विना नही रुक सकता कि हिंदी के अन्य कवियों की भाँति गोस्वामीजी ने अश्लील काव्यरचना से अपने ग्रंथ को दूषित नहीं किया। कहीं कही वड़ी मार्मिकता से शृंगार रस का वर्णन तो किया है पर ऐसे स्थलों के साहित्य को ऐसी चातुर्यमयी भाषा में लपेटा है कि वहाँ साक्षात् शृगार रस की गध तक नहीं आती; अव आप किसी ऐसे ग्रंथ को उठाकर पढ़ जाइए जिसमे किसी नायिका के नखशिख का वर्णन लिखा हो, देखिए आपके हृदय में किस भाव का उद्रेक होता है। उसके वाद ही मानस की निम्नलिखित चौपाइयों को पढ़िए—

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना।
मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥
कुंदकली दाड़िम दामिनी।
कमल सरद ससि अहिभामिनी॥

वरुन पास मनोज धनु हंसा।
गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥
श्री फल कनक कदलि हरषाहिं।
नेकु नसंक सकुच मन माहीं ॥
सुनु जानकी तोहिं बिनु आजू।
हरषे सकल पाई जनु राजू ॥

अन्य कवियों के पद्यमय ग्रंथों पर एक बार दृष्टिपात कीजिए तो आप उनमें कदापि भी इस भाँति का गुण नहीं पा सकेंगे ।

यह कदापि कहने योग्य नही कि शृंगार रस काव्य से हटा दिया जाए। शृंगार रस कविता का नेत्र है। उसके बिना कविताकामिनी कानी, कुत्सिता और कुरूपा हो जाएगी । उसे साहित्य मे उचित मात्रा मे रखने की आवश्यकता है और उसमे मर्यादा की भी अपेक्षा है। गोस्वामीजी तो अश्लील साहित्य ही हानिकारक समझते थे। तुलसी इस अंश मे कितने सतर्क थे, यह तो अवर्णनीय है । जहाँ वे सीता के वर्णन मे लिखते है—

सोह नवल तनु सुदर सारी ॥

वही पर 'जगत जननि अतुलित छवि भारी' पूरक पद देकर ऐसी निपुणता से काम लिया है कि पापी से पापी मनुष्य भी इस पूरक पद को पढ़कर निर्मल हो उठता है। इसी प्रकार शिवपार्वती के सहवास का वर्णन करते हुए कालिदास ने कुमार संभव मे क्या नही लिख दिया। अंत में यहाँ तक कि—

सम दिवस निशीथं सङ्गिनस्तत्र शंभोः
शतमगमत्स्तूनां सार्धमेका निशेव ॥
न स सुरत सुखेभ्यच्छिन्नतृष्णो वभूव।
ज्वलन इव समुद्रान्तर्गतस्तज्जलौघैः ॥

पाठक देखेंगे कि जहाँ कालिदास की उपर्युक्त रचना में लज्जा भी लज्जित

हो नतग्रीव हो जाती है, वहाँ कविसम्राट् गोस्वामीजी दो पंक्तियों में सारी बातों का समावेशकर कालिदास की कविता को फूंक से उड़ा देते हैं ।

जगत मातु पितु संभुभवानी ।
तेहि सिंगार न कहौं बखानी ॥
हर गिरजा विहार नित नयऊ ।
यहि विधि विपुल काल चलि गयऊ ॥

माता पिता के शृंगार और रतिवर्णन में कितना अनौचित्य है। इसका विचार प्रत्येक मर्यादाप्रिय मनुष्य को होना ही चाहिए। एक कवि ने नायिका का उदाहरण देते हुए लिखा है।

जाहिर जागत सी जमुना जब बूड़े बहे उ महे वह वेनी ।
त्यों पद्माकर हीरके हारन गंग तरंगन की सुखदेनी ।
पायन के रंग सों रँगि जाति सी भाँतिहि भाँति सरस्वती सेनी ।
पैरे जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल मे होत त्रिवेनी ।

इसमें कोई संदेह नही कि पद्माकरजी ने इस सवैया मे शब्द और अलंकारों का समुचित समावेश करके नायिका के शरीर में त्रिवेणी की कल्पना की है पर उन्हें भी हीरा के हार और पांव में मेंहदी और महावर के रंग की सहायता लेनी पड़ी है । ताल तलैया की शरण जानी पड़ी । तब त्रिवेणी बनी। किंतु गोस्वामीजी कैसे सरल ढंग से अपने चरित्रनायक के चरणों मे त्रिवेणी का प्रवाह प्रवाहित करते है—

रामचरण अभिराम काम प्रद तीरथराज विराजै ।
शंकर हृदय भक्ति भूतल पर प्रेम अछयवट भ्राजै ।
स्याम वरन पद पीठ अरुन तल लसति विसद नखश्रेनी ।
जनु रवि सुता सारदा सुरसरि मिलि चलि ललितत्रिवेनी ।

पाठक देखेंगे कि तुलसी की इस रचना में स्वाभाविकता कूट कूट कर भरी है। अतः गोस्वामी तुलसीदास शृंगार रस के भी अद्वितीय सतर्क और सिद्ध-हस्त-कवि सिद्ध होते है।

वीर रस

गोस्वामीजी ने वीर रस का वर्णन करते समय राम के वीरवेष का वर्णन करने में सर्वाधिक रुचि दिखलाई है। गोस्वामीजी के काव्य मे वीर रस का वर्णन अनेक स्थानों पर हुआ है।

क्रोध वीर रस का सहायक भाव है। मानस में क्रोध का सबसे अच्छा और प्रखर प्रसंग परशुराम के संवाद में ही हमारे सामने आया है। तुलसी ने परशु-राम के जिस वीर रूप का चित्रण किया है वह विचित्र है। इसमे राम और परशुराम के भावों का उतार चढाव देखते ही बनता है। वीर के संचारी भाव उत्साह की मानस में कमी नही। नायक का तो कहना ही क्या प्रतिनायक भी उससे कूट कूट कर भरा है। हताश होना तो वह जानता ही नहीं। यहाँ तक कि मरते समय तक उसकी वाणी यही गरजती है कि राम कहाँ है, मैं उन्हें लल-कार कर मारूँगा। वीरता के सभी रूपों को दिखलाने से कोई लाभ नहीं। रघुवीर की सेना का पयान जैसा रहा, उसका आतंक ब्रह्मांड में छा गया। जब संधि की बात निष्फल हो गई, ढोल और जुझाऊ निशान बजने लगे उस समय हनुमान की वीरता दर्शनीय है—

हाथिन सो हाथी मारे, घोड़े घोड़े सों सँहारे।
रथिन सौ रथ बिदरनि बलवान की।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहे,
हहरानी फौजे भहरानी जातुधान की।
बार बार सेवक सराहना करत राम,
तुलसी सराहै रीति साहेब सुजान की।
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ, लखन लरनि हनुमान की॥

राम, लक्ष्मण और हनुमान् के संहार ने मे क्या भेद है यह भी इस घनाक्षरी से व्यक्त हो जाता है।

अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से,
हने भट लखन लखन जातुधान के।
मारि कै पछारे कै उपारि भुजदंड चंड,
खंड खंड डारे ते बिदारे हनुमान के।
कूदत कबंध के कंदब बब सी करत,
धावत दिखावत है लाघौं राघौ वान के।
तुलसी महेस, बिधि, लोकपाल, देवगन।
देखत विमान चढ़े कौतुक मसान के॥

तुलसी ने जो भी वर्णन किसी की वीरता मे लिखा है बहुत सोच समझकर लिखा है। उनके रणवर्णन की सजीवता को देखकर तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि उन्होने जो भी लिखा है वह आँखो से देखकर लिखा है। उसका अध्ययन करने से आप ही आप अवगत हो जाता है कि नर, वानर, भालू और राक्षस की युद्धकलाओं मे क्या भेद है और उसका उत्साह कब कैसा रूप पकड़ता और रंग बदलता है। तुलसी ने गीतावली मे हनुमान् के जिस उत्साह को दिखलाया है वह और भी साहस और संकल्प से पूर्ण है। समय भी कैसी विपत्ति का है। लक्ष्मण को शक्ति लगी है। सूरज निकला नहीं कि उनका अंत हुआ। उपाय है पर सहज नही। हनुमान् की घोषणा है—

जौ हौं अब अनुसासन पावौं।
तौ चंद्रमहि निचोरि चैल ज्यौं आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृतकुंड महि लावौं।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
बिबुध बैद बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुग कहावौं।
पटकौं मीच नीच मूषक ज्यों सबहि को पापु बहावौं॥

तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु बिलंब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं॥

इसमे हनुमान् जो चंद्रमा को निचोड देने, पाताल से अमृतकुंड लाने, सूर्य को छिपा देने, देवताओ के वैद्य को लाने और मृत्यु का अत कर देने की वात कहते हैं वह उनके वीर रूप के परिचायक है। अतः उक्त पद वीर रस का सुदर उदाहरण है।

वीर रस के सहकारी भाव अमर्ष को देखिए। जब भरी सभा मे जनक ने कहा—

वीर विहीन मही मैं जानी।

तव लक्ष्मण बिगड पड़े। लक्ष्मण अपने को किसी भी महा वीर से कम नही समझते थे। ऐसा कहकर जनक ने उनकी वीरता को चुनौती दी। अतः उन्हे अपने मान की रक्षा के हेतु उत्तर देना पड़ा। लक्ष्मण की उक्ति है—

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई।
तेहि समाज अस कहइ न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी।
विद्यमान रघुकुल मनि जानी॥
सुनहु भानुकुल पंकज भानू।
कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौ तुम्हारि अनुसासन पावौं।
कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं।

यहाँ गर्व या मान की रक्षा के हेतु क्रोध हो रहा है। अमर्ष में मान का होना अनिवार्य है।

वीर रस में ऐसी स्थिति आ सकती है जब व्रीडा भी संचारी रूप में दृष्टि-गोचर हो। दानवीर के वर्णन मे दान का उत्कर्ष दिखाने के हेतु भाव का

उपयोग काव्यों में देखा जाता है। तुलसी ने राम के दान का वर्णन इस प्रकार किया है—

जो संपति सिव रावनहिं दीन्ह दिएँ दसमाथ।
सो संपदा विभीषणहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥

लंका जैसे वृहत राज्य के दान करने में भी राम का सकुचना उनकी व्रीड़ा को प्रकट करता है पर उनकी उदारता की वृद्धि करता भी है। ग्लानि, निर्वेद, विषाद, दैन्यादि भाव भी इसी प्रकार सहृदय के हेतु उत्साह के संचारी का काम देते हैं।

वीर रस में मोह और जड़ता की भी स्थिति देखी जा सकती है। राम-रावण युद्ध में रावण ने एक बार माया से अपनी सेना में अनेक राम और लक्ष्मण बना दिए। जिन्हें देखकर वानरी सेना घबरा गई। स्वयं लक्ष्मण भी इसका रहस्य न समझ सके। यह जड़ता की स्थिति है। लक्ष्मण भी किंकर्त्तव्य विमूढ़ से दिखलाई पड़ रहे थे। किंतु लक्ष्मण का उत्साह कम नहीं हुआ। वीरता का चरित्र इसी संवाद से प्रकट होता है। इस संवाद में गर्वभरी ललकार का चमत्कार खूब रहता है। जैसे लक्ष्मण का यह कहना कि—

रे खल का मारेसि कपि भालू।
मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥

और इसपर रावण का यह जवाब देना—

खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती।
आज निपाति जुड़ावउँ छाती॥

कितना उत्साहपूर्ण है। लंकाकांड तो वीर रस का आगार है। जितनी इच्छा हो वीर रस का आनंद लीजिए। अमर्ष एक ऐसा सद्भाव है कि जो समाज से केवल अधर्म की रक्षा ही नहीं करता वरन् उसको धर्माचरण की ओर प्रवृत्त करने में सहायक होता है। इसी प्रकार भरतागमन के समाचार पर निषादराज के व्याख्यान में इसी भाव की व्यंजना हुई है। उसमें ऐसा शौर्य

प्रकट हुआ है कि उसकी विशदता के विषय में अत्युक्ति करना कठिन है। उत्साह का जा भाव वर्षा बीत जाने पर किष्किंधा में राम को उत्तेजित करता है। उसमें सन्निहित पुरुषार्थ की भावना दर्शनीय है—

एक बार कैसेहु सुधि पावौं।
कालहु जीति निमिष महँ लावौं।
कतहुँ रहौ जो जीवित होई।
तात जतन करि आनहुँ सोई॥

पूरा अंगद-रावण-संवाद वीर रस से भरा हुआ है। भाषण की शिष्टता के प्रश्न को अलग छोड़ देने पर वह आत्मदर्शन और आत्मप्रतिपादन का, जो वीरता की मूल प्रवृत्तियाँ है, सुंदर दृष्टात है।

युद्ध के दूसरे दिन रणक्षेत्र मे प्रवेश करते समय जिन शव्दो मे मेघनाद अपने शत्रु को संबोधित करता है वह वीरता के भंडार ही है और उनसे भी अधिक हैं रावण के निम्नलिखित क्रोधपूर्ण शब्द जिनके द्वारा वह अपने वीर पुत्र मेघनाद के वध के उपरांत युद्ध में प्रवेश करते समय राम को ललकारता है—

जीतेहु जे भट संजुग माही।
सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाही॥

× × ×

आजु करउँ खलु काल हवाले।
परेहु कठिन रावन के पाले॥

रावण की सभा में अंगद का पदारोपण कवितावली में उत्साह का अच्छा परिचय देता है। कवितावली के अंतर्गत हनुमान् का युद्ध भी वीरता के प्रदर्शन का एक उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करता है। लंकाकांड में उत्साह नामक भाव की व्यंजना उत्कृष्टता को पहुँची हुई है। इसमें युद्ध-दृश्यो का बड़ा ही उत्तम चित्रण हुआ है। वीर रस का वर्णनकौशल इन्होंने तीन शैलियों के भीतर दिखलाया है। प्रथम प्राचीन काल के चारणों की छप्पयवाली ओजस्विनी शैली के भीतर, द्वितीय इधर के फुटकरिए कवियों की दंडकवाली शैली के भीतर और तृतीय अपनी निज की

गीतिकावाली शैली मे। नीचे तीनों का क्रमशः एक एक उदाहरण दिया जाता है--

(१) कतहुँ विटप भूधर उपारि परसेन वरक्खत।
कतहुँ वाजि सौं वाजि, मर्दि गजराज करक्खत।
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर वज्जत।
विकट कटक विद्दरत वीर वारिद जिमि गज्जत॥
लंगूर लपेटत पटकि भट, जयति राम जय उच्चरत।
तुलसीस पवनंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत॥

(२) दवकि दवोरे एक, वारिधि में वोरे एक।
मगन मही मे एक गगन उड़ात है।
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक
चीरि फारि डारे, एक मीजि मारे लात हैं।
तुलसी लखत राम, रावन विवुध विधि
चक्रपानि, चंडीपति चंडिका सिहात हैं।
वड़े वड़े वानइत वीर वलवान वड़े,
जातुधान जूथप निपाते वातजात है॥

इसमे अनुभाव ही प्रधान है। इसमे आलंवन शत्रु है, संचारी क्रोध, चीर फाड डालना आदि अनुभाव और उत्साह स्थायी भाव है।

भए क्रुद्ध जुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद भय मारुत ग्रसे।
मंदोदरी उर कंप कपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

धनुर्भंग की प्रचंडता का वर्णन भी अत्यंत वीरोल्लास पूर्ण है। जनक के वचन पर उत्तेजित होकर लक्ष्मण जी कहते है वह भी वीरोल्लासपूर्ण है, जिसका विवेचन पीछे हो चुका है। धनुर्भंग की प्रचंडता देखिए--

डिगति उर्वि अति गुर्वि सर्व पब्बै समुद्र सर ।
ब्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिक्पाल चराचर ।
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकठ मुक्खभर ।
सुरविमान हिममान् भानु सघटित परस्पर ।।
चौके विरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिवधनु दल्यौ ।।

धनुर्भंग के इस वर्णन मे प्रदर्शित उत्साह का आलंबन राम का विकट कर्म है ।

वीर रस जाति का जीवन है । जिसे गोस्वामीजी ने अपने काव्य में इतनी सुंदर अभिव्यक्ति प्रदान की है । वीर रस के चार भेद हैं--

१. दानवीर, २. धर्मवीर,
३. युद्धवीर, और ४. दयावीर।

राम की दानवीरता

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दसमाथ ।
सोइ संपदा बिभीषनहिं सकुचि दीन्हि रघुनाथ ।।

युद्धवीरता

खरदूषण का सदेश सुनकर राम ने उत्तर दिया—
हम छत्री मृगया बन करही। तुम्ह से खलमृग खोजत फिरहीं ।।
जौं न होइ बलधर फिरि जाहू। समर विमुख मे हतउँ न काहू ।।

धर्मवीरता

अपनी धर्मवीरता का महान् उद्घोष करते हुए राम विभीषण के आगमन के समय कहते है--

कोटि विप्रवध लागहिं जाहू । आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ।।

दया वीरता

घायल जटायु को गोद मे रखकर राम आँखों में आँसू भरकर कहते है :?—

> जल भरि नयन कहहिं रघुराई।
> तात कर्म निज ते गति पाई।।

अतः तुलसी ने वीर रस के वर्णन में भी सच्ची सफलता प्राप्त की है और इस रस के स्थायी भाव उत्साह को भी सभी प्रकार से व्यापक बनाने की चेष्टा की है। उनका यह प्रयास भी परम प्रशसनीय है।

करुण रस

करुण रस का भी उद्रेक करनेवाले प्रसंग मानस मे बहुत से आए हैं। अतिशय दुख की अवस्था से मन में करुण रस का सचार होता है—राम-वन गमन का दृश्य कितना मर्मभेदी और हृदयद्रावक है।

रामचरित मे केवल पतिपत्नी का ही वियोग नही। उसमें एक प्रकार से सबका सभी से कुछ न कुछ वियोग है। राम के भावी वियोग की कल्पना से लक्ष्मण की जो दशा होती है उसको तो गोस्वामी जी ने थोडे मे ही टाल दिया है किंतु लक्ष्मण के आहत हो जाने पर राम के हृदय मे जो पीड़ा उठी है उसको कुछ दूर तक कविसम्राट् ने चलने दिया है। मानस मे राम की आकुलता दो अवसरों पर बोल पड़ी है जिसमे उनका प्राकृत रूप सर्वथा निखरकर हमारे सामने आ गया है। इनमे एक तो, सीताहरण के अवसर पर, जब वह पशु-पक्षियो से भी सीता का पता पूछते हैं। दूसरा, लक्ष्मण के शक्ति द्वारा आहत होने पर। राम का यह विलाप उनके भ्रातृस्नेह को व्यक्त करता—

> जौं जनतेउँ बन बधु बिछोहू।
> पितावचन मनतेउँ नहि ओहू।।

इसमें राम की मर्म व्यथा का ही उत्कर्ष है।

करुण रस के वर्णन में तुलसी को सच्ची सफलता मिली है। कौशिल्या के प्रसंग में वियोग की जैसी गहरी और व्यापक अनुभूति कौशिल्या की को हुई है दूसरे को नही। मानस मे उनकी वियोग दशा का चित्रण है, तो गीतावली मे उनके वियोगी हृदय का। उनके हृदय मे कैसा उन्माद छा गया है इसे देखना हो तो इस पद को पढ़ें—

जननी निरखति वान धनुहियाँ।
वार वार उर नैननि लावति प्रभू जू को ललित पनहियाँ॥
कबहुँ प्रथम ज्यो जाइ जगावति कहि प्रिय वचन सवारे।
उठहु तात बलि मातु वदन पर, अनुज सखा सव द्वारे॥
कवहुँ कहति यों वड़ी वार भाई जाहु भूप पहँ भैया।
वंधु वोलि जेइय जो भावै गई निछावरि मैया॥
कवहुँ समुझि वनगमन राम को रही चकि चित्र लिखी सी।
तुलसिदास वह समय कहै तैं लागति प्रीति सिखी सी॥

इसमें 'सिखी सी' की व्याख्या क्या करे। सचेत अवस्था मे उनकी मर्म व्यथा को जानना हो तो जान लें—

भाई री मोंहि कोउ न समुझावै।
राम गवन साँचो किधौ सपनो, मन परतीति न आवै॥
लगइ रहत मेरे नैननि जागे राम लषन अरु सीता।
तदपि न मिटत दाह या उर को विधि जो भए विपरीता॥
दुख न रहै रघुपतिहिं विलोकत, तनु न रहै विनु देखे।
करत न प्रान पयान सुनहु सखि अरुझि परी यहि लेखे॥
कोसल्या के विरह वचन सुनि रोइ उठी सव रानी।
तुलसिदास रघुवीर विरह की पीर न जात वखानी॥

सचमुच रघुवीर का विरह था ही ऐसा कि उसका वर्णन नही हो सकता, किंतु इसका पछतावा भी तो कौशिल्या को कम नही है कि वह पुत्र को वन

से वन में भेज कर पुनः अवध आ गई। अब तो उसके पास यही शेष रह गया है हाथ मलना—

हाथ मीजिवो हाथ रह्यो।
लगी न संग चित्रकूटहु तै ह्याँ कहा जात वह्यो॥
पति सुरपुर, सिय राम लपन वन, मुनि व्रत भरत गह्यो।
हौं रहि घर मसान पावक ज्यों मरिवोइ मृतक दह्यो।
मेरोइ हिय कठोर करिवे कहँ विधि कहुँ कुलिस लह्यो॥
तुलसी वन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यो।

गोस्वामीजी ने विरहवेदना को और भी व्यापक रूप देने के विचार से पक्षियों को लिया है। राम के वियोग मे उनके घोड़ों की जो दशा होती है उसको देखकर माता और भी द्रवित हो जाती हैं—

राघौ एकवार फिरि आवौ।
ए वर वाजि विलोकि आपने वहुरो वनहिं सिधावौ॥
जे पय प्याइ पोखि कर पंकज वार वार पुचकारे।
क्यो जीवहिं मेरे राम लाडिले, ते अव निपट विसारे॥
भरत सौगुनी सार करत है अति प्रिय जानि निहारे।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम मारे॥
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं वन कहियो मातु सँदेसो।
तुलसी मोहिं और सवहिन तें इन्ह को वड़ो अँदेसो॥

उधर तोते और मैना की यह दशा है कि उनमें भी इस व्यापक वियोग की चर्चा छिड़ती है पर एक कुहुक के साथ वह भी वही की वही रह जाती हैं—

सुकसों गहवर हिए कहै सारो।
वीर कीर सिय राम लषन विनु लागत जग अँधियारो॥
पापिनि, चेरि अयानि रानि, नृप हित अनहित न विचारो।
कुलगुरु सचिव साधु सोचतु विधि को न वसाइ उजारो॥

अवलोके न चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो।
सुने न वच करुणाकर के जब पुर परिवार सँभारो ।।
भैया भरत भावते के सँग वन सब लोग सिधारो।
हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो ।।
सुनि खग कहत अंब मौगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो।
गए ते प्रभुहि पहुचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो ।।
जीवन जग जानकी लखन को मरन महीप सँवारो।
तुलसी और प्रीति की चरचा करत कहा कछु चारो ।।

राम के वियोग से दुखी तो सभी हुए किंतु सबो ने उसे जैसे तैसे सहा भी। उनमें एक दशरथ ही नितांत असहाय मिलते है। इसी हेतु उनका मानसिक पश्चात्ताप दर्शनीय है—

मुएहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ।
नारि वस न विचारि कीन्हों काज, सोचत राउ ।।
तिलक को बोल्यो, दियो वन चौगुनो चित चाउ।
हृदय दाड़िम ज्यों न विदरयो समुझि सील सुभाउ ।।
सीय रघुबर लषन बिनु भय भभरि भगी न आउ।
मोहिं बूझि न परत याते कौन कठिन कुघाउ ।।
सुनि सुमंत कि आनि सुदर सुवन सहित जियाउ।
दास तुलसी नतरु मोको मरन अमिय पिआउ ।।

उपर्युक्त उदाहरणों में से माता कौशिल्या के 'मरिबोई मृतक दह्यो' और पिता दशरथ के 'मरन अमिय पियाउ' मे क्या नही रस है। वेदना की यह दो आँखें कभी भी बंद नही हो सकती।' ये तो अवध की समस्त स्थिति को स्पष्ट करने के हेतु सदैव खुली रहती है।

इसका अभिप्राय यह नही कि दशरथ के मरण के समय का शोक साधारण

था। नही, ऐसी बात नही। महाराज दशरथ की मृत्यु से जो शोक अवध मे उमड़ा वह इतना भीषण था जिसके विषय मे गोस्वामीजी ने स्वयं लिखा है—

घर मसान परिजन जनुभूता।
सुतहित मीत मनहुँ जमदूता॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाही।
सरित सरोवर देखि न जाही॥

\+ × +

महा विपति किमि जाइ बखानी॥

\+ + +

सुनि बिलाप दुखहुँ दुखु लागा।
धीरजहू कर धीरजु भागा॥

\+ + +

घर घर रुदनु करहिं पुरबासी।

इसमे राजा आलवन, उनकी मृत्यु उद्दीपन, विलाप करना, कैकेयी को गाली देना विषाद, स्मरण आदि संचारी से पुष्ट, शोक भाव की व्यंजना करता हुआ यह करुण रस का सुंदर उदाहरण है।

महाराज दशरथ के आँख मूँदने पर वैसा शोक नही उमड़ा जैसा कि राम के वन गमन के अवसर पर उमडा है। दशरथ का निधन ऐसे अवसर पर हुआ जब कि अवध में उनका कोई भी उत्तराधिकारी नही रह गया था। राम-लक्ष्मण वन को जा चुके थे और भरत, शत्रुघ्न अभी ननिहाल में ही पड़े थे। ऐसी स्थिति में सब को राज्य की चिंता हुई और सभी इस तर्क वितर्क में पड़ गए कि भरत आकर क्या करेंगे? उधर राम और इधर भरत की स्थिति ने स्नेहियों को अपने आप में समेट कर ऐसा जकड लिया कि दशरथ के हेतु किसी के हृदय उतना स्थान ही नही रहा जितना ऐसे अवसरो पर स्वभावतः रह सकता था। उधर दशरथ के सखा बूढे जटायु की स्थिति यह है कि उसको राम

की गोद में मरने में जो आनंद आता है वह जीवन में कभी नहीं मिला।' अतः उसके प्रति भी शोक का स्थान नहीं। अब रही विपक्ष की बात। विपक्ष में कई अवसरों पर शोक के प्रसंग आए हैं। पर कहीं भी गोस्वामीजी ने उसे विलाप करने से आगे नहीं बढ़ने दिया। इसका कारण एक तो गोस्वामीजी की प्रवृत्ति है, दूसरा है पात्र के प्रति लोगों की अवज्ञा। मेघनाद, कुंभकर्ण और रावण जैसे वीर योद्धाओं के निधन पर स्त्रियाँ रोती अवश्य हैं पर साथ ही उनके हृदय में यह भी भाव बना रहता है कि राम के विरोध का परिणाम यही होना था। रावण जैसे प्रतापी वीर के प्रति उनकी पत्नी मंदोदरी की जो भावना है वह उसके शोक को बहुत दूर तक फैलने नहीं देती और अंत में सबको समेट कर उसे रामभक्त बना देती है। वह कहती है--

राम विमुख अस हाल तुम्हारा।
रहा न कोउ कुल रोवनिहारा॥
तव बस बिधि प्रपंच सब नाथा।
सभय दिसिप नित नावहिं माथा॥
अब तव सिर भुज जंबुक खाहीं।
राम विमुख येह अनुचित नाहीं॥

तात्पर्य है कि मानस में जो वेदना या शोक उमड़ता है वह अनिष्ट के कारण नहीं, अनिष्ट की चिंता में। तुलसी ने अनिष्ट की चिंता में अवध को जितना शोकमग्न किया है वह अवर्णनीय है। काव्य में जैसी करुण विप्रलंभ की ख्याति है वैसी ही मानस में करुण संयोग की भी। कैकेयी और दशरथ का कोपभवन ही इसके हेतु पर्याप्त है और सारा अयोध्याकांड ही इसका प्रमाण है। अवधवासी ऐसी स्थिति में एक दूसरे से मिल कर जितना शोकमग्न होते हैं उतना एकांत में नहीं। तुलसी की यह विशेषता विशेष रूप से विचारणीय है। इसको देखते हुए मानना पड़ता है कि शोक की जैसी परख तुलसी को है वैसी और किसी को भी नहीं। उत्तर रामचरित में भवभूति ने राम को रुलाया है पर उनका रोना सबको नहीं भाता, मानस में राम रोते नहीं पर अवध की सुधि आते ही उनके नेत्रों में भी जल आ जाता है। मानस में सभी का मन रोता है पर रोने का

काम किसी का भी नहीं है। सभी को अपने धर्म और कर्म की चिंता है। अस्तु; मानस में जो करुण रस की धारा दिखलाई देती है वह अनिष्ट की आशंका से उत्पन्न होती है और धीरे धीरे बहुत ही व्याप्त होती जाती है। वास्तव मे तुलसी ने विषाद को वाणी के रूप मे बहाया है पर कहीं भी उसको वाचाल नही होने दिया है। इसी से इसकी अनुभूति भी गंभीर होती है जो हृदय से निकलकर हृदय मे बैठती है और उसको करुणा का घर बना लेती है।

गोस्वामीजी ने शोक के प्रसंग में इतना और भी किया है कि काम और क्रोध को एक साथ ही एक प्रसंग मे लाकर खड़ा कर दिया है और अंत में सरलता से यह दिखलाया है कि काम और क्रोध का परिणाम अंत में शोक हो जाता है। दशरथ मे काम और कैकयी मे कोप यही तो कोपभवन की लीला है। दशरथ उमंग मे आकर जब यह कहते हैं—

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा।
केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा॥
कहु केहि रंकहि करौ नरेसू।
कहु केहि नृपति निकासौ देसू॥
सकउँ तोर अरि अमरउ मारी।
काह कीट बपुरे नर नारी॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू।
मनु तव आनन चद चकोरू॥
प्रिया प्रान सुत सरवसु मोरें।
परिजन प्रजा सकल बस तोरें॥

तब काम की दृष्टि से कोई कड़ी बात नही होती। फलतः ऊपर से भी यही सीधी सी बात निकल पड़ती है—

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक वर भरतहि टीका॥
मागउँ दूसर वर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी।
तापस बेप विसेषि उदासी। चौदह बरिस राम बनवासी॥

बात बहुत सीधी है, पर परिणाम कैसा भयंकर होता है। राजा की मृत्यु और राम का वनगमन तथा भरत की तपस्या—और यह विषाद घर घर मे फैल गया। मंत्री के भी नेत्रों की ज्योति मंद पड़ गई। गोस्वामीजी ने काम और

क्रोध में मिले जुले रूप को पहले ही मिथिला में लिया था और यह बता भी दिया कि इसका परिणाम सुखद ही क्यो हुआ। काम और क्रोध की स्थिति को ठीक ठीक समझने और उनके द्वारा इष्ट तक पहुँचने का मार्ग यदि ढूंढ़ निकालना हो तो तुलसी के मानस का अवगाहन करे।

करुण रस से सारा अयोध्याकाड ही आप्लावित हो रहा है। कौन ऐसा वज्रहृदय होगा जिसके नेत्र इसके पाठ से अश्रुपूर्ण न होते हों। उस समय की अवस्था विचारिए जब कौशिल्या ने राम के मुख से उनके वन जाने की बात सुनी। उस समय उनकी अवस्था यह हुई---

वचन बिनीत मधुर रघुवर के।
सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी।
जिमि जवास परें पावस पानी॥

परमप्रिय पत्नी तथा परम स्नेही बंधु के साथ राम वन जा रहे हैं। उस समय घरवालो की बात कौन चलावे नगरवासियो की दशा देखिए---

चलत रामु लखि अवध अनाथा।
विकल लोग सब लागे साथा॥

क्योंकि उनके वियोग में---

लागति अवध भयावनि भारी।
मानहुँ कालराति अँधिआरी॥

और उधर घोड़ों की अवस्था भी राम के वियोग में बड़ी विचित्र है---

देखि दखिन दिसि हय हिहिनाहीं।
जनु बिनु पंख विहग अकुलाही॥

इतना ही नही यह भी---

'नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन वारि।'

घोड़ों की यह दशा देख राम के परिवार की वेदना की थाह लगा लीजिए। इन पक्तियों में करुण रस का स्रोत बहा है।

कवि एक करुण चित्र उस समय अकित करते है जब वह कैकेयी द्वारा उसके दोनो वरदानो के प्रकट किए जाने पर राजा की दशा का वर्णन करते

हैं। सहवर्ती सात्विक अनुभावों स्तंभ स्वरभंग और विवर्णता के समावेश से यह चित्र पूर्ण हो गया है। एक ऐसा ही चित्र पुनः कवि उस समय प्रस्तुत करते हैं जब उस वरदान को वापस करने की प्रार्थना पर, जिसका संबध राम के वनवास से था, वह राजा की असफलता का वर्णन करते हैं। यह भी प्रलाप और स्वरभंग जैसे अनुभावों के समावेश द्वारा पूर्ण हो गया है। पुनः एक ऐसे ही चित्र का उद्घाटन गोस्वामीजी द्वारा उस समय होता है जब वह राजा की उस दयनीय दशा का चित्रण करते हैं जिसमे राम उन्हे प्राप्त करते हैं। यह चित्र भी प्रलाप और मरण संबधी भावों के समावेश से पूर्ण बन गया है। पर राम के वनगमन से सुमंत की जो विरह अवस्था है उससे दयनीय और करुण शायद ही और कोई दृश्य हो। इससे इस संबध मे वैज्ञानिकों के शोक संबंधी लक्षण यह है—शोक मे चित्त मे स्थित विषाद समस्त दैवी शक्तियों का शोषण कर लेता है। शरीर की सुधबुध नही रहती जैसे वह प्राणविहीन हो गया है। वह झुक जाता है, अग प्रत्यंग शिथिल हो जाते हैं। वे शक्तिहीन और ढीले भी हो जाते हैं। शोकयुक्त व्यक्ति साँस भी कष्ट पूर्वक ले पाता है, थोड़ी थोडी देर पर उसे दीर्घश्वास आते हैं। कंठ सूख जाता है। बीच बीच में जब व्यथा लौटती है तो दम घुटने सा लगता है। शोक के इन लक्षणों को हमारे कविसम्राट् ने सुमत की व्यथा के चित्र मे कैसे स्वाभाविक रूप से समाविष्ट किया है। अपने पुत्र के वनवास और पति की मृत्यु पर कौशल्या की व्यथा जो भरत से—जब वह अपने मामा के घर लौटकर आते है—मिलते समय फूट पड़ी है। यह अपने ढग की अनुपम है। इसमे जितना अभिव्यजन गांभीर्य है उतना ही भावगुरुत्व भी। गीतावली मे करुण रस की एक सफल व्यजना उस समय हुई है जब कविताकाननकेशरी गोस्वामीजी सीता के निर्वासन का विवेचन करते हैं और उनको वन में वापस छोड़कर होते हुए लक्ष्मण को संबोधित करते हैं। निर्वासित सीता के दैन्यपूर्ण निवेदन को कवि ने इतना करुण बना दिया है कि उसे सुनकर प्रत्येक हृदय एक बार पसीज जाएगा यह स्पष्ट है, गोस्वामीजी ने करुण रस का चित्रण अत्यत हृदय-द्रावक पद्धति में किया है। दशरथ के मरण पर यह शोक अपनी पूर्ण दशा को पहुँच जाता है। उस समय अयोध्या की दशा के वर्णन मे पाठकों को करुणा की ऐसी धारा दृष्टिगोचर होती है जिसमे पुरवासियों के साथ वे भी मग्न हो जाते है। गोस्वामीजी द्वारा चित्रित राजकुल का यह शोक ऐसा है कि जिसके भागी केवल पुरवासी ही नहीं, मनुष्यमात्र हो सकते हैं। क्योंकि यह शोक ऐसे आलवन

के प्रति है जिसके रंचमात्र भी दुख को देख मनुष्यता रखनेवाले सभी करुणार्द्र हो सकते है।

दुखात काव्य एक ऐसी असाधारण विपत्ति को अपने मे लपेटे रहता है जिसमे किसी उच्च पदवाले व्यक्ति की मृत्यु का समावेश रहता है। इससे महाराज दशरथ की मृत्यु अवध मे एक ऐसी बडी हलचल उत्पन्न कर देती है जिसे दुखात नाटक की पराकाष्ठा ही कहना चाहिए पर तुलसी की कल्पना इसके विरुद्ध है। एक तो तुलसी हमारा ध्यान एक ही व्यक्ति में केंद्रित नही करते, दूसरे वह केवल मृत्यु को ही जीवन की महान् करुणा जनक घटना नही मानते। प्रारभ मे महाराज दशरथ हमे दुखांत कविता के चरित्रनायक के रूप मे दृष्टिगोचर होते है जिनकी वाह्य एव आतरिक परिस्थियो के चित्रण मे पाश्चात्य जगत् के दुखात सबधी सभी सिद्धातो का सनिवेश हो जाता है। वह एक साम्राज्य के सम्राट् है और उनकी मृत्यु के संवध में तुलसी यही लिखते है कि यदि दिनेश अपने समय से पहले अथवै तो संसार को भला क्लेश कैसे न हो। तुलसी की दुखात काव्यरचना की विशेषता यह है कि उन्होने नाटकीय कौशल के साथ महाराज दशरथ के मानसिक सनिपात का वर्णन अत्यत मार्मिक शब्दो मे किया है जिसका प्रारंभ यह है—

राम राम रट विकल भुआलू।
जनु बिनु पंख विहंग विहालू॥

दशरथ के आंतरिक भावो के सघर्षण का वर्णन ऐसे करुणाजनक शब्दों मे हुआ है कि आँसुओ को विना न्योछावर किए नहीं रहा जा सकता। भरत के आदर्शपूर्ण विचार में यह लोकापवाद ही उनके हेतु अत्यंत दुखदायक है कि वे अपनी माता के षड्यन्त्र मे समिलित है। तुलसी ने भी उनके इस दु:ख का ऐसे विस्तार के साथ वर्णन किया है कि हमारे हृदय में उनके प्रति करुणापूर्ण आदर का भाव उत्पन्न होता है। भरत जो स्वयं कहते है वह करुणा रस से ओत-प्रोत है।

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम वनवासू॥

÷ ÷ +

रायँ राम कहुँ काननु दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा॥

मैं सठु सब अनरथ कर हेतू। बैठि बात सब सुनउँ सचेतू॥

अतः गोस्वामीजी का काव्य करुण रस के वर्णनों से ओतप्रोत है। जहाँ भी अपनी रचना मे अवसर मिला गोस्वामी जी ने इस रस की तरंगिणी प्रवाहित कर दी है।

अद्भुत रस

अद्भुत रस के भी कुछ अच्छे उदाहरण मानस मे मिलते है। मोह में ग्रस्त सती को जो राम ने अपना अद्भुत रूप दिखलाया है वह भी अद्भुत रस का अच्छा उदाहरण है।

आश्चर्य मे विषाद और हर्ष की स्थिति मिली रहती है। आश्चर्य में आलंबन की विशेषता होती है और उसके कार्य की भी। अद्भुत रस अद्भुत ही होता है। उसमे चित्त की दशा भी अद्भुत होती है। गोस्वामी तुलसीदास ने राम के अद्भुत चरित मे अद्भुत रस की व्यंजना भरपूर की है। इसके अनेक अवसर मानस में आए है जिनमे सर्वप्रथम सती का मोह है और इसका अंत है काकभुशुंडि के मोह मे। इसके अतिरिक्त स्फुट प्रसंगों मे भी अद्भुत रस दिखलाया गया है। किंतु इस रस का समुचित परिपाक राम के अद्भुत चरित्र में हुआ है। इस अद्भुत चरित्र को देख कर सती की स्थिति यह हो जाती है—

'नयन मूदि बैठी मगमाही॥'

सारांश यह है कि अति अद्भुत से त्रास ही उत्पन्न होता है, कुछ हास नही; पर यह अवस्था उसी की होती है जो इसे देखता है। सामाजिको को तो इसमे भी आनंद ही आता है। हमारी दृष्टि में जो बात नही आती और जिसे हम ठीकठीक नही समझ पाते वही तो हमारे विस्मय का कारण होती है और हमारी मति मे भी विचित्रता होती है। अस्तु, इस अद्भुत का वर्णन कवि ने अन्य रूपों मे भी किया है। हनुमान के पराक्रम मे प्रायः इसके दर्शन हो ही जाते हैं। उनकी शिशुलीला को लीजिए——

भानु सो पढ़न हनुमान गए, भानु मन
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सों ।
पाछिले पगनि गम गगन मगनमन
क्रम को न भ्रम, कपि बालक विहार सौ ।
कौतुक विलोकि सुरपाल हरिहर बिधि,
लोचननि. चकाचौध चित्तनि खँभार सो ।
बल कैधौ वीररस धीरज कै साहस कै
तुलसी शरीर धरे सवनि को सार सौ ।

इसमे द्रष्टव्य है कि हनुमान् थोड़ी सी अवस्था मे कितना महान् कार्य संपन्न करते है एवं प्रौढ होने पर—

'लीन्हो उखार पहार विसाल, चल्यो तेहि काल विलव न लायो ।
मारुतनंदन मारुत को, मन को, खगराज को वेग लजायो ।
तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो ।
मानो प्रतच्छ परव्वत की नभ लीक कलसी कपि यों धुकि धायो ।।

इस पद के समग्र वर्णन से जो चित्र सामने खड़ा होता है उसके उद्भुत होने मे कोई भी संदेह नही। गगन मंडल के बीच पहाड की एक लीक बँध जाना कोई साधारण व्यापार नही है । इस अद्भुत स्थल की योजना भी एक स्वभावसिद्ध व्यापार के आधार पर हुई है और यह योजना गोस्वामीजी का प्रकृतिनिरीक्षण भी सूचित करती है कि अत्यंत वेग से गमन करती हुई वस्तु की एक लकीर सी बन जाया करती है । इस बात पर कवि की दृष्टि गई है । जिसकी दृष्टि सूक्ष्म वस्तुओं पर नही जा सकती वह अपने को कवि कहलाने का अधिकारी नही । अद्भुत रस के इस वर्णन मे गोस्वामीजी की विश्वव्यापार-ग्राहिणी प्रवृत्ति लक्षित होती है जो हिदी के और किसी भी कवि मे उपलब्ध नहीं होती ।

गोस्वामीजी ने राम के शील और सौंदर्य को भी व्यक्त करने के

हेतु इस रस से विशेष काम लिया है। राम मृगया खेल रहे हैं फिर भी मृग भागते नहीं है प्रत्युत उनको देखते ही रह जाते हैं——

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि पानि सरासन सायक लै।
वन खेलत राम फिरैं मृगया तुलसी छवि सो बरनै किमि कै।
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकै चितवैं चित दै।
न डगै न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंचधरे रतिनायक है॥

राम के लौकिक कर्मों को देखकर माता कौशिल्या को सहसा विश्वास नहीं होता। वह आश्चर्य के साथ राम से पूछती हैं——

भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी।
क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी॥
मुनि प्रसाद मेरे राम लपन की विधि बड़ि करवर टारी।
चरन रेनु लै नयननि लावति क्यों मुनिवधू उधारी।
कहौं धौं तात क्यों जीति सकल नृप बरी है विदेह कुमारी।
दुसह रोष मूरति भृगुपति अति नृपति निकर खयकारी।
क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय करी है बहुत मनुहारी।

तुलसी ने वालकाड मे कौशिल्या को जो अपना विराट् रूप दिखलाया है वह भी अद्भुत रस का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस प्रकार——

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥
अगनित रवि ससि सिव चतुरानन।
बहुगिरि सरित सिंधु महि कानन।
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ।
सोउ देखा जो सुना न काऊ।

इसमें आलंबन राम, आश्रय कौशिल्या, अनुभाव राम के

विराट् रूप, काल, कर्म रूप आदि, उद्दीपन तनु पुलकित आदि, अनुभाव जड़ता, नेत्रो को मूंद लेना, भय आदि संचारी है, स्थायी विस्मय है। इस प्रकार यह अद्भुत् रस का वड़ा सुंदर उदाहरण है। इसके वर्णन मे उन्होंने ऐसे शब्द भी डाल दिए है जो अद्भुत रस की शास्त्रीय व्याख्या मे प्रयुक्त होते है। अतः गोस्वामी जी ने अद्भुत रस का वड़ा ही अद्भुत् वर्णन किया है।

हास्य रस

मानस मे हास्य रस का उत्तम परिपाक शिवजी की वारात और नारद-मोह के प्रसंग मे हुआ है। तुलसी के सपूर्ण काव्य मे हास्य का वड़ा ही सुदर चित्रण हुआ है। स्मितहास्य, शिष्टहास्य, मुक्तहास्य, अट्टहास, व्यग्यहास्य, आदि हास्य की अनेकों कोटियाँ है। मानस मे इस प्रकार के हास्य का अभाव नही। प्रायः हम देखते है कि जव कही विषाद छा जाता है तव कही किसी को हर्ष भी होता है। देवताओ को हर्प भी अवध के विषाद मे ही होता है। अतएव इस प्रकार के हास्य के संवध मे अधिक न कहकर देखना यह चाहिए कि तुलसी ने दूसरी ओर मृदुल हास्य को कैसे चित्रित किया है। राम के प्रसंग मे निपाद को छोड़ जाना कभी भी ठीक न होगा। निषाद की भावभरी भोली वाणी में जो रस राम को मिलता है वह हँसी में फैले विना नही रह सकता। देखिए—

रावरे दोष न पायन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें वन-वाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है।
पावन पायँ पखारि कै नाव चढाइहौ, आयसु होत कहा है।
तुलसी सुनि केवट के वरवैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥

'केवट के वरवैन' मे जो भाव भरा था वह आगे चलकर किसी और ही रूप में व्यक्त हुआ और फलतः राघव को भी 'हहा' की जगह हेरि हेरि कर हँसना पड़ा।

प्रभु रुख पाइ कै बोलाइ बाल घरनिहि
बंदि कै चरन चहुँ दिसि बैठे घेरि घेरि ।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानि गंगाजू को
धोइ पांय पियत पुनीत वारि फेरि फेरि ।
तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर
बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि ।
विबुध सनेह सानी वानी असयानी सुनि
हँसे राघो जानकी लषन तन हेरि हेरि ॥

राघव की इस हँसी को भूतनाथ की उस हँसी से मिलाकर देखिए तो पता चले कि पालक और संहारक की हँसी में कितना भेद होता है और यदि विष्णु और महादेव के हास्य को एक साथ देखना हो तो शिवविवाह को लीजिए । वहाँ शिव की बरात को देखकर सुर भी हँसते हैं और सुरत्राता विष्णु भी ऐसी स्थिति मे हँसकर कहते हैं—

विष्नु कहा हँसि बिहँसि तब बोलि सकल दिसिराज ।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज ॥

यहाँ भी भूतनाथ को अपने समाज की सूझी तो उन्होंने भी अपने गणों को टेरा और परिणाम यह हुआ कि—

नाना वाहन नाना वेषा ।
बिहँसे सिव समाज निज देखा ॥
कोउ मुख हीन विपुल मुख काहू ।
बिनु पदकर कोउ बहु पद बाहू ॥

इत्यादि । मानस बाल कांड मे यह बारात जब नगर के निकट पहुँची और जब अगवानी लेने लोग आए तब—

हिय हरषे सुर सेन निहारी ।

पर— सिव समाज जव देखन लागे ।
बिडरि चले वाहन सब भागे ॥

एक ही आलंबन से किसी के हृदय मे भय, किसी के हृदय मे हर्ष का संचार कैसे होता है, इसका यह दिव्य उदाहरण है । वालकों का भयभीत होना कितना स्वाभाविक है । बच्चो को डराकर आज भी आनंद लूटनेवाले कम नही है । इसके अतिरिक्त यदि हास्य का पूरा परिपाक देखना हो तो नारदमोह लीला को ले लीजिए । शीलनिधि राजा की विश्वमोहिनी कन्या को देखकर नारद सोचते है--

जप तप कछु न होइ तेहि काला ।
हे विधि मिलहि कवन विधि वाला ।

और स्वयंवर मे--

पुनि पुनि मुनि उकसहि अकुलाही ।

में तो गोस्वामी जी ने प्रायः हास्यरस उड़ेल ही दिया है । नारद का जो इस स्वयंवर में उपहास हुआ उसका फल यह निकला कि उनके हृदय में क्रोध उत्पन्न हुआ और रमापति के 'मुनि कहँ चले विकल की नाईं' कहने पर तो वह वरस ही पड़ा । हास्य के वाद रौद्र का ऐसा रंग कहाँ मिल सकता है । उसके विभाव भी तो अनुपम ही है । रमापति और उनकी लीला । हास और उपहास के साथ परिहास भी चला करता है । तुलसी ने इसके दिखलाने मे भी कोई चूक नही की । यदि विविध भावो से भरे हुए हास को देखना हो तो तुलसी का 'वावरो रावरो नाह भवानी' वाला पद देखे । इस पद मे तो हास्य रस अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है--

विंध्य के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा विनु नारि दुखारे ।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनिवृंद सुखारे ।
ह्वै हैं सिला सव चंद्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे ।
कीन्ही भली रघुनायक जू करुना करि कानन को पगु धारे ॥

हास की दृष्टि से हास्य का जो अभी तक विचार हुआ उसमे हर्ष का सच्चा उल्लास देखने मे नही आया। विजय मे जो प्रसन्नता होती है वह जैसी वानरों मे दिखलाई देती है वैसी नरो मे नही। हनुमान् की प्रथम सफलता पर जो हर्ष वानरो को होता है उसकी गोस्वामी जी ने निम्नलिखित पद में कैसी सजीव व्यंजना की है--

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि,
हनुमान पहिचानि भए सानँद सचेत हैं।
बूडत जहाज बच्यो पथिक समाज, मानो
आजु जाए जानि सब अंक माल देत हैं।
जै जै जानकीस, जै जै लषन कपीस कहि
कूदैं कपि कौतुकी, नचत रेत रेत हैं।
अंगद मयंद नल नील बलसील महा
बालधी फिरावैं मुख नाना गति लेत हैं॥

गोस्वामीजी ने हास के अनेक उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत किए हैं जिनमे से कुछ की विवेचना पीछे हो चुकी है। मानस मे सूपनखी की इस बात पर भी अवश्य ही हँसी आएगी--

तुम सम पुरुष न मो सम नारी।
यह सँजोग विधि रचा विचारी।
ताते अब लगि रहिउँ कुमारी।
मनु माना कछु तुम्हहि निहारी।

ऐसी स्त्री हमारे किसी भी पाठक के देखने सुनने मे नहीं आई होगी। इसने बाजारी स्त्रियों की भी नाक काट ली थी। अच्छा हुआ इसकी नाक भी काटी गई। इसकी दशा देख लक्ष्मण को भी भाई से हँसी करने की उमंग आ गई।

प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा।
जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा।

इतना होने पर विशेषता यह है कि गोस्वामीजी का शिष्ट हास्य स्मित हास्य के अंतर्गत आता है। अति हसित की कोटि मे नही। गोस्वामीजी का हास मर्यादा संयुक्त है। बडे लोगों का हास हैं। उसपर उद्देश्यगर्भित है। निरा हास नही। यह मोह और अहंकार को छुटाने वाला था तभी तो नारद कह उठते है--

मै दुर्वचन कहे बहुतेरे।
कह मुनि पाप मिटिहि किमि मेरे।

भयानक रस

भयानक रस का दो चार जगह ही गोस्वामी जी के काव्य मे चित्रण हुआ है। रावण के क्रोध जगने पर युद्ध भूमि का दृश्य भयकर हो गया था। इसमें क्रोध, उत्साह और जुगुप्सा ने एक साथ धावा बोल रखा है किंतु यह तो राम का स्फुट रूप रहा जो कही कही रणभूमि मे ही दृष्टिगोचर हुआ। इधर लका मे जो सच्ची आग लगी है वह किसी भी दावाग्नि से कम नही है। वहाँ की स्थिति तो और भी भयंकर है--

जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे।
कहाँ तातु मात भ्रात, भगिनि भामिनी भाभी।
छोटे छोटे छोहरा अभागे, मोरे भागि रे।
हाथि छोरो, घोड़ा छोरो, महिप, वृषम छोरो, आदि।

किंतु यह पुकार उस भयानक भय के सामने कुछ भी न कर सकी। जाएँ भी तो लका निवासी कहाँ जायँ भय की आकुलता मे उन्हे वानर ही चारो ओर दृष्टिगोचर हो रहा है। धनुर्भग होनेपर भी कैसा भयंकर नाद होता है।--

भरे भुवन घोर कठोर रव रवि वाजि तजि मारगु चलै॥
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले।

सुर असुर मुनि कर कान दीन्हें सकल विकल विचारही ।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति वचन उचारही ॥

कवि कैकेई को एक महान अनिष्ट की शंका से कंपित दिखाते हैं जब वह मंथरा के द्वारा सुनाए हुए भयंकर परिणामों का चित्र अपने मस्तिष्क में खीचती है। यह भावचित्रण यद्यपि सक्षेप रूप में हुआ है पर कवि ने इसे भय का अति सुदर रूप दे दिया है । अतः भयानक रस का निर्वाह भी कवि-वर्य ने बड़ी सफलता से किया है । लंकादहन वर्णन में तो कवि ने इसे सजीवता ही प्रदान कर दी है ।

वीभत्स रस

वीभत्स रस का वर्णन प्राचीन काव्य में केवल युद्ध अथवा श्मशानों के प्रसंग में आया है। आजकल तो अनेक ऐसे स्थाल देखने में आते हैं जो वीभत्स रस का उद्रेक करने में साधन बन सकते है। जैसे अस्पताल, पशुवधालय और सड़कों पर एकत्रि कूड़े के ढेर। आजकल के आधुनिक सुरुचि संपन्न लेखकों और कवियों ने भी इसका वर्णन किया है, पर मानस में इसका वर्णन दो ही स्थलों पर हुआ है । राम-रावण-युद्ध मे और खरदूषण युद्ध में जुगुप्सा का भाव अपने मामा के यहाँ से लौटने के पश्चात् भरत द्वारा की हुई अपनी माँ की भर्त्सना में देखा जा सकता है।

वर मागत मन भइ नहि पीरा।
गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।

इसके अन्यत्र कवितावली का यह भी वीभत्स रस का उदाहरण बड़ा ही सुंदर बन पड़ा है—

ओझरी की झोरी कांधे आंतनि की सेल्ही बांधे,
मूँड़के कमंडलु खपर किए केरि कै ।
जोगिनी झुटुग झुंड झुंड बनी तापसी सी
तीर तीर बैठी सी समरसरि खोरि कै ।
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै ।

तुलसी बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ
हेरि हेरि हँसत है हाथ हाथ जोरि कै ॥

इसमे स्थायी जुगुप्सा, जोगिनी आलंबन उनके क्रियाकलाप उद्दीपन, भय संचारी आदि से पुष्ट वीभत्स रस का सुदर उदाहरण है। अतएव इस रस में भी गोस्वामीजी ने सफलता पाई है। उनके वीभत्स मे भी भक्ति भरी है जो उक्त पंक्ति से प्रकट है।

रौद्र रस

इस रस का प्रयोग क्रोधावेग की दशा को प्रकट करने के हेतु होता है। भरत को शत्रुभाव से समझ उन्हे चित्रकूट मे आया जान लक्ष्मणजी की जो अवस्था हो जाती है वह रौद्र रस का उत्कृष्ट उदाहरण है--

छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान ॥
× × ×
कहं लगि सहिअ रहिअ मनु मारें।
नाथ साथ धनु हाथ हमारे ॥

भौं चढ़ाना, क्रूरता से देखना ओंठ चबाना, ताल ठोंकना, हथियार घुमाना, रोमाच और पसीना होना आदि इस रस के लक्षण है। तुलसी ने मानस में युद्ध के अवसरो पर इस रस का यथार्थ स्वरूप दिखलाया है। स्वयवर मे जब जनक ने असफल प्रयत्न करनेवाले राजाओ की भर्त्सना की तो तेजस्वी लक्ष्मण ने अपना रौद्र रूप प्रकट किया। तुलसी ने उसका बहुत ही ओजपूर्ण वर्णन किया है--

माखे लखनु कुटिल भई भौहें। रदपट फरकत नयन रिसौहे।
× × ×
सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहउँ सुभाउ न कछु अभिमानू ॥
जौ तुम्हारि अनुसासन पावौ। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौ ॥
काचे घट जिमि डारौ फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौ। जोजन सत प्रमान लै धावौ ॥

तुलसी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे रौद्र रस के चित्रण में भी मर्यादा को नहीं भूलते। यहाँ क्रोधित अवस्था में भी लक्ष्मण के मुंह से जो शब्द निकले वे मर्यादा के आवरण से आवृत और मर्यादापूर्ण हैं। पहले तो लक्ष्मण ने कहा—

काचे घट जिमि डारी फोरी।

भाव है काचे घट कहने का लक्ष्मण ध्वनि से कह रहे हैं कि मैं शेषावतार हूँ, पृथ्वी का पुनः निर्माण भी कर सकता हूँ। पका घड़ा तोड़कर फिर बनाया नहीं जा सकता और कच्चा घड़ा कुम्हार अनेकों बार बना सकता है। अतः लक्ष्मण कहते हैं ब्रह्मांड के टूट जाने पर यदि कहा जाएगा तो मैं उसका पुनः निर्माण भी कर दूंगा। इसी प्रकार लक्ष्मण ने कहा—

कमल नाल जिमि चाप चढावौं।

'चाप चढावौं' कहा, 'चाप तोरौं' नहीं। तोरौं कहने में औचित्य का नाश हो जाता है क्योंकि जब लक्ष्मण यह जानते हैं कि राम मन से जानकी का वरण कर चुके हैं तब वे 'चढावौं' ही कह सकते थे, 'तोरौं' नहीं। कितने औचित्य से भरे शब्द हैं। अतः तुलसी रौद्ररस के भी सफल चित्रकार थे।

शांत रस

गोस्वामीजी ने शांत रस की बड़ी ही सुंदर अभिव्यंजना विनय के पदों में की है। वास्तव में शांत रस की जैसी धारा विनयपत्रिका में बही है वैसी हिंदी साहित्य में अन्यत्र नहीं। निर्वेद ही एक ऐसा भाव है जो आदि से अंत तक बना रहता है। उसका मूल उद्देश्य है, 'लाभ कहा मानुष तन पाए।' यदि हरिभक्ति नहीं तो तो मनुष्य जन्म पाने से क्या लाभ? और उसका दृढ़ निश्चय भी राम-भक्ति के प्रति अभिव्यक्त हुआ है। इससे कहने को तो मन यही चाहता है कि निर्वेद की प्रधानता होने पर भी इसकी इति रामरति में ही होती है और इसी का परिणाम है कि विनयपत्रिका ऐसी सरस रचना मानी जा सकती है जो संपूर्ण हिंदी साहित्य में अनुपमेय है। औरों की भक्ति के विषय में चाहे जो भी कहा जाय पर तुलसी की तो बड़ी अनन्य भक्ति राम में थी। तुलसी

की दृष्टि में प्राकृत राम ही परम ब्रह्म थे। अत. उनके संबंध में वैसा विवाद
नही उठ सकता जैसा कि अन्य विद्वानो ने अन्य भक्तों के संबंध मे उठाया है।
कदाचित् यही कारण है कि आचार्यो ने देव विषयक रति को स्वतंत्र स्थान दे
'भक्ति' को एक अलग रस ही मान लिया है। कुछ भी हो, इसमे सदेह नही कि
विनय मे निर्वेद का ही राज्य है।

जब राम को वनवास दिया जाता है तब कवि अयोध्यावासियों मे उनके
विरह से उत्पन्न उत्कट आकुलता से पुष्ट निर्वेद का चित्रण करते है।
एक अत्यंत शोकाकुल निर्वेद का दृश्य तुलसी ने सुमंत में प्रस्तुत किया
है जब वे राम को वन पहुँचाकर लौटते है। शांत का एक उदाहरण
कवि कुल कमल दिवाकर ने दशरथ में ही व्यजित किया है जब वे अपने
निरपराध पुत्र राम को युवराज पद देने के निर्णय की घोषणा के
पश्चात् स्वत: अपने इस कृत्य पर विचार करते है। मानस मे उत्तरकाड
के अत में भक्ति निरूपण मे भी शात रस ही है। अत मे तुलसी को अपने शाति
प्रधान ग्रथ से शाति भी प्राप्त हुई जिसे वे 'पायो परम विश्राम' कहकर स्वीकार
करते है। गोस्वामी जी की रचना ही शात रस प्रधान है।

गोस्वामीजी ने अपने काव्य मे इस प्रकार नवों रसों को यथास्थान
अभिव्यक्त किया है। उन्होंने रस की तीव्रता के हेतु सचारी भावो के संकेत पर
ध्यान रखा है, जैसी विवेचना हो चुकी है।

रसों के उपकरण एकत्र करके योजना तो अधिकांश कवि कर सकते
है किंतु सुकवि का कौशल इसी मे है कि वह रस के औचित्य का भी पूर्ण रूप
से निर्वाह कर सके। अर्थात् न तो विरोधी रसों को वह एक मे मिलावे और न
ऐसी रचना करे कि उसमें रसदोष आ जायँ।

गोस्वामीजी के काव्य में कही भी विरोधी रस एक साथ नही आए।
जिन स्थलों पर ऐसी योजना हो भी गई वह अभिव्यक्ति मित्र कुपित व्यक्तियों
के लिये होने के कारण इस दोप से मुक्त हो गई है जैसे—

प्रभु कीन्ह धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।

यहाँ प्रयुक्त वीर और भयानक दोनों ही रस विरोधी है पर दोनों का प्रयोग दो भिन्न विरोधी लोगो के लिये ही होने से इसे रसदोष नहीं कहा जाएगा। कोई भी भाव तुलसी की लेखनी से अछूता नही रहा है। प्रत्येक भाव पर उन्होंने समानाधिकार से अपनी लेखनी चलाई है। यह केवल तुलसी के ही सामर्थ्य की बात थी।

गोस्वामीजी रस सिद्ध कवि थे। उनका सपूर्ण मानस ऐसे दिव्य रस से भरा हुआ है, जिसके विषय मे वे स्वय कहते हैं।—

राम कथा जे सुनत अघाही। रस विसेष जाना तिन्ह नाहीं।

उनके वृहद् ग्रंथ की प्रत्येक पंक्ति मे कुछ न कुछ रस चमत्कार विद्यमान है। सामान्यत: नीरस प्रतीत होने वाली पक्ति मे भी कथा का प्रवाह मिलेगा, जिसमे रस तरगे आप ही आप उछल रही होगी। गोस्वामी जी ने कई जगह नवो रसों का माधुर्य एक जगह समेट कर रख दिया है। विचार करने पर ऐसे स्थलो मे अनोखा ही आनद आता है। यहाँ एक उदाहरण दे देना अनुचित न होगा। सुदर काड मे वे लिखते है—

कनक कोट विचित्र मनिकृत सुंदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुवट्ट वीथी चारु पुर वहु विधि वना।
गज वाजि खच्चर निकर पदचर रथ वरूथन्हि को गने।
वहु रूप निसिचर जूथ अति वल सेन वरनत नहिं वने।
वन वाग उपवन वाटिका सर कूप वापी सोहही।
नर नाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहही।
कहुँ माल देह विसाल सैल समान अति वल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं वहु विधि एक एकन्ह तर्जही।
करि जतन भट कोटिन्ह विकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।
कहुँ महिप मानुप धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं।
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुवीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहिं सही॥

इसमें विचित्रता के कारण पहली दो पंक्तियों में अद्भुत रस और बहुरूपी राक्षसों के कारण दूसरी दो पंक्तियों में हास्यरस विद्यमान ही है। पाँचवीं पंक्ति में शृंगार रस और छठी में करुण रस है क्योंकि नर-नाग-सुर-गंधर्व-कन्याएँ छीनकर ही लाई गई थीं। मल्लों के कारण सातवीं पंक्ति में वीर रस है। तर्जना के कारण आठवी में रौद्र रस है। विकट तन के कारण नवीं में भयानक और अनर्गल भक्षण के कारण दसवीं पंक्ति में बीभत्स रस ओतप्रोत है। रहा शांत रस तो वह शेष दो पंक्तियों में जिस खूबी के साथ प्रकट किया गया है वह देखते ही बनता है। इस प्रकार गोस्वामी जी ने जहाँ भी जिस रस का प्रयोग किया है वहाँ उसका समुद्र ही उडेल दिया है।

अलंकार और ध्वनि संबंधी विशेषताएँ

अलंकार प्रयोग की विशेषताएँ--

अलंकार किसी प्रकार के चमत्कार पर आधारित रहते है । यह चमत्कार जिन आधारों पर आधारित रहता है वे साम्य, विरोध, संबंध आदि है। इन्ही के आधारो पर अलकारो के विभिन्न वर्ग किए जा सकते है । गोस्वामी जी की रचनाओ मे निम्नलिखित वर्गो के अलकारों का प्रयोग विशेष रीति से हुआ है । जैसे—

(१) साम्यमूलक अलकार—साम्य रूप गुण साम्य से संवधित होते हैं। जैसे, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, भ्रम, संदेह आदि ।

(२) विरोध मूलक--विपमता या विरोध का चमत्कारपूर्ण प्रकाशन इन अलंकारो में रहता है, जैसे असगति, विपम, विरोधाभास आदि ।

(३) क्रम या शृंखला मूलक---कारणमाला, एकावली, सार आदि ।

(४) न्याय मूलक--यथा संख्या, काव्यलिंग, तद्‌गुण लोकोक्ति आदि ।

(५) कारण कार्य संबंध मूलक--विभावना, हेतूत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि ।

(६) निषेध मूलक---अपन्हुति, विनोक्ति, व्यतिरेक आदि ।

(७) गूढ़ार्थ प्रतीति मूलक--पर्यायोक्ति, समासोक्ति मुद्रा, व्याज निंदा, व्याज स्तुति आदि इन सभी अलंकारों की विवेचना इसी मे आगे की जाएगी ।

गोस्वामी जी की अलंकार योजना वड़ी ही स्वाभाविक और औचित्यपूर्ण है । उन्होने अलंकार प्रयोग कही भी चमत्कार प्रदर्शन के हेतु नही किया प्रत्युत उनके अलंकार काव्य में भाव के उत्कर्ष को वढ़ाने वाले और

कलात्मक सौंदर्य की औचित्यपूर्ण अभिवृद्धि करनेवाले हैं । इनकी अलंकार योजना इसी कारण बड़ी ही मनोरम और स्वाभाविक बन पड़ी है । उन्होंने उपर्युक्त अलंकारों के वर्गों का समुचित रूप से प्रयोग मानस अथवा अपने अन्य ग्रंथों में किया है, जिसकी विवेचना नीचे की जा रही है ।

परिस्थिति के अनुरूप अलंकारो का प्रयोग—

गोस्वामी जी ने परिस्थिति के अनुरूप ही अलंकारों का प्रयोग किया है । जैसे क्रोध से भरी कैकेई राम को वन भेजने पर उद्यत होकर खड़ी होती है । उस समय उसके कर्म और संकल्प की सारी भीषणता गोचर नही हो रही है । देश और काल का व्यवधान पड़ता है । इससे गोस्वामी जी उसे रूपक द्वारा प्रत्यक्ष कर रहे हैं—

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी । मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ वर कूल कठिन हठ धारा । भँवर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला । चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥

पाप और पहाड़ तथा क्रोध और जल में यहाँ अनुगामी धर्म है । शेष में वस्तु प्रतिवस्तु । जैसे नदी के कूल होते हैं वैसे ही उसके क्रोध के दोनो पक्ष दो वर है । जैसे धारा में वेग होता है वैसे ही हठ में भी है । जैसे भँवर मनुष्य का निकलना कठिन कर देता है वैसे ही कूबरी के वचन परिस्थिति को और भी विषम एवं उलझनपूर्ण कर रहे हैं । यह सांग रूपक कैकेई के कर्म की भीषणता को भली भाँति प्रत्यक्ष कर रहा है ।

इसी प्रकार चित्रकूट मे अपने भाइयों के सहित रामचंद्र जनक से मिलकर उन्हें अपने आश्रम पर ले जा रहे है । वह समाज ऐसे शोक से भरा हुआ था जिसका प्रत्यक्षीकरण भी रूपक के द्वारा किया जा रहा है—

आश्रम सागर सांत रस, पूरन पावन पाथु ।
सेन मनहुँ करुना सरित, लिएँ जाहि रघुनाथु ॥
बोरति ग्यान बिराग करारे । बचन ससोक मिलत नद नारे ॥

सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुवर कर भंगा ॥
विषम विषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवर अवर्त अपारा ॥
केवट वुध विद्या बड़ि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा ॥
वनचर कोल किरात विचारे। थके विलोकि पथिक हिय हारे ॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अवुधि अकुलाई ॥

इसमें शोक का रूपक द्वारा जितना सांगोपांग वर्णन हुआ है उससे करुणा साकार हो उठी है। ऐसा शोक जिसने ज्ञान और वैराग्य को भी आप्लावित कर लिया और जो धैर्य को भी भंग किए दे रहा है। जिसमे ज्ञान विज्ञान आदि सब व्यर्थ हो रहे है। इसी प्रकार गोस्वामी जी ने सर्वत्र ही परिस्थिति के अनुरूप ही अलंकारों का प्रयोग किया है।

भाव के अनुकूल और उसकी उत्कर्षवृद्धि के हेतु अलंकारप्रयोग--

भावो का उत्कर्ष दिखलाने और वस्तुओं के रूपगुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने मे कभी कभी सहायक होनेवाली युक्ति ही अलंकार है। शुक्ल जी का यह कथन गोस्वामी जी के अलंकार प्रयोग के लिये सर्वथा सत्य है। यहाँ पर आगे हम उनके अलंकार भावो के उत्कर्ष में कहाँ तक योग देते हैं इस दृष्टिकोण से उनकी अलंकार योजना पर विचार कर रहे है। वरवै रामायण के एक प्रसंग मे अशोक के नीचे राम के विरह मे सीता को चाँदनी धूप सी लगती है--

डहकु न है उजरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागु मोहि विनु राम ॥

यह निश्चय अलंकार सीता के विरह छाप का उत्कर्ष दिखलाने मे सहायक है। इसी कारण संताप की प्रचंडता असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा द्वारा भी दिखलाई गई है--

जेहि वाटिका वसति तँह खग मृग,
तजि तजि भजे पुरातन भौन ॥

स्वास समीर भेंट भइ भोरेहु,
तेहि मग पग न धर्यो तिहुँ पौन ॥

सीता की विरह अग्नि यहाँ इतनी तीव्र है कि उनके ताप से विकल होकर जिस वाटिका मे वह निवास करती हैं वहाँ के पशु, पक्षी और मृग आदि अपना वह स्थान छोड़ छोड़ कर पुराने घर की ओर भाग चले। इस प्रकार इस उद्धरण मे सीता जी की विरह व्यथा साकार हो उठी है असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा के द्वारा। मरते हुए जटायु से राम कहते हैं कि मेरे पिता से सीता हरण का समाचार न कहना—

सीता हरन तात जनि कहेहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ ॥

यह पर्यायोक्ति राम की धीरता और सुशीलता की व्यंजना में कैसी सहायता करती हुई बैठी है। राम सीता हरण के समाचार द्वारा अपने पिता को स्वर्ग में भी दुखी नही करना चाहते। साथ ही अपनी धीरता भी अत्यंत संकोच और शिष्टता के साथ प्रकट करते हैं। यहाँ राम कैसा अर्थान्तर संक्रमित पद है। प्रस्तुत उद्धरण मे दसानन शब्द बड़ा ही कलात्मक और भावपूर्ण है। राम का कथन है कि यदि मैं राम हूँ तो हे जटायु! तुम सीता हरण का समाचार पिता से स्वर्ग जा कर न कहना, मै स्वयं ही रावण के वंश का नाश करूंगा और वह दसानन शीघ्र ही कुल सहित स्वर्ग में जाकर अपने दसों मुखों से अपनी करतूत और उसके फलस्वरूप विनाश का हाल दशरथ से कहेगा। दसानन की जगह उसके पर्यायवाची शब्द से भी काम चल सकता था। किंतु गोस्वामी जी ने यहाँ दसानन लाकर अपनी अलंकार संबधी कला मे एक चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। दसानन का दूसरा भाव यह भी है कि उसकी दस मस्तकों की शक्ति राम के द्वारा उन्ही के शब्दों मे भविष्य मे समाप्त हो जाएगी।

राम की चढाई का हाल सुनकर इतनी घबराहट हुई, इतनी आशंका फैली कि 'बसत गढ़ लंकेस रावण अछत लंक नहिं खात कोउ भात रांध्यौ' यहाँ आशंका को व्यक्त करने में लक्षणा और व्यंजना के मेल मे विशेषोक्ति कितना काम दे रही है। . . . .

कौशल्या अपने गंभीर वात्सल्य प्रेम का प्रकाश इस पर्यायोक्ति द्वारा जिस प्रकार कर रही है वह अत्यंत उत्कर्ष सूचक होने पर भी बहुत ही स्वाभाविक है।

राघव एक बार फिरि आवौ।
ए बर बाजि बिलोकि आपनो बहुरो बनहिं सिधावौ॥
जे पय प्याइ पोषि कर पंकज बार बार चुचुकारै।
क्यों जीवहिं मेरे राम लाडिले ते अब निपट बिसारे।
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं बन कहियौ मातु संदेसो।
तुलसी मोहिं और सबहिन तें इनको बड़ौ अंदेसो॥

जिसके वियोग मे घोड़े इतने विकल है उसके वियोग मे माता की क्या दशा होगी यह समझने की बात है।

जासु बियोग विकल पसु ऐसे।
प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसे॥

पर्यायोक्ति का आश्रय लोग स्वभावतः किस अवस्था मे लेते है यह राम का इन शब्दो मे आज्ञा माँगना बता रहा है--

नाथ लखन पुर देखन चहही। प्रभु सकोच डर प्रकट न कहही।

लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम को जो मानसिक व्यथा, जो दुःख हो रहा था उसे लक्ष्मण ने उठकर देखा और वे कहने लगे--

हृदय छाँड मेरे, पीर रघुवीरे।
पाई संजीवन जागि कहत यों प्रेम पुलकि विसराय सरीरे।

इस असंति से संजीवनी बूटी का प्रभाव भी प्रकट हुआ और राम के दुःख की अधिकता भी। अलकार का ऐसा प्रयोग सार्थक है।

रावण और अंगद के संवाद में दोनो की व्याज निंदा बहुत ही अच्छी है। रावण के इस वचन में कुछ वेपरवाही झलकती है।

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा।
नाच कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करै धरम निपुनाई।।

बंदरों का आदमी के हाथ मे पड़ कर नाचना कूदना नित्य प्रति देखी जाने वाली बात है। अंगद के इन नीचे लिखे वचनों मे कैसा गूढ व्यंग्य है—

नाक कान बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम धरम बिचारी।
लाजवंत कर सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ।।

इस प्रकार गोस्वामीजी की अलंकार योजना सर्वत्र भावों के उत्कर्ष में सहायक रही है।

सादृश्यमूलक अलकारों के प्रयोग में चमत्कार—

सादृश्य मूलक अलंकारो मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, भ्रम, संदेह आदि आते है। अतएव इस प्रकरण के अंतर्गत इन्ही अलकारो पर विचार करेंगे।

गोस्वामीजी ने उपमा और उत्प्रेक्षा की स्थिति का अंतर भली भाँति स्पष्ट किया है। जहाँ जहाँ उनका प्रयोग किया है, दोनो मे क्या भेद है, इसे गोस्वामीजी की रचनाओं में देखा जा सकता है। तुलसी ने उत्प्रेक्षा को अधिक महत्व दिया है। उपमाएँ भी उनकी अनूठी बन पडी हैं। जिन्हे देख एक बार हम कालिदास को भी भूल जाते हैं। मानस रूपक में जो 'उपमा बीचि बिलास मनोरम' का उद्घोष किया गया है वह निरी उपमा के हेतु नही वह तो उपमामूलक अलंकार के लिये है। उपमा से उत्प्रेक्षा को क्यो अधिक काव्यप्रद गोस्वामी जी समझते है इसके चक्कर मे पड़ने की आवश्यकता नही। उन्होने स्वयं दो प्रसंगो में इसका निर्देशन भी किया है। पहले राम के प्रसंग को लीजिए। तुलसी की गीतावली का एक गीत है। इससे जिस बात की ओर हम ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं वह है 'उपमा एक अभूत भई' यहाँ 'मनो तड़ित छपाये' मे तुलसी ने मूर्त और अमूर्त उपमा का भेद खोलने की दृष्टि से 'मनो' का प्रयोग किया है। इसी को सरल ढंग से इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपमा अलंकार में जो दृश्य उपस्थित किया जाता है वह सृष्टि का अंश होता है। किंतु उत्प्रेक्षा में यह बात सदैव नही होती। इसमें कवि प्रकृति मात्र से

तृप्त न हो कई प्रकृति खंडों को एकत्रित देखना चाहता है। उत्प्रेक्षा मे जो 'उत' लगा होता है इसका यही संकेत भी होता है। अच्छा तो उत्प्रेक्षा के 'मनो' और उपमा के 'जिमि' के भेद पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिए। 'जिमि' में जैसा है मान लेने की आकाक्षा रहती है और 'मनो' मे जैसा है नही वैसा मान लेने की प्रेरणा सन्निहित रहती है। अतः कहा जा सकता है कि उपमा मानी हुई बात मे होती है और उत्प्रेक्षा बात को मानने के हेतु होती है। जो है नही किंतु जो हो जाए तो कितना बढिया और हृदयग्राही हो यही उत्प्रेक्षा का मूल विषय है।

नील जलद पर उडगन निरखत।

तजि स्वभाव मनु तडित छपाए॥

'तडित' का स्वभाव क्या है चचलता ही न। कहा जा सकता है कि स्वभाव को छोड़कर जैसे 'तडित' ने छपा लिया मे क्या आपत्ति है। कवियो की यह परिपाटी सी रही है कि उत्प्रेक्षा के साथ साथ वे कही उपमा का भी प्रयोग कर जाते है और उपमा के साथ साथ उत्प्रेक्षा का भी। अलकार शास्त्री उनकी भावना के उतार चढ़ाव को न समझकर उनकी रचना में भी दोप निकालते है। पर ऐसा करना ठीक नही एक वितंडा है। यहाँ भी उपमा मिश्रित उत्प्रेक्षा है। गोस्वामी जी अब क्या किस आँख से देखते है इसे देखना हो तो उनकी यह चौपाई पर्याप्त है—

राम सीय सिर सेंदुर देही।

सोभा कहि न जाति विधि केही।

अरुन पराग जलजु भरि नीके।

ससिहि भूष अहि लोभ अमी के।

पराग, जलजु ससि, और अहि किसके उपमान है इसे कहने की अभी आवश्यकता नही। तुलसी इस दृश्य में इतने मग्न है कि इसे छोड कर कही जाना ही नही चाहते। और यह भी चाहते है कि कोई सदृश्य भी अन्यत्र कही न जाने पाए। फलतः उपमेय और उपमान को इस रूप में रख देते है कि हम उसे रूपकातिशयोक्ति के रूप से चट ग्रहण कर लेते है। इतना ही नही यह तो

तुलसी की प्रतिभा के हेतु बड़ी ही तुच्छ बात है इसमें जो 'लोभ ग्रमी' का विधान किया गया है। वह फल ही इस उत्प्रेक्षरण को सफल बना रहा है। और साथ ही घोपरणा कर रहा है कि तुलसी की वाणी कवि की वाणी नहीं सरस्वती की देन है। यहां जिस अमृत का लोभ दिखलाया गया है वह राम के जीवन से कभी भी अलग नहीं हुआ। यदि अलग भी हुआ तो यह लोभ घटा नहीं अपितु बढा ही है। कहाँ तो यह दशा थी कि सीता को आशंका हुई तो उनके नूपुरों मे भी कवि के हृदय में मुखर होकर कुछ कह दिया। 'हमहि सीयपद जनि परिहरहीं।' और यहाँ यह परिस्थिति आ गई कि हम कहीं और तुम कही। अर्थात् सीता हरण के उपरांत राम और सीता का वियोग हो गया। परिणाम रूप मे राम की जो वेदना जगी उसका विवेचन, 'भाव वर्णन और रस निरूपण' शीर्षक के अंतर्गत किया गया है। वहाँ भी तुलसी ने रूपकातिशयोक्ति से विशेष काम लिया है। यहाँ दिखलाना यह है कि अभी सीता की रूप राशि के समक्ष जो चंद्रमा बापुरो और रंक दिखलाई देता है वही आज परिस्थिति के प्रताप से राम को केसरी के रूप में गोचर हुआ और राम ने भी उससे यह पाठ पढा कि मत्त नागों का विध्वंस हो गया और उसमे यह मुक्ताहल हाथ लगी जो सीता का शृंगार बना, पर है वह रूपक का प्रसंग ही।

गोस्वामी जी की उपमा मर्यादा की परिधि में बँधी हुई मिलती है। अपने राम के लिये महाकवि ने चंद्रमा की ही उपमा सर्वत्र चुनी। चंद्रमा पूर्व दिशा से निकलता है तो राम भी कौशिल्या रूपी पूर्व दिशा से उदय हो रहे हैं।

बंदउँ कौसिल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची॥
प्रगटेउ जेहि रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुषारू॥

यह रामचंद्र उदय तो कौशिल्या रूपी पूर्व दिशा से हुए अब उन्हें प्रकट भी होना चाहिए। प्रकट भी हुए पुष्पवाटिका मे।

लता भवन ते प्रकट भे, तेहि ओसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ।

जब रामरूपी चंद्र प्रकट हुआ तो उसे पूर्ण रूप से कही उदय भी होना चाहिए। पूर्ण उदय भी हुआ । कहाँ ? धनुषयज्ञ वाले प्रकरण मे—

प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे । जनु राकेश उदय भए तारे ।

जब राम विवाह कर आए तब भी गोस्वामी जी अपने रामचंद्र को नहीं भूले ।

सब विधि सब पुरलोक सुखारी । रामचंद्र मुख चंद्र निहारी ॥

राम, लक्ष्मण और सीता तीनों ही वन मार्ग मे पैदल चले जा रहे हैं तब भी यही राम के हेतु चंद्र की उपमा मिलती है ।

आगे राम लखन पुनि पाछे । तापस वेस विराजत आछे ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसी । ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ।
उपमा बहुरि कही जिय जोही । जनु विधु बुध बिच रोहिनि सोही ॥

तथा रामचंद्र जब १४ वर्ष उपरांत अवध में लौटकर आए तब भी महाकवि ने राम के लिये चंद्र की उपमा लिखकर ग्रंथ का उपसंहार किया ।

नारि कुमुदनी अवध सर, रघुपति विरह दिनेस ।
अस्त भए विकसित भई, निरखि राम राकेश ।

अवध मे रामराज्य रस भंग मे भाग लेनेवाली दो स्त्रियाँ है—मंथरा और कैकेई। उपमा सम्राट् दोनों के लिये ही अलग अलग उपमाओं का विधान कर रहे हैं । कैकेई के लिये 'साँपिनि' और मंथरा के लिये 'किराती' ।

कैकेई (उत्प्रेक्षा)—

मानहु सरोष भुजंग भामिनि विषम भाँति निहारई ।

मंथरा (उपमा)—

देखि लागि मधु कुटिल किराती । जिमि गव तकइ लेउँ केहि भाँती ॥

किराती शब्द लेती है इससे मनकी दुर्गी होती है । वह इन मक्खियों को जान लेनेवाली नहीं अपितु व्याकुलता ही उत्पन्न करती है और इसीलिये उसके लिये किराती और कैकेई चूंकि दशरथ की जान लेनेवाली है इस कारण उसके हेतु सांपिनि की उपमा, यह है गोस्वामी जी की उपमाओं की मार्मिकता । जो भी उपमा दी वह यों ही तुकबंदी के हेतु नहीं अपितु उसमें अनेक ऐसे गूढ़ विषय हैं जो शोध से ही ज्ञात हो सकते हैं ।

इसी प्रकार सीता को जब रावण हरण किए जा रहा है तो गोस्वामी जी ने दो विभिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न उपमाएं दी है । जब गृद्धराज जटायु ने जानकी का रावण के द्वारा हरी गई देखा तो कपिला गाय की, और हनुमान आदि वानरों के समीप जानकी ने अपना वस्त्र गिराया तो व्याध के वशीभूत मृगी की उपमा । शिकारी जब शिकार करके जाता है तो उसे कोई छोड़ता नहीं । सुग्रीव आदि ने भी देखा कि सीता आकाशमार्ग से विलाप करती हुई जा रही है किन्तु हस्तक्षेप नहीं किया । इसी लिये यहाँ शिकारी और मृगी का उदाहरण है ।

करति विलाप जात नभ सीता ।
व्याध विवस जनु मृगी सभीता ॥

कोई सज्जन किसी सीधी गाय को कसाई के हाथ में जाती देख कभी भी मौन न रहेगा । गीध भी जानकी को कपिला गाय के रूप में रावण रूप कसाई के हाथ मे देख मौन न रहे और उसकी रक्षा के निमित्त प्राण तक दे दिए । इसीलिये यहाँ कपिला गाय और कसाई का उदाहरण है ।

जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई ।

विदाई का दृश्य है । जनक बारात को विदा कर रहे हैं तब महाकवि सम्राट् ने उत्प्रेक्षा की—

सत्य गवन सुनि सब विलखाने ।
मनहु सांझ सरजिस सकुचाने ॥

यहाँ 'साँझ सरसिज' जो लिखा गया वह भी भावपूर्ण है । कमल सूर्य के अस्त होने पर संपुटित होता है । दशरथ भी सूर्यवंशी है । सूर्य अस्त होता है पश्चिम मे और वे सूर्यवंशी दशरथ भी पश्चिम की ओर अयोध्या मे जा रहे है । जनकपुर के अवध पश्चिम में है । और दशरथ के जाने से कमल रूपी जनकपुर के निवासी बड़े दुखी है । कैसी सुंदर उत्प्रेक्षागर्भित उपमा है जो गोस्वामी जी की कला मे सोने मे सुगध उत्पन्न कर रही है ।

कुशल कवि रूपक के द्वारा ही दृश्य खड़ा करते है और उसको भली-भाँति मन मे जमा भी देते है । उनकी करुणा और स्नेह की सुभग सरिता को भी देख लीजिए । प्रसंग चित्रकूट का ही है जो कठोर चित्रकूट पहले कोमल बना था वही अब आकुल अंबुधि बन गया है । इस साग रूपक मे गोस्वामीजी ने जो 'मनहु उठेउ अवधि अकुलाई' की उत्प्रेक्षा कर दी उससे काव्य की गति बढी अथवा मद हुई इस मीमासा मे हम नही पड़ते । हमारी दृष्टि में कोई भी सहृदय इसे अपने आप ही समझ सकता है कि साहित्य लेखाजोखा का वही खाता नही है उसमे तो बीच बीच में अनेक भाव भी उठते, बैठते और बढ़ते रहते है और उसके उल्लास में इतना अवकाश ही नहीं रहता कि हम किसी काल तक चुपचाप किसी आवेश का लेखाजोखा करते रहे और उसकी तरंगो से टकराकर तटस्थ पड़े रहें ।

तुलसी ने सरिता का रूपक बहुत बाँधा है और उसको भिन्न भिन्न रूप में दिखलाया भी खूब है । उन सभी रूपको पर यहाँ विचार करना व्यर्थ है । अभीष्ट तो यह है कि हम तुलसी के रूपको के महत्व को समझ ले । राम अवध को छोड़कर वन मे चल पड़े है तो तापस वेश मे, पर भावना राजा की ही है । इसी से जब वह प्रयाग मे पहुँचते है तो उन्हे तीर्थराज का ऐसा ही साक्षात्कार भी होता है । इस रूपक मे सिहासन, छत्र और चँवर

का जो रूप लिया गया है वह देखते ही बनता है। भला जहाँ ऐसा राजा होगा वहाँ दुःखदारिद्रय रह भी कैसे सकता है। राजा जिस सुहावने और अगम गढ़ में बैठा है उसपर तो किसी अन्य का अनुशासन होने से रहा।

क्षितिज पर राम की दृष्टि पड़ी तो मयंक दिखलाई दिया और उसने कुछ ऐसा उद्दीप्त किया कि राम अपने मंडल के बीच में बोल पड़े—

पूरब दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि, मृगपति सरिस असंक॥

भला राम जैसे वीर को इस सरिस से कैसे संतोष हो सकता है। उपमा दूर से देखने की वस्तु है वह अपने आप रूप धारण नहीं कर सकती। किंतु भाव की पूर्ति तो रूपक में ही खरी उतरती है। अतएव राम ने सतर्क होकर चंद्रमा पर विचार किया। यहाँ तक तो पुरुष सिंह ने सिंह को देखा और देखा बनचारी ससिकेसरी को किंतु, देखने में सरसता तो इसके आगे आई। जब उन्होंने देखा कि यह केसरी मत्त नागों के तम-कुंभों को यों ही नहीं फाड़ता उसे तो अपनी सुंदरी रात्रि का शृंगार भी करना होता है और वह रात्रि का ऐसा शृंगार करना चाहता है कि गजमुक्ताओं के बिना उसका काम ही नहीं चलता। आकाश में तारे क्या हैं उसी तमकुंभ से मुक्ताहल तो। जब चंद्र अंधकार को फोड़कर अपनी प्रिया के हेतु गजमुक्ता निकालता है तो राम भी अपनी प्रिया के हेतु क्या कुछ ऐसा नहीं कर सकते। उन्होंने किया और ऐसा किया कि मत्त तमकुंभ रावण का विनाश हो गया। तारा का उदय हुआ और सुंदरी का शृंगार भी हुआ। यह है तुलसी के भावमय रूपकों का भावसौंदर्य।

अब हम तुलसी की उपमा को और ही रूप में लेते हैं और उसके द्वारा यह बतलाना चाहते हैं कि गोस्वामीजी ने उपमा से भी बड़ा गहरा काम लिया। पात्रों की कुंजी उनकी उपमा ही है। वह जो कुछ भी लिखते हैं सोच समझकर ही लिखते हैं। उनका कथन है—

जोगवहि प्रभु सिय लखनहिं कैसे ।
पलक विलोचन गोलक जैसे ।
सेवहि लखन सीय रघुवीरहिं ।
जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहिं ॥

इसमे लक्ष्मण को जो अविवेकी पुरुष का उपमेय वतलाया है वह सहसा देखने पर वेतुका सा प्रतीत होता है पर यदि पूरे चरित्र को लिया जाय तो यह उनके चरित्र मे विल्कुल सत्य उतरता है । लक्ष्मण सीता और राम के सेवक हैं और सेवा उसी रूप मे करते है जैसे अविवेकी पुरुष अपने शरीर की । मानस मे न जाने कितने ऐसे स्थल आते हैं जहाँ इस विवेक-हीनता के कारण ही राम को उन्हे वरजना पडता है । यहाँ तक कि जब राम सीता को छोड़कर मृगवध मे निरत होते है तव लक्ष्मण को सचेत कर कहते हैं—

सीता केरि करहु रखवारी ।
बुधि विवेक वल समय विचारी ॥

पर विचारणीय यह है कि लक्ष्मण ने इसके विपरीत किया क्या। जव राम ने इनसे कहा कि तुम जो मेरी वात की उपेक्षाकर यहाँ चले आए, यह अच्छा नही किया। हो सकता है कि मेरे पीछे निशाचरों ने कुछ जाल रचा हो । तव इनसे कुछ कहते ही नही वना। हाँ, इतना तो अवश्य ही दीनता के साथ कह दिया —

गहि पद कमल अनुज कर जोरी ।
कहेहु नाथ कछु माहि न खोरी ॥

इसी उपमा के द्वारा तुलसी ने राजा ने दशरथ और राम के जोगवाने का भी प्रयोग किया है। वस जहाँ कभी तुलसी नें 'जोगवत' दिखलाई दे वहाँ

सतर्क होकर देख लेना चाहिए कि तुलसी क्या कहना चाहते हैं और उनकी उपमा वहाँ क्या करतब दिखलाती है। अतः भावदृष्टि से भी तुलसी की उपमा कुछ कम चोखी नहीं है।

जहाँ किसी वस्तु को देखकर संशय उत्पन्न हो और किसी वस्तु का निश्चय न हो रहा हो वहाँ संदेह अलंकार होता है। अथवा, की, धौं इत्यादि संदेहसूचक शब्दों के आने से संदेहालंकार होता है, जैसे—

की तुम हरिदासन्ह महँ कोई।
मोरे हृदय प्रीति अति होई॥

इसी प्रकार भ्रम अलंकार में भ्रम से किसी वस्तु को मान लेने का वर्णन होता है जैसे—

आरतगिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥
जाहु वेगि संकट अति भ्राता। लछिमन विहसि कहा सुनु माता॥

विरोधमूलक अलंकारों का प्रयोग—

इन अलंकारो मे विषमता या विरोध का चमत्कार होता है। जैसे असंगति, विषम और विरोधाभास आदि।

जहाँ बेमेल वस्तुओ और घटनाओ का वर्णन हो वहाँ व्याघात अलंकार होता है जैसे—

सीतल सिख दाहक भइ कैसे।
चकइहि सरद चंद निसि जैसे॥

यहाँ चकई और सरद चंद दो बेमेल वस्तुओ का वर्णन है अतएव व्याघात अलंकार है।

ऐसे ही असंगति मे कारण और कार्य की प्रतिकूलता का वर्णन होता है। जैसे—

और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोग ।
अति विचित्र भगवंत गति, को जग जाने जोग ।।

विरोधाभास में द्रव्य क्रिया गुण अथवा जाति में विरोध की प्रतीति कराई जाती है। जैसे—

गरल सुधा रिपु करहि मिताई ।
गोपद सिंधु अनल सितलाई ।
गरुअ सुमेरु रेनु सम ताही ।
राम कृपा करि चितवहि जाही ।।

शृंखलामूलक अलंकारों के प्रयोग—

इसमें कारणमाला, एकावली, और सार आदि अलंकार आते है ।

जहाँ पर इस प्रकार का वर्णन होता है कि कारण से उत्पन्न कार्य आगे कारण बनता जाय या कार्य का जो कारण है वह कार्य होता जाय वहाँ पर कारणमाला अलंकार होता है। जैसे—

पाट कीट ते होइ तेहि ते पाटंबर रुचिर ।

एकावली और सार आदि अलंकारों के उदाहरण गोस्वामीजी की रचनाओं में प्रायः बहुत कम और एकाध ही खोजने पर उपलब्ध हो सकते हैं ।

कार्यकारण संबंध वाले अलंकारों के प्रयोग—

इनमें विभावना, हेतूत्प्रेक्षा, और अतिशयोक्ति आदि अलंकार आते हैं ।

जहाँ किसी घटना के कारण के संबंध में कोई विलक्षण कल्पना की जाय वहाँ विभावना होती है जैसे—

मुनि तापस जिन्ह ते दुख लहहीं।
ते नरेस विनु पावक दहही॥

अतिशयोक्ति मे किसी की अतिशय सराहना की जाती है। गोस्वामीजी साधु महिमा के प्रसंग मे इस अलंकार का बड़ा ही सुदर प्रयोग कर रहे हैं।

विधि हरिहर कवि कोविद वानी।
कहत साधु महिमा सकुचानी॥

इसी प्रकार जहाँ किसी वस्तु का हेतु न हो वहाँ उस वस्तु के हेतु की कल्पना की जाय वहाँ पर हेतूत्प्रेक्षा होती है। इसके भी दो भेद हैं।

१—सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा

२—आसिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो जहाँ हेतूत्प्रेक्षा होती है जैसे—

आगे देखि जरत रिस भारी।
मनहु रोप तरवारि उवारी॥

ऐसे ही जहाँ उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध न हो वहाँ असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा होती है। जैसे—

सोहत जनु जुग जलज सनाला।
ससिहि सभीत देत जयमाला॥

न्यायमूलक वर्ग की अलंकारयोजना—

इसमे यथासंख्या, काव्यलिग, तद्गुण और लोकोक्ति आदि अलंकार प्रयोग में आते है।

जहाँ पर युक्ति द्वारा कारण देकर पद या वाक्य के अर्थ का समर्थन किया जाता है वहाँ पर काव्यलिग अलकार होता है जैसे—

श्याम गौर किमि कहौं बखानी।
गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

ऐसे ही समीपवर्ती वस्तु के गुण को अपना लेने की विशेषता का जहाँ वर्णन होता है वहाँ पर तद्गुण अलंकार होता है।

सिय तुव रँग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौ चपक होत॥

इस प्रकार गोस्वामीजी की रचनाओं मे न्यायमूलक अलकारो के प्रयोग भी बड़ी ही सुंदरता से प्राप्त हो जाते है।

निषेधमूलक अलंकारों के प्रयोग--

इसमें अपह्नुति, विनोक्ति, व्यतिरेक आदि अलकार आते है। जहाँ किसी वस्तु को देखकर संशय उत्पन्न हो और किसी वस्तु का निश्चय न हो रहा हो तो वहाँ संदेह अलकार किंतु जहाँ किसी बात को छिपाकर बहलावे से दूसरी बात कहकर संतोष करा दिया जाता है वहाँ अपह्नुति अलकार होता है। जैसे--

मेरे प्राननाथ सुत दोऊ।
तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ।

विनोक्ति अलंकार में प्रस्तुत वस्तु किसी के विना हीन और रम्य प्रतीत होती है। जैसे--

जिय विनु देह नदी विनु वारी।
तैसेहि नाथ पुरुष विनु नारी।

जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ विशेषता अथवा न्यूनता का प्रदर्शन किया जाय वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। जैसे--

कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा।
ब्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा।

गूढ़ार्थप्रतीतिमूलक अलंकारों के प्रयोग—

इसमें पर्यायोक्ति, समासोक्ति, व्याजनिंदा, व्याजस्तुति आदि अलंकार आते हैं।

जहाँ कोई भी बात सीधे शब्दों में न कह कर हेरफेर अथवा ढंग से कही जाय या किसी बहाने से काम साधा जाय वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है।

देखन मिस मृग बिहग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़इ प्रीति न थोरि॥

समासोक्ति में प्रस्तुत वर्णन में अप्रस्तुत का ज्ञान होता है जैसे—

लोचन मग रामहि उर आनी।
दीन्हें पलक कपाट सयानी।

इसी प्रकार जहाँ प्रत्यक्ष वर्णन में तो निंदा की प्रतीति हो पर परोक्ष रूप से स्तुति अभिप्रेत हो वहाँ व्याजस्तुति होती है। उदाहरण—

नारद सिख जे सुनहिं नर नारी।
अवसि होहिं तजि भवन भिखारी।
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा।
आपु सरिस सबही चह कीन्हा।

इसके विपरीत जहाँ पर स्तुति करने के विपरीत भी वास्तव में निंदा का ही प्रदर्शन हो वहाँ व्याजनिंदा होती है। जैसे—

जानऊँ मै तुम्हारि प्रभुताई।
सहसबाहु सन परी लराई।
समर बालि सन करि जस पावा।
सुनि कपि बचन बिहँसि बिहरावा।

इस प्रकार इन सभी विभिन्न वर्गों के अलंकारों के प्रयोग गोस्वामी जी की रचनाओं में बड़ी सुंदरता से पाए जाते है।

अनेक अलंकारों के बहुरंगी प्रयोग--

गोस्वामीजी की कला में अनेक अलंकारों के बहुरंगी प्रयोग देखते ही बनते है। यहाँ इस विषय के एकाध उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे है।

पुष्पवाटिका में गोस्वामीजी ने एक स्मरण अलंकार में इस प्रकार से उत्प्रेक्षा का भी सन्निवेश कर उपमा के साथ उस स्मरण को अभिव्यक्त करके अपनी इस प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

सुमिरि सीय नारद बचन, उपजी प्रीत पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु सिसुमृगी सभीत॥

इसी प्रकार कैकयी के कोपभवन के प्रकरण में गोस्वामीजी ने रूपक में उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकारों का सन्निवेश किया है।

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढी।
मानहु रोप तरंगिनि बाढ़ी।
पाप पहार प्रगट भइ सोई।
भरी क्रोध जल जाइ न जोई।
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा।
भँवर कूबरी बचन प्रचारा।

दाहत भूप रूप तरु मूला।
चली विपति वारिधि अनुकूला।

इस प्रकार गोस्वामीजी की रचनाओं में अनेक अलंकारों के बहुरंगी प्रयोग मिलते हैं। जैसे उपर्युक्त उदाहरणों में स्मरण के साथ उत्प्रेक्षा और द्वितीय में रूपक के साथ उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों के प्रयोग। इस प्रकार के प्रयोग से गोस्वामीजी की कला सौंदर्य से पूर्ण हो उठी है।

तुलसी के अलकारप्रयोग की विशेषता---

गोस्वामी तुलसीदास अलंकार शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे। जिसका अधिकांश परिचय हमें गत विवेचन में प्राप्त हो चुका है। बरवै रामायण में गोस्वामी जी ने बड़े ही ललित ढंग से छोटे छोटे अलंकारों का वर्णन किया है। सीता का सौंदर्य और विरहवर्णन आदि अद्भुत आलंकारिक सौंदर्य से परिपूर्ण है।

गोस्वामीजी की अलंकारयोजना के इन विविध उदाहरणों को देखते हुए यह सभी स्वीकार करेंगे कि उन्होंने अलंकारों का प्रयोग कहीं भी चमत्कार प्रदर्शन के हेतु नहीं किया। प्रत्युत उन्होंने कहीं तो उन्हें भावोत्कर्ष का सहायक बनाया है और कहीं वस्तुओं के रूप गुण क्रिया आदि की अनुभूति को तीव्र और सजग करने का साधन। इसके अतिरिक्त एक विशेष बात और भी है। वह यह कि तुलसी का अलंकारविधान साधुता से कहीं भी अछूता नहीं रहा है। इसी से उनकी अलंकारयोजना प्रायः उपदेश समन्वित ही मिलती है। इस प्रकार गोस्वामीजी का अलंकारविधान बड़ा ही मनोरम बन पड़ा है। वर्ण्य विषय भी इन अलंकारों के कारण खिल उठा है। गोस्वामीजी की रचनाओं में अलंकार लाने का प्रयास नहीं किया गया है। अपितु वे स्वतः ही आ गए हैं। इसी से उनमें स्वाभाविकता भी आ सकी है। उनके अलंकार कथा और भाव वर्णन में बाधा भी नहीं पहुँचाते और जिससे वर्णन का प्रवाह भी अनवरुद्ध गति से प्रवाहित होता रहता है। लंबे लंबे साग रूपकों में भी यही बात पाई जाती है।

सब अलंकार आने पर भी गोस्वामीजी की रचना ऐसी नहीं है कि पहले अलंकार का पता लगाया जाय तब अर्थ खुले। जो अलंकार का नाम तक नही जानते वह भी अर्थ ग्रहण का पूरा आनंद प्राप्त करते है। एक बिहारी हैं कि पहले नायिका का पता लगाइए, तब कही अलंकार निश्चित कीजिए और तब इन दोनो की ही सहायता से प्रसंग की ऊहा कीजिए। तब कही अर्थ से भेट हो। गोस्वामीजी की इस अद्भुत विशेषता का कारण है उनकी प्रबंधपटुता। गोस्वामीजी की अलकारयोजना की विशेषताओ को हम निम्नलिखित शीर्षको के अतर्गत ले सकते हैं।

१—अलंकार सहज रीति से आए है।

२—लोक जीवन और प्रकृति के देखे सुने उपमान चित्र हैं।

३—रूप और क्रिया का सजीव चित्रण करनेवाले है।

४—भाव की तीव्रानुभूति करानेवाले है।

५—प्रेरक और स्फूर्ति देनेवाले हैं।

६—उक्ति को स्मरणीय बनानेवाले है।

७—नाद-सौंदर्य का सृजन करनेवाले है।

अलंकार का स्वाभाविक प्रयोग—

यह पहले ही कहा जा चुका है कि गोस्वामीजी की रचनाओ में अलकार सहज और स्वाभाविक रीति से आए है उन्हे किसी भी प्रकार से काव्य मे ठूसने का प्रयत्न नही किया गया है। यहाँ इसे सप्रमाण सिद्ध करने के हेतु हम गोस्वामीजी के द्वारा उपलब्ध उनके मानस में स्मरण अलंकार पर ही विचार करेगे ताकि यह सिद्ध हो जाय कि गोस्वामीजी की रचना मे स्वाभाविक रूप से अलंकार कैसे आ बैठे है।

'जहाँ किसी वस्तु को देखकर, स्वप्न के द्वारा, कुछ सोचकर अथवा किसी अन्य घटना का स्मरण हो आए वहाँ स्मरण अलकार होता है।

प्राची दिसि ससि उएउ सुहावा।
सिय मुख सरिस देखि सुख पावा॥

एक और भी स्मरण अलंकार का अति विचित्र उदाहरण लीजिए और उसका रसास्वादन कीजिए--

सबरी देखि राम गृह आए।
मुनि के वचन समुझि जिय भाए।

मुनि के वचन समुझि जिय भाए' में भाव यह है कि महाराज कुमार राम को प्राप्त करके भक्तिरूपासबरी को महात्मा मतंग ऋषि के उन वचनों का स्मरण हो आया जो कि उन्होंने पहले बाल्यकाल मे ही शबरी से कहे थे कि तुझे श्रीराम का दर्शन होगा। इसलिये सबरी ने जैसे ही राम को देखा उसे मुनि के वचनों का स्मरण हो आया। इन चार अक्षरों 'मुनि के वचन समुझि जिय भाए' मे महाकवि ने स्मरण अलंकार उठाकर रखा है। यह काव्य का बड़ा ही अनूठा अलंकार है। 'आखर अरथ अलंकृति नाना' के आधार पर अलंकार से युक्त कविता की शोभा होती है। हमारा विचार है कि शायद ही ऐसा कोई अलंकार हो जिसका प्रयोग गोस्वामीजी ने न किया हो। इसी सिद्धांत के अनुकूल यहाँ स्मरण अलंकार अपनी काव्यश्री को बिखेर रहा है। यों तो साहित्यकारों, महाकवियो ने बड़े ही सुंदर स्मरण अलंकारो की सृष्टि की है। अर्थात् अनेक प्रकार से स्मरण हो आने का दृश्य खीचा है किंतु गोस्वामीजी ने जैसे सुंदर अलंकारों का वर्णन किया है वह अद्भुत और सूक्ष्म भी है। एकाध स्थानो पर तो गोस्वामीजी ने इस अलंकार मे वह चमत्कार दिखलाया है जहाँ अन्य कवियो की गति होना ही कठिन है। यहाँ गोस्वामीजी के स्मरण अलंकार पर तो पीछे से विचार किया जाएगा। पहले अन्य महाकवियों द्वारा रचित एक आध उदाहरणों में इस अलंकार की सौंदर्य छटा का अवलोकन कीजिए।

भगवान् कृष्ण द्वारा भेजे संदेश में ऊधव ने गोपिकाओं को ज्ञानोपदेश दिया। उस उपदेश को सुनने के पश्चात् श्रीकृष्ण के प्रेममय रूप को धारण करने-वाली गोपिकाओं ने जो उत्तर ऊधो को दिया वह बड़े ही सुंदर स्मरण अलकार में प्रस्तुत किया गया है। गोपिकाएँ कहती है—

ताः किं निशाः स्मरति यासु तथा प्रियाभिः।
वृंदावने कुमुद कुन्द शशांक रम्ये ॥
रेमे क्वणण्णूपुर रास गोष्ठ्यां।
यस्माभिरीडित मनोज्ञकथः कदाचित् ॥

अर्थात् जब वृंदावन में कुमुद, कुंद आदि के फूले हुए फूलों पर चंद्रमा की चांदनी बिछी होती थी तब जिन रात्रियों में रासमंडल बनाकर हम प्रियाओ के साथ उन्होंने विहार किया था। विहार के समय उनके और हमारे चरणो के नूपुर बजते थे और हम उन्ही की मनोहर गाथाएँ गाते थे। भला श्रीकृष्णचंद्र भी उन रात्रियो का स्मरण करते है। कितना सुदर स्मरण अलकार है। अब तुलसी के स्मरण अलकार का एक उदाहरण लीजिए—

सुमिरि सीय नारद वचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित विलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत ॥

+ + +

बीच वास करि यमुनहि आए।
निरखि नीरु लोचन जल छाए ॥

यह प्रमाण बड़े ही गूढ़ भाव रखते है पर विस्तार से इनकी यहाँ विशद व्याख्या नहीं की जा रही है। केवल दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।

एक स्मरण अलंकार गोस्वामीजी का यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है जिसके ऊपर हमें गर्व है कि इतनी सूक्ष्म उक्तियो के साथ शायद ही किसी कवि ने स्मरण अलंकार लिखा हो। यहाँ गोस्वामीजी ने अपनी वह कला दिखलाई

है जो अपना सानी नहीं रखती । सुमंत राम को जंगल भेजकर वापस आ गए हैं और दशरथ को इस प्रकार प्रणाम कर रहे हैं—

देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेउ दंड प्रनाम ।
सुनत उठेउ व्याकुल नृपति, कहु सुमंत कहँ राम ॥

इस दोहे के स्मरण अलंकार के संबंध में सूक्ष्म भाव यह है कि प्रणाम शब्द के अंत में म अक्षर आता है और राम का भी अंतिम अक्षर म है । अतः सुमंत ने दशरथ को प्रणाम किया किंतु राम रटनेवाले महाराज के कान प्रणाम शब्द के अंत में म अक्षर को सुनकर विक्षिप्तावस्था में चौंक पड़े—कहु सुमंत कहँ राम । ध्यान देने के योग्य बात तो यह है कि चौपाई, दोहे, छंद की तो बात ही अलग है । महाकविसम्राट् ने अक्षर राम में स्मरण अलंकार रक्खा है । यह महाकवि गोस्वामी तुलसीदासजी के अप्रस्तुत विधान की बहुत बड़ी विशेषता है कि उन्होंने एक बहुत बड़ी बात का दृश्य एक अक्षर में प्रत्यक्ष कर दिया । अन्य कवियों ने शब्दों और पंक्तियोंवाले पूरे छंद में स्मरण अलंकार रक्खा है किंतु गोस्वामीजी ने तो अक्षरों में स्मरण अलंकार रक्खा यही उनकी कला की विशेषता है । अक्षर में अलंकार का आगमन इस बात का परिचायक है कि गोस्वामीजी की रचनाओं में अलंकार लाने का प्रयास नहीं किया गया, वे सहज और स्वाभाविक रीति से ही आ गए हैं । अलंकार लाने का प्रयास कई पंक्ति में ही संभव है; अक्षर में नहीं, अतः अक्षर में अलंकार आना इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि अलंकार महाकवि की कृतियों में सहज आ गए हैं । उनके लाने का प्रयास नहीं किया गया है ।

लोकजीवन और प्रकृति के देखेसुने उपमान—

गोस्वामीजी ने अपने अलंकारविधान को लोकजीवन और प्रकृति के देखे-सुने उपमान चित्रों से सजीव किया है यह भी उनकी अलंकार योजना की एक

विशेषता है। राम वनमार्ग मे भ्रमण करते हैं उस समय के प्रयुक्त उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार लोकजीवन के देखे सुने चित्र है, जैसे समुद्र आदि। ऐसे ही गोस्वामीजी ने कैकेयी के कोपभवन में जो सरिता का रूपक बाँधा है—जिसकी विवेचना पीछे की जा चुकी है—वह भी प्रकृति का देखा और सुना हुआ ही सजीव चित्रण है। इसी प्रकार महाकवि ने सीताजी की चेष्टाओ की जो विवेचना की है वह भी लोकजीवन के अनुरूप हुई है—उपमा अलकार के माध्यम से—

बहुरि वदन विधु अंचल ढाँकी।
पिय तन चितइ भौंह कर बाँकी॥

खजन मजु तिरीछे नयननि।
निजपति कहेहु तिन्हहि सिय सैननि॥

इसी प्रकार से राम सीता के विवाह मे गोस्वामीजी उपमामिश्रित रूपक के माध्यम से वर द्वारा कन्या के सिंदूरदान का लोकजीवन का देखासुना चित्र उपस्थित करते हुए कहते है—

प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरी।
नेग सहित सब रीति निवेरी।

राम सीय सिर सेंदुर देही।
सोभा कहि न जाति बिधि केही॥

अरुन पराग जलजु भरि नीके।
ससिहि भूष अहि लोभ अमी के॥

ऐसे ही धनुषयज्ञ मे जानकी को धनुष न टूटने के फलस्वरूप जो चिंता है उसे रूप प्रदान करते हुए गोस्वामीजी प्रस्तुत दोहे मे कहते है—

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु विधु मंडल डोल ॥

इस उदाहरण मे गोस्वामीजी ने सीताजी के संकोच की बड़ी ही सुंदर व्यंजना की है। इसमे सीताजी की चिंता को रूप देने के हेतु गोस्वामी जी ने उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से जो उपमान मीन और चंद्र के लिए है वे लोक के देखे सुने प्रकृतिचित्र है जिनसे काव्य मे सहज सरसता और कला मे प्रभावात्मकता आ गई है।

रूप और क्रिया के सजीव चित्रण—

रूप—रूप और क्रिया दोनों का अनुभव तीव्र करने के हेतु अधिकतर सादृश्यमूलक उपमा आदि अलंकारों का ही प्रयोग होता है। रूप का अनुभव प्रधानतः चार प्रकार का होता है।

१—अनुरजक
२—भयावह
३—आश्चर्यकारक
४—ध्रुवोत्पादक

इस प्रकार के अनुभव मे सहायक होने के हेतु आवश्यक यह है कि प्रस्तुत वस्तु और आलकारिक वस्तु में बिंब-प्रतिबिंब-भाव हो अर्थात् अप्रस्तुत (कवि द्वारा लाई हुई) वस्तु प्रस्तुत वस्तु से रूप, रंग आदि मे मिलती जुलती हो। और उससे उसी भाव के उत्पन्न होने की सभावना हो जो प्रस्तुत वस्तु से उत्पन्न हो रहा हो। अब देखिए तुलसीदासजी के प्रयुक्त अलंकार कहाँ तक इन बातों को पूरा करते है।

सीता के जयमाल पहनाने की शोभा देखिए—

सतानंद सिष सुनि पाँय परि पहराई माल ।
सिय पिय हिय सोहत सोभई है ॥

मानस ते निकसि विसाल सु तमाल पर।
मनहु मराल पाँति बैठी वनि गई है॥

इस उत्प्रेक्षा मे श्रीराम के शरीर और तमाल मे श्यामता के विचार से ही बिंव-प्रतिबिंव-भाव है। आकृति का सादृश्य नही है, पर मरालपाँति और जयमाल मे वर्ण और आकृति दोनों के सादृश्य से बिंव-प्रतिबिंव-भाव बहुत पूर्णता को पहुँचा हुआ है। यहाँ सबसे बढ़कर तो बात यह है कि तमाल पर बैठी मरालपंक्ति का नयनाभिरामत्व कैसे प्राकृतिक क्षेत्र मे सौदर्य संग्रह करके, गोस्वामी जी मेल रखने के लिये लाए है।

इसी ढंग की एक और उत्प्रेक्षा है। रणक्षेत्र में राम के दूर्वादल श्याम शरीर पर रक्त की जो छीटें पड़ी है वे कैसी लगती है—

सोनित छीट छटान जटे तुलसी प्रभु सोहे महाछवि छूटी।
मानो मरक्कत सैल विसाल मे फैलि चली बर वीर वहूटी॥

इसमे भी रक्त की छीटो और वीरवहूटियो मे वर्ण और आकृति दोनों के विचार से बिंव-प्रतिबिंव प्रभाव है। इसी प्रकार देखिए तट पर से खड़े होकर देखनेवाले को गंगा यमुना के संगम की छटा कैसी दिखलाई पड़ती है—

सोहे सितासित को मिलिवो सरसै हुलसै हिय हेरि हिलोरे।
मानो हरे तृन चारु चरे बगरै सुरधेनु के धौल कलोरे॥

एक और सुंदर उत्प्रेक्षा है—

लता भवन ते प्रकट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल विधु, जलद पटल विलगाइ॥

इस उत्प्रेक्षा में मेघखंड के वीच से प्रकट होते हुए चंद्रमा का मनोरम

दृश्य लाया गया है जो प्रस्तुत दृश्य की मनोहारिता के अनुभव को बढ़ानेवाला है। नेत्र शीतल करने का गुण भी राम-लक्ष्मण और चंद्रमा दोनों में है।

रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग बहुत से कवियों ने इस ढंग से किया है कि वह एक पहेली सी हो गई है पर गोस्वामी जी ने उसे अपनी प्रबंधधारा के भीतर बड़े ही स्वाभाविक ढंग से बैठाया है। ऐसे ढंग से बैठाया है कि वह अलंकार जान ही नहीं पड़ती क्योंकि उसमें अप्रस्तुत भी वन के भीतर प्रस्तुत समझे जा सकते हैं। सीता के वियोग में वन वन फिरते हुए राम कहते हैं—

खंजन सुक कपोत मृग मीना।
मधुप निकर कोकिला प्रबीना।
कुंद कली दाड़िम दामिनी।
कमल सरद ससि अहिभामिनी।
बरुन पास मनोज धनु हंसा।
गज केहरि निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं।
नेकु न संक सकुच मन माहीं।

गोस्वामीजी की प्रबंधकुशलता विलक्षण है जिससे प्रकरणप्राप्त वस्तुएँ अलंकार सामग्री का काम भी देती चलती हैं। इससे होता यह है कि अलंकारों में कृत्रिमता नहीं आने पाती। अलंकार के निर्वाह का पूरा ध्यान वे रखते थे। हिरन के पीछे दौड़ते हुए राम को पंचशर कामदेव बनाना है। इसी हेतु देखिए वे किस प्रकार शरों की गिनती पूरी करते हैं—

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि पानि सरासन सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया तुलसी छवि सो बरनै किमि कै॥
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।
न डगैं, न भगैं, जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक हैं॥

प्रकरणप्राप्त वस्तुओं के भीतर से ही वे प्रायः अलंकार की सामग्री चुनते हैं। इस निदर्शना में उसका एक और सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। विश्वामित्र के साथ जाते हुए बालक राम लक्ष्मण उनकी नजर बचाकर कहीं धूल कीचड़ मे खेल भी लेते है जिसके दाग कही कही बदन पर दिखलाई देते हैं—

सिरनि सिखंड सुमनदल मंडल बाल सुभाय बनाये।
केलि अंक तनु रेनु पंक जनु प्रकटत चरित चुराये॥

कवि लो। कभी कभी दूर दूर की उड़ान भी भरा करते हैं। गोस्वामीजी ने कही कही ऐसा किया है। सीता के रूपवर्णन में यह अतिशयोक्ति देखिए—

जौ छबि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूपमय कच्छपु सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू।
मथै पानि पंकज निज मारू॥
एहि विधि उपजै लच्छि जब, सुंदरता सुख मूल।
तदपि संकोच समेत कवि कहहि सीय समतूल॥

रूप संबंधी एकाध उक्तियाँ और प्रस्तुत की जा रही है—

सम सुबरन सुषमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर॥

× × ×

केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकता करत उदोत॥

जहाँ वस्तु या व्यापार अगोचर होता है वहाँ अलंकार उसके अनुभव में गोचर रूप प्रदान करके सहायता करता है। जैसे यदि कोई आनेवाली विपत्ति

या अनिष्ट का कुछ भी ध्यान न करके अपने रंग मे मस्त रहता है और कोई उसको देखकर कहे—'चरै हरित तृन बलि पसु जैसे' तो इस कथन से उसकी दशा का प्रत्यक्षीकरण कुछ अधिक हो जायगा जिसमे भय का सचार पहले से कुछ अधिक हो सकता है।

भवबाधा कहने से कोई विशेष रूप सामने नहीं आता। सामान्य अर्थ-ग्रहण मात्र हो जाता है। इससे गोस्वामीजी उसे व्याल का गोचर रूप देते है और परिकराकुर का अवलबन देते हुए कहते हैं—

तुलसिदास भवव्याल ग्रसित तव सरन उरग रिपुगामी।

क्रिया—

क्रिया की तीव्रता का अनुभाव कराने हेतु इस ललितोपमा का प्रयोग हुआ है—

मारुत नदन मारुत को मन को खगराज को वेग लजायौ।

नीचे लिखे रूपक मे उपमान और उपमेय का अनुगामी एक ही धर्म बड़ी सुदर रीति से आया है—

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी।
वचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने।
कपटी भूप उलूक लुकाने॥

इसमें ध्यान देने की पहली बात यह है कि क्रिया का सादृश्य है। दूसरी बात है कि यद्यपि यहाँ सकुचना और लज्जित होना आए है पर रूपक का उद्देश्य इन भावो का उत्कर्ष दिखलाना नहीं है बल्कि एक साथ इतनी भिन्न क्रियाओं का होना ही दिखलाना है।

एक ही क्रिया का संबध अनेक पदार्थों से दिखाती हुई यह तुल्योगिता भी बड़ी ही सटीक बैठी है।

सब कर संसउ अरु अग्यानू ।
मंद महीपन्ह कर अभिमानू ॥
भृगुपति केरि गरब गरुआई ।
सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई ॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा ।
रानिन्ह कर दारुन दुख दावा ॥
संभु चाप बड़ बोहितु पाई ।
चढ़े जाइ सब संगु बनाई ॥

एक और उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है जिसमें सहोक्ति द्वारा एक ही क्रिया (धनुर्भंग) का कैसा विशद संग्राहक रूप दिखलाया है—

गहि करतल मुनि पुलक सहित कौतुकहि उठाइ लियो ।
नृपगन मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहि दियो ॥
आकरष्यो सियमन समेत हरि हरष्यो जनक हियो ।
भंज्यो भृगुपति गर्व सहित तिहुँ लोक विमोह कियो ॥

परिणाम का स्वरूप आगे रखकर कर्म की भयंकरता के अनुभव कराने का कैसा गहन प्रयत्न इस अप्रस्तुत प्रशंसा मे दिखलाई पड़ता है—

मातु पितहि जनि सोच बस करसि महीस किसोर ॥

इसी प्रकार कर्म के स्वरूप को एकबारगी नजर के सामने लाने के हेतु ललित अलंकार द्वारा उसका यह गोचर रूप सामने रखा है—

यहि पापिनिहि बूझि का परेऊ ।
छाइ भवन पर पावक धरेऊ ॥

इस प्रकार गोस्वामीजी की अलंकारयोजना में रूप और क्रिया-कलाप का सजीव चित्रण हुआ है।

भाव की तीव्रानुभूति--

गोस्वामीजी के अलंकार भाव की तीव्रानुभूति करानें मे पूर्ण सफल रहे हैं। जैसा कि हम पीछे विस्तार से स्पष्ट कर चुके है। अतएव यहाँ एकाध उदाहरण ही देकर यह प्रकरण को समाप्त किया जा रहा है।

यह रूपक रति भाव की अनन्यता को कितनी सुदरता से दिखला रहा है—

तृपित तुम्हरे दरस कारन चतुर तुलसीदास।
वपुप वारिद वरपि छविजल हरहु लोचन प्यास॥

दो भावो के छंद का कैसा सुंदर और स्पष्ट चित्र इस रूपक मे मिलता है---

मन अगहुड़ तनु पुलक सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर।
गड़त गोड़ मानो सकुच पंक महँ कढत प्रेम वल धीर॥

इसके अतिरिक्त गोस्वामीजी के अलकार प्रेरक और स्फूर्ति देने तथा उक्ति को स्मरणीय वनानेवाले हैं। इसके अतिरिक्त उनके अलंकार-विधान की एक यह भी विशेपता है कि वह नादसौंदर्य की सृष्टि करने वाला है। जैसे—

ककन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥

इसमे कंकन, किंकिनि और धुनि आदि मे एक प्रकार का नाद है और अनुप्रास द्रष्टव्य है। अत गोस्वामीजी की अलकार योजना इस प्रकार सभी विशेपताओ से युक्त और सर्वगुणो से संपूर्ण है।

ध्वनि—

काव्यशास्त्रीय परिभाषा के अनुसार वाच्य से अधिक उत्कर्ष चारुता-प्रतिपादक व्यंग्य को ध्वनि कहते है दूसरे शब्दो मे जिस काव्य मे व्यंग्यार्थ ही मुख्य रहता है वही उत्तम काव्य अथवा ध्वनि काव्य कहा जाता है। गोस्वामीजी ध्वनि के मर्म से पूर्ण परिचित थे। अतः उन्होने अपने काव्य मे ध्वनि के भी यथोचित प्रयोग किए है। वैसे तो ध्वनि का क्षेत्र विस्तृत है और इसके अनेको भेदोपभेद माने जाते है पर हम यहाँ विशेष विवरणो मे न जाकर ध्वनि के प्रधान भेदो मे से कुछ दृष्टांतो द्वारा तुलसी की कला मे ध्वनि का उत्कर्ष दिखाने का प्रयत्न करेंगे।

अत्यत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि—

अविवक्षित वाच्य ध्वनि के द्वितीय भेद अर्थात् अत्यत तिरस्कृत वाच्य-ध्वनि का यह उदाहरण देखिए—

> वाउ कृपा मूरति अनुकूला।
> बोलत वचन झरत जनु फूला॥

यह परशुराम के प्रति लक्ष्मण की उक्ति है। यहाँ कृपा अनुकूल और मूर्ति फूल अपने अपने वाच्यार्थ को छोड़ तद्विपरीत अर्थ का वोध कराते है। अर्थात् लक्ष्मण के क्रोध को व्यजित करते है। इतना सुदर व्यग्य संभवतः अन्यत्र दृष्टिगोचर न हो। इसी प्रकार—

> गरव करहु रघुनंदन जनि मनु माँहि।
> देखहुँ आपनि मूरति सिय कीं छाँहि॥

छाँह काली होती है। राम का स्वरूप भी श्याम वर्ण का है अतएव व्यग्य है कि राम का सुदर से सुदर स्वरूप सीता की छाँह के सदृश है।

आर्थी व्यंजना

आर्थी व्यंजना मे अर्थ शब्द पर निर्भर नही रहता अतः व्यंग्यार्थ होता है। जो शब्दशक्ति वक्ता, बोद्धव्य, वाक्य, अन्यसन्निधि, वाच्य प्रकरण; देश काल, काकु आदि की विशेषता के कारण व्यग्यार्थ की प्रतीती कराती है वह आर्थी व्यंजना कहलाती है। इनमें से एकाध के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे है--

वाच्यार्थ से (वक्ता बोद्धव्य)

पति देवता सुतीय महु, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकँहि कहि, सहस सारदा सेस ।।

यहाँ सीता के कहने के कारण व्यंग्यार्थ महत्वपूर्ण है।

काकु की विशेषता से--

मै सुकुमारि नाथ वन जोगू।
तुम्हहि उचित तप मो कहँ भोगू ।।

अर्थांतर सक्रमित वाच्य ध्वनि --

जिस ध्वनि में वाच्यार्थ अपना पूर्ण तिरोभाव न करके अपना अर्थ रखते हुए भी अन्य अर्थ मे संक्रमण करता है वह अर्थातर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। जैसे—यह घर अच्छा है। यहाँ पर घर का तात्पर्य केवल घर नही, कुल, समृद्धि आदि से भी है, जो उपादान लक्षणा से सिद्ध होता है। व्यंग्यार्थ हुआ संबंध करने लायक है। इसी प्रकार--

सीताहरन तात जनि कहेउ पिता सन जाइ।
जो मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ।।

यहाँ पर राम शब्द का अर्थ 'शंकर का धनुष तोडनेवाले राक्षसों का नाश करनेवाले अद्भुत पराक्रमी' है। व्यंग्यार्थ हुआ कि रावण का नाश भी शीघ्र होगा। यह व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारपूर्ण होने से अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि है। इस ध्वनि में व्यंग्यार्थ उपादान लक्षणा पर आधारित है।

अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि--

जिस ध्वनि मे वाच्यार्थ का सर्वथा त्याग अथवा तिरस्कार हो जाता है वह अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है। यह लक्षण लक्षणा पर आधारित है। उदाहरण—

अवसि हौ आयसु पाइ रहौगो।
जन्म कैकेयी कोख कृपानिधि, क्यों कछु चपरि कहौगो।।
भरत भूप, सिय राम लखन वन सुनि सानन्द सहौगो।
पुर परिजन अवलोकि मातु सब सुख संतोष लहौगो।।

यहाँ पर भरत का सानंद रहना और सुखसंतोष लहना पूर्णतया बाधित है। व्यंग्यार्थ यह हुआ कि मुझे इन सभी कारणों से बड़ा दुःख हुआ। फिर भी आपकी आज्ञा हो तो मैं इसे भी झेलूँगा। अतः यहाँ अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

अनुरणन ध्वनि--

जहाँ पर वाच्यार्थ निकालने पर फिर व्यंग्यार्थ का बोध होता है वहाँ अनुरणन ध्वनि होती है। इसके तीन भेद हैं—

१—स्वतः संभवी

२—कवि प्रौढोक्तिसिद्ध

३—पात्र प्रौढ़ोक्ति सिद्ध

इन मे से प्रत्येक के चार चार भेद होते है—

१—वस्तु से वस्तु

१—वस्तु से अलंकार

३—अलकार से वस्तु

४—अलकार से अलकार

इसके वाद भी प्रत्येक के पदगत, वाक्यगत, प्रवधगत यह तीन भेद है। इनमे से कुछ के उदाहरण गोस्वामीजी की कृतियों से यहाँ दिए जा रहे है।

अर्थशक्त्युद्भव अनुरणन ध्वनि (स्वतःसंभवी)

इस ध्वनि के भी कई भेद है जिनमें वाक्यगत स्वतःसंभवी, अर्थ मूलक वस्तु ध्वनि का उदाहरण निम्नलिखित है—

कोटि मनोज लजावनि हारे।
सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेह मय मजुल वानी।
सकुची सिय मन मँह मुसुकानी॥

इन पंक्तियो मे मार्ग की ग्राम्यवधूओं का प्रश्न सुनकर सीताजी का सकुचाना और मन ही मन मुसुकाना, इस आशय के वोधक वाक्य के वाच्यार्थ द्वारा राम उनके पति है—यही व्यंजित है। पतिबोध का व्यग्य किसी एक पद द्वारा न होकर 'सकुची सिय मन मँह मुसुकानी' इस पूरे वाक्य के द्वारा होता है। यहाँ पर शव्दपरिवर्तन के पश्चात् भी व्यग्यार्थ का वोध होता रहेगा। इन्ही कारणों से यहाँ उक्त ध्वनि की स्थिति संभव हुई है।

कवि प्रौढ़ोक्ति मात्र सिद्ध वस्तु ध्वनि

इसके भी कई भेद होते है। इनमे केवल वाक्यगत कवि प्रौढोक्ति मात्र सिद्ध वस्तु ध्वनि का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है---

सिय वियोग दुख केहि विधि कहौं बखानि।
फूलवान ते मनसिज बेधत आनि।
सरद चाँदनी सँचरत चहुँ दिसि आनि।
विधुहि जोरि कर बिनवति कुलगुरु जानि॥

उपर्युक्त पंक्तियों के अंतर्गत अपने फूल के बाणो से कामदेव का सीताजी को बेधना, शरद चाँदनी का चारो दिशाओं मे फैलकर धूप के समान जलना और चद्रमा को कुलगुरु (सूर्य) समझकर सीताजी का विनय करना इत्यादि से सीताजी की तीव्र विरहवेदना ध्वनित होती है जो वाक्यगत है। इसी लिये इसके भीतर वाक्यगत वस्तु से कवि प्रौढ़ोक्ति मात्र सिद्ध वस्तु ध्वनि की स्थिति मानी जाएगी।

गुणीभूत व्यंग्य---

वाच्य की अपेक्षा गौण व्यग्य को गुणीभूत व्यंग्य कहते है। तात्पर्य यह है कि जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा कम चमत्कारक हो अथवा उसी के समान हो वहाँ गुणीभूत व्यंग्य की स्थिति मानी जाती है। इसके भी कई भेद माने गए है जैसे अगूढ़ व्यग्य, अपराग व्यंग्य, वाच्यसिद्धि व्यग्य, अस्फुट व्यग्य, सदिग्ध प्राधान्य व्यंग्य, तुल्य प्राधान्य व्यग्य, काक्वाक्षिप्त व्यग्य और असुदर व्यंग्य इत्यादि जिनमे केवल दो का विश्लेषण नीचे किया जाता है।

काक्वाक्षिप्त व्यंग्य---

जहाँ काकु द्वारा आक्षिप्त होकर व्यग्य अवगत होता है वहाँ गुणीभूत काक्वाक्षिप्त व्यंग्य होता है। जैसे --

तुलसी अस बालक सो नहि नेह कहा जप जोग समाधि किए।
नर ते खर सूकर स्वान समान कहौ जग में फल कौन जिए ॥

× × ×

है दससीस मनुज रघुनायक ।
जाके हनुमान से पायक ॥

पहले उदाहरण के अंतर्गत तुलसीदासजी कहते हैं कि राम ऐसे शिशु के प्रति यदि स्नेह नही है तो जप, जोग और समाधि करने से क्या । अर्थात् कुछ भी नहीं। वे मनुष्य गधे, सूकर और श्वान के समान है, उनके संसार में जीने का भी फल क्या है । अर्थात् कुछ भी नही । यह काक्वाक्षिप्त व्यंग्य है । इसी प्रकार दूसरे उदाहरण के अंतर्गत काकु से यह व्यग्य आक्षिप्त होता है कि राम सामान्य बालक नही है । वे सामान्य मानव भूमि से परे साक्षात् भगवान् के अवतार हैं ।

अगूढ़ व्यंग्य---

अगूढ़ व्यंग्य उसे कहते हैं जो वाच्यार्थ के समान स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है । उदाहरण के लिये---

पुत्रवती जुवती जग सोई ।
रघुवर भगत जासु सुत होई ।

वाच्यार्थ यह है कि वही युवती पुत्रवती है जिसका पुत्र रामभक्त है । यहाँ वाच्यार्थ मे बाधा है । क्योकि ऐसी भी अनेक स्त्रियाँ पुत्रवती हैं जिनके पुत्र रामभक्त नही हैं। अतः इसका लक्ष्यार्थ यह हुआ कि उन युवतियों का पुत्रवती होना न होने के तुल्य है जिनके पुत्र रामभक्त नही हैं । व्यंग्यार्थ यह निकला कि संसार मे वही युवती प्रशंसनीय है जिसका पुत्र रामभक्त हो । यह व्यग्य वाच्यार्थ के समान स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है और वाच्यार्थ का ही अर्थांतर मे संक्रमण हो गया है ।

असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि---

जहाँ पर वाच्यार्थ ग्रहण करने का क्रम लक्षित नही होता, हम यह अनुभव नहीं करते कि यह वाच्यार्थ है और इसके बाद यह व्यंग्यार्थ है, वहाँ यह

ध्वनि होती है। इसमे वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ के आगे पीछे का ज्ञान नही रहता। वाच्यार्थ के ग्रहण करते करते ही वह व्यग्यार्थ से अभिभूत हो जाते है । यो कहने के लिये तो क्रम सभी जगह रहता है, पर असलक्ष्य क्रम व्यग्य ध्वनि मे भेद भाव इससे आक्रात हो जाते है। भाव भेद से यह ध्वनि आठ प्रकार की मानी गई ।

१—रस

२—भाव

३—रसाभास

४—भावाभास

५—भावोदय

६—भावसंधि

७—भावशाति

८—भावशवलता ।

इनमे से प्रत्येक के उदाहरण मानस मे उपलब्ध हो जाते है । नीचे इनपर क्रमानुसार विचार किया जा रहा है ।

रसध्वनि---

जहाँ वर्णन से रस व्यग्य हो वहाँ पर रसध्वनि होती है; जैसे—

पलग पीठ तजि गोद हिंडोरा ।
सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ ।
दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ॥

× × ×

सिय वन वसिहि तात केहि भाँती ।
चित्रलिखित कपि देखि डेराती ॥
जौ सिय भवन रहे कह अवा ।
मोहि कहँ होइ वहुत अवलंवा ॥

यहाँ पर वाच्यार्थ के साथ ही व्यंग्यार्थरूप रस का प्रभाव प्रकट है । आलंवन सीता है । उद्दीपन उनकी सुकुमारता, स्निग्धता, भीरुता, अल्पवयस्कता, आदि है । स्थायी प्रिय के अनिष्ट के कारण शोक है । संचारी, चिंता,

मोह, स्मरण, तर्क दैन्यादि है। अनुभाव आशंका, देवनिंदा आदि है। इस प्रकार यहाँ करुण रस की निष्पत्ति पूर्णरूपेण हुई है।

भावध्वनि----

जहाँ पर अपुष्ट स्थायी अथवा प्रमुखता से प्रकट संचारी भाव का प्रकाशन होता है वहाँ भावध्वनि होती है। जैसे—

कर कुठार मैं अकरुन कोही।
आगें अपराधी गुरु द्रोही॥
उतर देत छोडौं बिनु मारे।
केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
न त ऐहि काटि कुठार कठोरें।
गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें॥

यहाँ पर आलंबन अनुभाव संचारी आदि के होते हुए भी विश्वामित्र के शील के कारण क्रोध स्थायी उद्‌बुद्ध मात्र होकर रह गया। वह पूर्णपरिपाक को प्राप्त नहीं हो सका है। अतः यहाँ भावध्वनि है।

रसाभास-----

जब रसपरिपाक होते हुए भी सहृदय जनों की दृष्टि से उसमें किसी प्रकार का अनौचित्य हो वहाँ पर रसाभास होता है। जैसे शृंगार में पर-स्त्री-प्रेम। यह रसदोष है किंतु आभास रूप मे भी आनंददायक होने के कारण इसे ध्वनि के भीतर माना जाता है। अन्य रसो मे भी अनौचित्य आ जाने से रसाभास होता है। जैसे वीर रसाभास का एक उदाहरण है—

उठि उठि पहिरि सनाह अभागे।
जहँ तहँ गाल बजावन लागे॥
लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ।
धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ॥
तोरें धनुषु चाड़ नहिं सरई।
जीवत हमहि कुअँरि को बरई॥
जौं बिदेहु कछु करै सहाई।
जीतहु समर सहित दोउ भाई॥

यहाँ पर धनुष न उठा सकनेवालों (पराजितों) का राम के प्रति युद्ध करने का यह उत्साह अनुचित है। अतः रसाभास है।

भावाभास----

जहाँ पर भाव में कोई अनौचित्य हो वहाँ भावाभास माना जाता है। मानस में प्रतापभानु की कथा से इसका एक उदाहरण दिया जा सकता है। अवतरण से प्रकट है कि कपटी मुनि ने अपनी कार्यसिद्धि केहेतु राजा के प्रति अपना कपटरूप प्रेम प्रदर्शित किया है। अतः वहाँ राजाविषयक रति भावाभास का उदाहरण है। दे० मानस, प्रथम सोपान, दोहा १६३–१६४।

भावोदय------

जहाँ पर किसी प्रसंग में भाव के उदय होने में आकर्षण हो वहाँ भावोदय होता है। परशुराम का गर्व संचारी आगे जब राम ने रमापति के धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा दी तो विस्मय में परिवर्तित हो गया—

राम रमापति कर धनु लेहू।
खैंचहु चाप मिटै संदेहू।
देत चाप आपुहि चढ़ि गयऊ।
परशुराम मन विसमय भयऊ॥

अतः यहाँ भावोदय हुआ।

भावसंधि----

जहाँ पर दो भावों के संमिलन के कारण चमत्कार आ जाता है वहाँ पर भावसंधि होती है। भावसंधि मानस की निम्नलिखित पंक्तियों में बड़ी सुंदरता से उपलब्ध होती है।

तब देखी मुद्रिका मनोहर।
राम नाम अंकित अति सुंदर॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी।
हरष विषाद हृदय अकुलानी॥

इसमें एक साथ ही हर्ष और विषाद भावों का संचार वर्णित है अतः भाव-संधि है।

भावशांति-----

जहाँ पर किसी उठे हुए भाव की समाप्ति में विशेषता देखी जाती है वहाँ

पर भावशांति होती है। धनुर्भंग की ध्वनि सुनते ही परशराम कुपित हुए और जब वह जनक की सभा में आए तो क्रोध की मूर्ति ही धारण किए हुए थे। पर यह क्रोध का भाव विश्वामित्र के आकर मिलने और दोनों भाइयो--राम और लक्ष्मण को मुनि के चरणों मे डालने के बाद लुप्त हो गया है और वे—

रामहि चितइ रहे थकि लोचन।
रूप अपार मार मद मोचन॥

इस प्रकार यहाँ भावशाति हुई।

भावशबलता----

जहाँ पर एक के बाद अनेक भावो के आने से एक साथ ही अनेक भावो का संमिलित सौंदर्य द्रष्टव्य हो वहाँ भावशबलता होती है, जैसे—

सुवन समीर को धीर धुरीन बीर बड़ोइ।
देखि गति सिय मुद्रिका की बाल ज्यौ दियो रोइ॥
अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध विंध्य बढोइ।
सकुचि सम भयो ईस-आयसु-कलसभव जिय जोइ॥
बुद्धि बल साहस पराक्रम अछत राखे गोइ।
सकल साज समाज साधक समउ कहै सब कोइ॥
उतरि तरु तें नमत पद, सकुचात सोचत सोइ।
चुके अवसर मनहुँ सुजनहि सुजन सनमुख होइ॥
कहे बचन विनीत प्रीति प्रतीति नीति निचोइ।
सीय सुनि हनुमान जान्यौ भली भाँति भलोइ॥
देवि! बिनु करतूति कहिबो जानिहै लघु सोइ।
कहौंगो मुख की समरसरि कालि कारिख धोइ॥
करत कछू न बनत हरि हिय हरष सोक समोइ।
कहत मन तुलसीस लंका करहुँ सघन घमोइ॥

इसमें समान चमत्कारक अनेक भावो का संमलेन होने से अपूर्व भावशबलता है। अतः गोस्वामीजी की रचनाओं में वस्तु और अलंकारध्वनि के भी सैकड़ो उदाहरण भरे पड़े है। अतः यह प्रकरण यहाँ ही समाप्त किया जाता है।